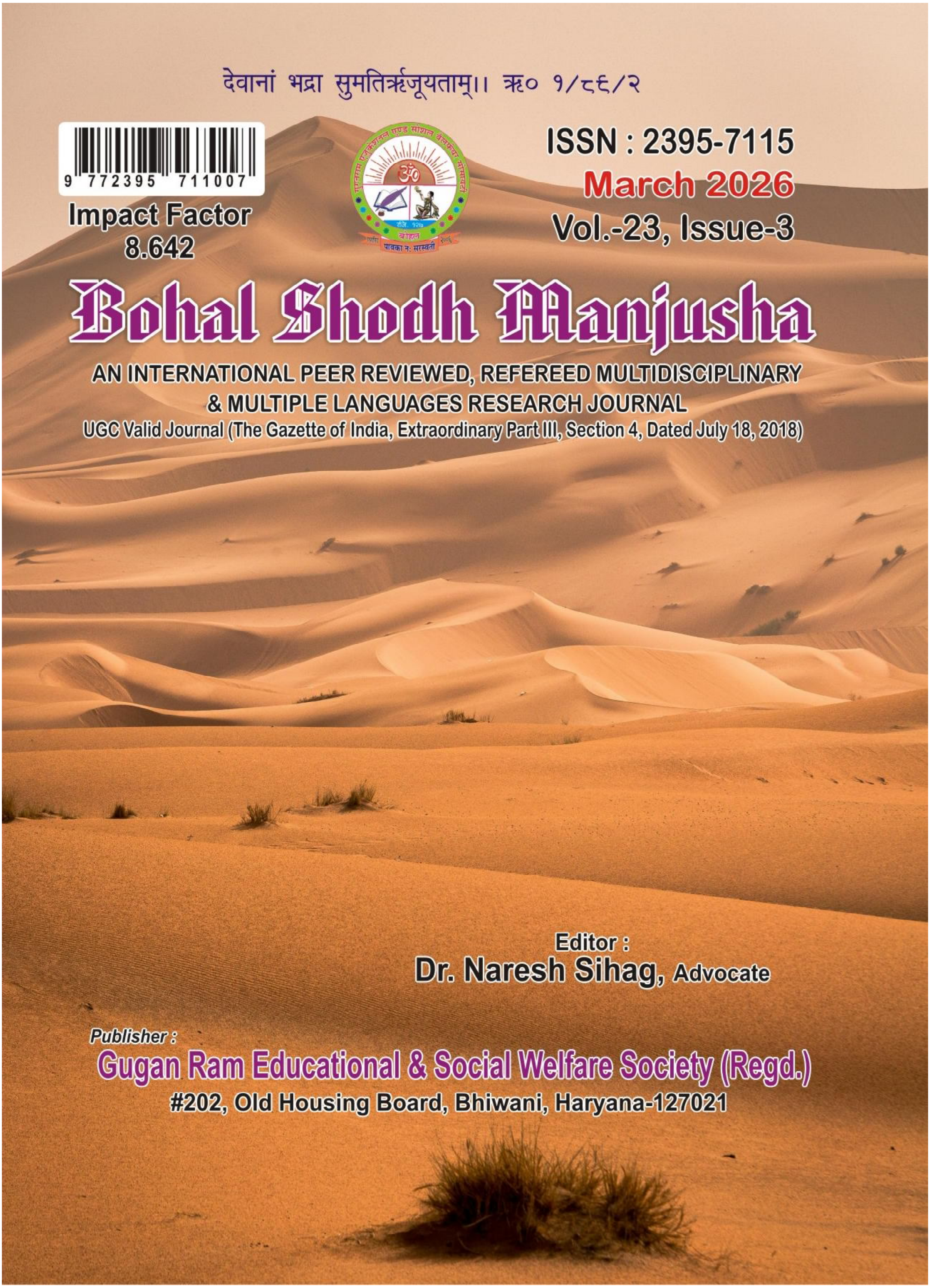

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

March 2026

Vol.-23, Issue-3

Impact Factor 8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Editor :

Dr. Naresh Sihag, Advocate

Publisher :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

Vol. 23 ISSUE-3, Part-3 (मार्च 2026) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

कार्यकारी सम्पादक :

प्रो. शकुन्तला चौहान

शामली, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्होत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२
ISSN : 2395-7115
बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका - मार्च 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	09-09
2.	समकालीन कथा साहित्य में मुस्लिम समाज का यथार्थ	डॉ. अमजद पाशा मुहम्मद	10-13
3.	भक्तिकाल की परिस्थितियों का विवरण : आधुनिककाल के संदर्भ में	राजेन्द्र	14-18
4.	एनएमडीसी द्वारा दक्षिण बस्तर में कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) गतिविधियों का अध्ययन	खिलेन्द्र कुमार, डॉ. सुनीता क्षत्रिय	19-26
5.	भारतीय संघवाद में केंद्र-राज्य संबंधों की बदलती प्रकृति	अशोक कुमार गर्ग	27-30
6.	दिनकर के साहित्य में देशभक्ति : जनमानस को जाग्रत करने वाली प्रेरक शक्ति का विश्लेषण	जयप्रकाश रोशन, डॉ. विनोद कुमार शर्मा	31-38
7.	**Teachers Attitude towards Online Teaching after COVID-19**	**Laxman Singh**	**39-42**
8.	मिल मालिक और मजदूर यूनियन का संघर्ष : प्रभा खेतान रचित उपन्यास 'तालाबंदी' के संदर्भ में	शशि नाथ प्रसाद	43-46
9.	बौद्ध धर्म और लोककल्याण	डॉ. वन्दना द्विवेदी	47-49
10.	मैला आँचल : स्वतंत्र भारत का यथार्थ दस्तावेज	डॉ. सोनी कुमारी शर्मा	50-53
11.	भगवान दास मोरवाल के साहित्य में धर्म और स्त्री अस्मिता : स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य में	सुषमा, डॉक्टर संजय कुमार	54-59
12.	**From Urban Craft Traditions to Colonial Modernity : Transformations in Indian Artistic Production**	**Siddhant Mishra**	**60-65**
13.	परम्परागत फसलों के ह्रास का भौगोलिक विश्लेषण 2010-2022 : महू तहसील के संदर्भ में	राजा डावर, डॉ. बी.एल. पाटीदार	66-73
14.	मधेशी क्षेत्र का भू-राजनीतिक महत्व : भारत नेपाल संबंधों के लिए रणनीतिक निहितार्थ	भव्या राय, डॉ. शक्ति जायसवाल	74-80
15.	**EPISTEMOLOGY OF SANKHYA PHILOSOPHY**	**Dr. Sakshi**	**81-89**
16.	आदिवासी समाज का सांस्कृतिक अध्ययन : बांसवाड़ा क्षेत्र के संदर्भ में	गायत्री निगम	90-94
17.	मनोज रूपड़ा के उपन्यास 'काले अध्याय' में भूमंडलीकरण और आदिवासी चिन्तन	जितेन्द्र, डॉ. अंजन कुमार	95-101
18.	**Digital Screen Engagement and Child Behavioral Adjustment : Examining the Moderating Role of Parenting Style**	**Dr. Shama Parveen**	**102-114**

19.	दोहरी परिधीयता (Double Marginality) : थारू जनजातीय महिलाओं का सामाजिक समावेशन	संतोष कुमार	115-125
20.	Indigenous Knowledge Systems in Tribal Development : Sustainability, Livelihood Security and Cultural Preservation	Dr. Krishna Kishor Srivastava	126-143
21.	अनुभव की प्रामाणिकता और प्रतिरोध की भाषा : 'शिकंजे का दर्द' में दलित स्त्री चेतना	प्रिंस गुप्ता	144-150
22.	गोंड जनजाति की पारम्परिक लोक संस्कृति में झलकता जीवन दर्शन	पूजा उईके, डॉ राजीव शर्मा	151-154
23.	परिकल्पना (Hypothesis)	Puja Panda	155-161
24.	A Study of Capacity Building and Corporate Social Responsibility in NGOs through E-Learning and Digital Tools : A Perspective of Varanasi	Prof. (Dr.) Chandrashekhar Singh	162-171
25.	डॉ कुँअर बेचैन की ग़ज़लों में अलौकिक प्रेम : संवेदना एवं अभिव्यक्ति	प्रशांत चौरसे, डॉ. विजयलक्ष्मी पोद्दार	172-176
26.	औपनिषदिक नाद चेतना	ज्योति अम्बष्ट, डॉ. निशीथ गौड़	177-180
27.	गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री चिंतन	रोहित साव	181-192
28.	कोलकाता में हिन्दी रंगमंच का वर्तमान परिदृश्य	डॉ. मोहम्मद आसिफ आलम	193-197
29.	मानवीय मूल्य और संस्कारों के विकास के लिए हितोपदेश की महता/उपयोगिता	डॉ. अर्चना कुमारी	198-201
30.	WOMEN AS IDOLS OF LOVE, SACRIFICE, AND TOLERANCE IN THE WORKS OF VIKRAM SETH	Dr. Om Prakash Sarvaiya	202-210
31.	जल, जंगल और जमीन : उत्तराखंड में वन नीतियों के विरुद्ध जन-आंदोलनों का ऐतिहासिक विश्लेषण	किशोर कुमार	211-217
32.	दलित काव्य : वेदना और विद्रोह का स्वर	संतोष कुमार	218-222
33.	Electoral Bonds and Political Transparency in India	Dr. Dimpal	223-229

संपादकीय...

प्रिय विद्वत्जन, शोधार्थियों एवं पाठकगण,

हर्ष के साथ प्रस्तुत है बोहल शोध मंजूषा का मार्च 2026 अंक। ज्ञान–विमर्श की सतत यात्रा में यह अंक एक और महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। शोध की परंपरा तभी सार्थक होती है जब वह केवल शाब्दिक विस्तार न होकर समाज, समय और संवेदना से गहरे रूप में जुड़ी हो। इसी दृष्टि से बोहल शोध मंजूषा अपने प्रत्येक अंक में समकालीन विषयों को गंभीरता और शास्त्रीय अनुशासन के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास करता रहा है। वर्तमान समय अनेक प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और वैचारिक परिवर्तनों का साक्षी है। वैश्वीकरण, डिजिटल माध्यमों का विस्तार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव, बदलती पारिवारिक संरचनाएँ तथा मानवीय मूल्यों का पुनर्संयोजन ये सभी विषय आज शोध की प्राथमिकताओं में सम्मिलित हो चुके हैं। इस अंक में प्रकाशित शोध आलेख इन्हीं विविध आयामों को केंद्र में रखकर तैयार किए गए हैं।

इस बार के अंक की विशेषता यह है कि इसमें साहित्य के साथ–साथ शिक्षा, समाजशास्त्र, इतिहास और समकालीन विमर्शों पर आधारित शोधपत्र सम्मिलित हैं। हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श, दलित चेतना, ग्रामीण जीवन का यथार्थ, पर्यावरणीय संकट, लोक–संस्कृति का संरक्षण तथा अंतर्जाल पर विकसित हो रही साहित्यिक प्रवृत्तियाँ इन सभी विषयों पर विद्वानों ने गंभीर और तथ्यपरक अध्ययन प्रस्तुत किए हैं। हमें प्रसन्नता है कि देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों से जुड़े शोधार्थियों एवं प्राध्यापकों ने अपने शोधपत्र भेजकर इस अंक को समृद्ध बनाया है। शोध की गुणवत्ता बनाए रखना किसी भी पत्रिका की सबसे बड़ी जिम्मेदारी होती है। इसी उद्देश्य से प्राप्त शोध पत्रों को विशेषज्ञ निर्णायक मंडल के पास समीक्षार्थ भेजा गया। समीक्षकों के सुझावों के आधार पर आवश्यक संशोधन करवाए गए, ताकि शोधपत्र अकादमिक मानकों पर खरे उतरें। हमारा विश्वास है कि समालोचनात्मक दृष्टि और प्रमाणिक संदर्भों के साथ प्रस्तुत लेख पाठकों को नवीन चिंतन की दिशा देंगे।

मार्च 2026 अंक में कुछ ऐसे शोधपत्र भी सम्मिलित हैं जो परंपरा और आधुनिकता के अंतर्संबंध को नई दृष्टि से देखने का प्रयास करते हैं। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की पुर्नव्याख्या, लोक और शास्त्र के संवाद, तथा आधुनिक समाज में नैतिकता के प्रश्नों पर गहन विमर्श किया गया है। इन आलेखों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि शोध केवल अतीत का विश्लेषण नहीं, बल्कि वर्तमान का मूल्यांकन और भविष्य की दिशा–निर्देशन भी है।

हमें यह भी अनुभव हो रहा है कि डिजिटल युग में शोध लेखन की चुनौतियाँ और अवसर दोनों बढ़े हैं। एक ओर संदर्भ–सामग्री सहज उपलब्ध है, तो दूसरी ओर मौलिकता बनाए रखना और स्रोतों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इस संदर्भ में हम सभी शोधार्थियों से अपेक्षा करते हैं कि वे शोध नैतिकता का पूर्ण पालन करें, संदर्भों का यथोचित उल्लेख करें तथा अकादमिक ईमानदारी को सर्वोच्च प्राथमिकता दें।

पत्रिका के इस अंक में नवोदित शोधार्थियों के साथ–साथ वरिष्ठ विद्वानों के लेख भी प्रकाशित किए गए हैं। हमारा उद्देश्य पीढ़ियों के बीच संवाद स्थापित करना है, ताकि अनुभवी विद्वानों का मार्गदर्शन युवा शोधकर्ताओं तक पहुँचे और युवा चिंतन की ऊर्जा अकादमिक जगत को नई दिशा प्रदान करे।

हम यह मानते हैं कि किसी भी शोध पत्रिका की प्रासंगिकता उसके पाठकों और लेखकों के सक्रिय सहयोग पर निर्भर करती है। बोहल शोध मंजूषा निरंतर आपके सुझावों, आलोचनाओं और रचनात्मक सहयोग की अपेक्षा करता है। आपके सुझाव ही हमारी आगे की दिशा तय करते हैं और पत्रिका को और अधिक उपयोगी बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। अंत में, मैं संपादकीय मंडल, समीक्षकगण, तकनीकी सहयोगियों तथा उन सभी विद्वानों का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सहयोग से यह अंक संभव हो सका। विशेष धन्यवाद उन शोधार्थियों को, जिन्होंने समयबद्ध रूप से संशोधन कार्य पूर्ण कर पत्रिका की गरिमा बनाए रखने में योगदान दिया।

आशा है कि बोहल शोध मंजूषा का यह मार्च 2026 अंक शोध–जगत में सार्थक संवाद स्थापित करेगा और ज्ञान–विस्तार की दिशा में एक प्रेरक कदम सिद्ध होगा।

आप सभी के सतत सहयोग एवं विश्वास के लिए पुनः धन्यवाद। –संपादक

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 10-13

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

समकालीन कथा साहित्य में मुस्लिम समाज का यथार्थ

डॉ. अमजद पाशा मुहम्मद
हिंदी प्राध्यापक, एस.एल. एन.एस. डिग्री कॉलेज, भुवनगीर।

समाज में मुसलमानों का स्थान : सामाजिक विश्लेषण किसी भी समाज को समझने में महत्वपूर्ण होते हैं परिवार एवं रिश्ते–नाते वर्ण–जाति व्यवस्था आदि समाज के प्रमुख घटक हैं। सामाजिक विश्लेषण के द्वारा इन घटकों के स्वरूप स्थिति और इनमें आ रहे बदलाव आदि का पता लगाया जाता है। इसीलिए आचार्य शुक्ल अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में कहते हैं– ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है... जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।''[1]

समकालीन मुस्लिम समाज : स्वतंत्रता पूर्व के भारतीय मुसलमानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति पर संक्षिप्त रूप से विचार करने के पश्चात विभाजित भारत में मुसलमानों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर विचार करने पर उनकी स्थिति में भारी परिवर्तन दिखाई पड़ता है। देश के विभाजन ने मुस्लिम समाज को पूरी तरह प्रभावित किया। मुस्लिम समाज के विविध वर्गों में विभाजित करते हुए उसकी स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। मुस्लिम समाज को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– 1. सामंती जमींदार 2. मुस्लिम कृषक वर्ग 3. कारीगर और मजदूर 4. सामंत वर्ग का पतन 5. उच्च मुस्लिम वर्ग 6. मध्य मुस्लिम वर्ग। इन सभी के अतिरिक्त मुस्लिम समाज को कुछ विद्वानों ने मुस्लिम समाज को तीन वर्गों में बाँटा है– प्रथम शासक वर्ग, द्वितीय अभिजात वर्ग तथा तृतीय जनसाधरण वर्ग।

भारत में मुसलमानों की जनसंख्या : जागरण 2020 की रिपोर्ट के अनुसार भारत की कुल मुस्लिम आबादी 19.4 करोड़ है जो पूरे संसार में भारत को दूसरे स्थान पर रखती है।''[2]

परिवार : परिवार समाज की एक छोटी इकाई होते हुए भी महत्वपूर्ण है। परिवार मानव सभ्यता की सबसे पुरानी संस्था है। परिवार समाज में व्याप्त संबंधों का प्रतिक है। परिवार मानव के लिए सब कुछ होता है। एक स्त्री के लिए परिवार ही स्वर्ग और पति ही खुदा होता है। भारतीय समाज की नारी परिवार और पति के लिए अपना सर्वसव त्याग देती है जैसे जीमल अहमद की बीवी करीमन बीमार होते हुए भी अपने पति के सुकून में कमी नहीं आने देती। जब करीमन खाँसती है तो पति बेदर्द होकर कहता है और जब साँस की धौंकनी में ज्वर आता है, तब खाँखू–खाँखू 'कर्मानी चुप भी कर''[3] इस तरह पति जीमल अपनी बीवी करीमन को झिड़कियाँ सुनाता है और वह अपनी पति को गुलफाम कहकर संबोधित करती है। फिर जीम कहता है। करीमन से ''अब

अगर आवाज निकाली तो...।''[4] इस प्रकार पति अपनी पत्नी से एक गुलाम जैसा व्यवहार करता है परंतु करीमन एक आदर्श स्त्री पत्नी की तरह अपनी पति के हर हुकूम को मानती है। रात भर खाँसते–खाँसते अपनी आवाज को दबाते हुए वह दम तोड़ देती है और अपने पति परिवार को वह परेशान नही करती। एक आदर्श पत्नी भारत की स्त्री मुस्लिम समाज की महिला कहलाती है वह चल बसती है। लेखक ने इस कहानी में परिवार पति का जो महत्व दिखाया वह उच्च कोटि का है।

लेकिन जकिया जुबैरी ने साँकल कहानी संग्रह में अभिव्क्त परिवारों में रिश्तें के कोई मायने नजर नहीं आते। सभी रिश्ते एक–दूसरे को जिंदा लाश की तरह ढोते दिखाई देते हैं। ये परिवार प्रायः क्षणभंगुर लगते हैं बिल्कुल ताश के पत्तों की तरह। साँकल कहानी संग्रह में ऐसे ही टूटते–बिखरते परिवारों की चीख दर्ज है, जहाँ रिश्तों को जिया नहीं बल्कि घसीटा जा रहा है। जकिया जुबैरी ने कहानी 'बाबुल मोरो' में नैसी के माध्यम से आधुनिक माँ का चित्रण किया है। नैसी अपने स्वार्थ के लिए अपनी बेटी लिसा को घर से निकालना चाहती है। यहाँ माँ की संवेदनाएँ केवल अपने प्रेमी के लिए है परिवार के लिए नहीं। इस कहानी में माँ ही अपना घर–परिवार तोड़ना चाहती है। लिसा के शब्दों में यह कैसी माँ है? लिसा सोंचती यहाँ तो बच्चे घर छोड़कर भागने के चक्कर में होते हैं और यह मुझे भगाने के चक्कर चला रही है।''[5]

मेहरून्निसा परवेज ने विवाह पूर्व संबंध वैवाहिक संबंध और विवाहेत्तर संबंध अपनी कहानियों में स्त्री–पुरुष संबंध के इन विविध रूपों को दर्शाया है। यथा– अतुल क्या तुम बप्पा की मौत तक इंतजार नहीं कर सकते? जिस दिन बप्पा मरेंगे, मैं तुम्हारे पास चली आऊँगी बस।''[6] सुमी और अतुल एक–दूसरे से बेहद प्रेम करते हैं, लेकिन सुमी अपनी सनकी पिता के डर से भागकर विवाह करना नामंजूर करती है। भूमि एक पढ़ी–लिखी लड़की है उसकी सोंच उसे यह अनुमति नहीं देती की वह पिता के विरूद्ध जाकर प्रेम विवाह कर ले। यहाँ सुमी व अतुल सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते है। पिता पुत्र संबंधों का बिखरना– परिवार समाज की प्रथम इकाई मानी जाती है। किंतु आजकल पारिवारिक समस्याएँ समाज के लिए अत्यंत घातक बन पड़ी है। आजकल के लड़के विवाह होते ही अपना अलग घर संसार बसा लेते हैं। बाप के बुढ़ापे व उसकी जिम्मेदारियों का भी ख्याल नहीं रखते। जैसा कि 'सिद्दीकी साहब' कहानी के सिद्दीकी साहब कहते हैं– ''लड़के अपनी–अपनी शादी अपने–अपने मन से कर के अलग हो गए। बस, एक लड़की रह गई मेरे साथ।''[7] लड़की बहुत अच्छी है। कुरान शरीफ के कई पारे याद है उसे। उर्दू भी लिखा पढ़ लेती है।... बस साबह उसी की फिक्र मुझे लगी हुई है। अच्छे लड़के मिलते ही नहीं कि अकद करके फुर्सते पाऊँ?''[8] आज कल हम देखते हैं कि आज के समाज में अभिभावकों का आदर एक बड़ी समस्या के रूप में उभर रहा है।

मुस्लिम समाज पर विपत्तियाँ : भारत प्राचीन काल से विभिन्न संस्कृतियों और जातियों के लोगों की संस्कृति की विशेषता है। विभिन्न संस्कृतियों और जातियों के लोगों का संगम स्थल है। भिन्नता भारतीय संस्कृति की विशेषता है। विभिन्न धर्मावलंबियों का सहजीवन भारत की प्रमुख विशेषता है। लेकिन अंग्रेजी ने सांप्रदायिकता का ऐसा विष बीज बोया जिसका नुकसान आज भी भारतीय समाज को हो रहा है। देश में कहीं न कहीं सांप्रदायिक दंगे होते हैं जिसमें साधारण जनता की हानि होती है। हिंदू और मुसलमान भी इसकी चपेट में आ जाते हैं।

शांति से ही राष्ट्र का विकास संभव है। आज देश पर से मुसलमान पीटा जा रहा है। जैसे कभी मीडिया

इन्हें करोना जिहाद करती है तो कभी करोना बम से पुकारती है। दिल्ली के दंगे जो 23 फरवरी 2020 में हुए इसमें कई मुसलमान मारे गए दुकाने जला दी गई लूट मार हुई ये सब विपत्तियाँ नहीं तो क्या है? उत्तर प्रदेश में 17 वर्ष के नौजवान को पुलिस बेरहमी से मार देना कई मुसलमानों को धर्म के नाम पर कत्ले आम करना ये सब मुसलमानों पर आ रही खतरनाक विपत्तियाँ हैं जो इतिहास में दर्ज हो गई हैं।

शांति पूर्ण सह जीवन से ही देश आगे बढ़ सकता है न की दंगे फसाद करने से। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपनी कहानियों के माध्यम से देश में फैल रहे सांप्रदायिकता और दंगों की निंदा ही नहीं की बल्कि उसके जड़ से समाप्त करने का आग्रह भी किया है। सांप्रदायिकता की जड़े कितनी गहराई तक गई हैं, इसे अब्दुल बिस्मिल्लाह की 'आधा फूल', 'आधा शव', 'दूसरा सद्मा', 'जीना तो पड़ेगा', 'पेड़' और 'लंठ' जैसी कहानियों में देखा जाता है। 'आधा फूल', 'आधा शव' के बाबू साहब ने अपनी सूझ–बूझ से कब्रिस्तान की जमीन को लेकर हुए तनाव को दूर किया। बाबू साहब हिंदी के एक प्रतिष्ठित कवि हैं। यह उनके जीवन की सच्ची घटना है। इस कहानी का दूसरा पहलू यह है कि हिंदू–मुसलमानों में सकारात्मक सोच रखने वलों की कमी नहीं है। ये घर उजड़ जाएँ और ये क्यारियाँ नष्ट की जाएँ। पड़ौना के मुसलमानों की यह मुख्य माँग है। उनका दावा है। यह जमीन कब्रिस्तान की है।

हिंदुओं का कहना है कि यह नहीं हो सकता। जिस जमीन पर मकान और क्यारियाँ हैं, वह कब्रिस्तान से बाहर है। कब्रिस्तान के पास लोग ही लोग हैं। एक विशाल जनसमुदाय– हिंदू और मुसलमान– पंडित और हाफिज दुकानदार और नौकरीपेशा बेरोजगार युवक और छात्र सभी तरह के लोग। गोहरी का धुआँ कस्बे के उस छोर पर कुछ ज्यादा ही घना हो उठा है। कहिए हाफिज्जी अगब यही सब होगा?''[9] कब्रिस्तान को लेकर पूरा गाँव लड़ने पे तुला है। लंठ कहानी का भोला–भाला आरिक सांप्रदायिकता का शिकार हो गया। वह न तो दीनानाथ की राजनीति मको समझ पाया और खुर्शीद की मंशा को भाँप सका। 'दूसरा सदमा' भारतीय संस्कृति के छिन्न–भिन्न होने और हिंदू मुसलमानों के बीच बढ़ती दूसरी को रेखांकित करती है। ''पूरे शहर में कर्फ़ू लगा गया था। एक भयंकर आतंक से हर आदमी का वजूद खिकुड़ गया था और आगजनी की घटनाएँ बढ़ने लगी भी। घरों में बंद लोग साँस भी लेते ये तो डरते हुए कोई कभी–कभी रात के सन्नाटे को चरिता हुआ कोई नारा गूँजता तो लगता कि सृष्टि अब खत्म हो जाएगी। एक भयानक आग थी। जिसकी लपटों में वह संपूर्ण परंपरा जल उठी थी, जिसे किसी जंगली जहनियत ने अपने स्वार्थ के लिए बुरी तरफ 'जीना तो पड़ेगा' कहानी सांप्रदायिक महौल में कुंद होती मानसिकता को व्यक्त करती है। आकिल साहब बीमार हैं। वे इलाज के लिए अस्पताल नहीं जाते। इन्हें डर है कि अस्पताल की हिंदू डॉक्टर उन्हें जहर की सुई लगाकर मार देंगे। कहानी का विषम वातावरण बहुत नाटकीय ढंग से समाज पर आता है और आकिल साहब के डर को खत्म करता है। दरअसल आकिल साहब की बीवी उन्हें छोड़कर एक ठाकुर के साथ रहने लगी थी। वे अकेले हो गए। फिर उन्होंने अपना गाँव छोड़ दिया और पराए गाँव में एक मुस्लिम परिवार से जुड़ गए। उस परिवार के एक युवा गुड्डन ने आकिल साहब को समझाया कि उन्हें कोई हिंदू डॉक्टर क्यों मारेगा, जबकि उन्हें पहले ही एक मुस्लिम औरत ने मार दिया था।

''देख रहे हो गुड्डन मुल्क में क्या हो रहा है? तुम्हें क्या पता। सारे सरकारी महकमों में हिंदू भरे हुए हैं। शहर के अस्पतालों में भी। जैसे ही उन्हें मालूम होगा कि मैं मुसलमान हूँ। वे मुझे जहर की सुई लगा देंगे। समझे।

मैं मर जाऊँगा।''[10] अकिल साहब रूआँसे हो गए।'' देखों गुड्डन मैं अभी मरना नहीं चहता था। मेरी कापी में हजारों दस्तखत हो चुके हैं। मैं प्रधानमंत्री जी से मिलकर अपना हक हासिल करना चाहता हूँ। ''आपको अपाका हक मिलेगा ही मामू, पर यह बताइए कि आपने यह कैसे सोच लिया कि हिंदू डॉक्टर किसी मुसलमान मरीज को जहर की सुई लगाकर मार सकता है। आप जरा पहले की बात याद कीजिए– आपको पहले भी जहर की सुई लगाकर मारा गया है। मगर वह कोई हिंदू डॉक्टर नहीं था, वह एक मुसलमान औरत थी।''[11] यह सुनकर उनकी मानसिकता बदली और वे अस्पताल जाने के लिए तैयार हो गए। इस कहानी के द्वारा अब्दुल बिस्मिल्लाह खोए हुए विश्वास और आत्मीयता को वापस लाने में सफल हुए हैं। यह वक्त की जरूरत है। यह सोद्देश्यपूर्ण रचना है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने समाज की वास्तविक परिस्थितियों और मूल्यों का विमर्श प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जिससे ये कहानियाँ पाठक के मस्तिष्क पर अपनी गहरी छाप छोड़ती हैं। उसे आत्ममंथन करने के लिए विवश करती हैं। धार्मिक कट्टरवादिता से दूर होने के लिए प्रेरित करती हैं। धर्म और परंपरा के बीच एक लकीर खींचती हैं, जिससे हम इनको अंतर को पहचार सकें। लेखक का मानना है कि, ''गंभीर साहित्य सोचेने–समझने के लिए विवश करता है। इसमें कि विन्यास सीधी सरल रेखा पर नहीं चलती। इसके कथा विन्यास में कई तरह के उतार चढ़ाव आते हैं। अनेक तरह की जटिलताएँ होती हैं। कई मोड़ आते हैं और जब कई मोड़ आते हैं तब विचार के स्तर पर भी बदलाव आते हैं जिनसे पाठक को गुजरना पड़ता है। विचार के साथ–साथ जो संवेदनाएँ होती है उन संवेदनाओं से पाठक खुद की कहीं न कहीं कोरिलेट करता है। गंभीर साहित्य पढ़ते समय पाठक को सक्रिय और सतर्क रहना पड़ता है।''[12]

निष्कर्ष : सामाजिक यथार्थ के चित्रण में समाज के विभिन्न वर्ग घटकों और संस्थाओं की यथार्थ परिस्थितियों का अंकन मुख्य अभिप्रेत होता है। इन सब कहानियों में सामाजिक संदर्भ उच्च कोटी के हैं। इन सब कहानियों में समाज की सभी विसंगतियों, विडंबनाएँ, विविधता आपसी भावनाएँ, अनेक प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाएँ देखने को मिलती है।

संदर्भ सूची :

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, सन् 2009, पृ. 02
2. m.jagaran.com.2020
3. हसन जमाल श्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 9
4. वही, पृ. 9
5. जकिया जबैरी, 'साँक्ल', पृ. 23
6. मेहरून्निसा परवेज, अयोध्या से वापसी, पृ. 19
7. मेहरून्निसा परवेज, बंटवारे की फांस, गलत पुरुष, पृ. 114
8. वही, पृ. 31
9. अब्दुला बिस्मिल्लाह, श्रेष्ठ कहानियां, 96
10. वही, पृ. 106
11. वही, पृ. 190
12. अब्दुल बिस्मिल्लाह, सार तत्व को बचाने की जरूरत, मेरी दुनिया मेरी सोंच वेबसाइट, 29 सितंबर, 2009 को अपलोड।

ADDRESS - H.NO: 1-1-66/653/6/A/1, URBAN COLONY, BHONGIR-508116. TELANGANA STATE.

मो. 9030606632

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 14-18

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

भक्तिकाल की परिस्थितियों का विवरण : आधुनिककाल के संदर्भ में

राजेन्द्र
हिन्दी विभाग, पंजाब विष्वविद्यालय
कांस्टीचुयेंट कॉलेज, सिंखवाला, श्री मुक्तसर साहिब, पंजाब, भारत।

एक मात्र नित्य चेतन सत्ता जो जगत का कारण हैं। वही चेतन सत्ता जगत को चला रहीं है। एक असकार है रब का। ऊँ अक्षर ध्वनि (आवाज) शब्द है। जिसे शास्त्रों में अनाहद नाद कहा गया है रब निराकार भी है और साकार भी। राजेंन्द्र नाम का अर्थ – धन्ना, सम्राट, राजाओं का राजा।

भक्ति आन्दोलन की शुरूआत भारत में 7वीं से 8वीं शताब्दी के दौरान दक्षिण भारत (तमिलनाडू और केरल) में हुई, जहाँ आलवार और नयनार संतो ने इसका नेतृत्व किया। और बाद में यह उत्तर और पूर्वी भारत में भी फैला।

गुरू, सिद्ध, नाथ एक अलग ऐतिहासिक सम्प्रदाय के रूप में नाथों की स्थापना कथित तौर पर 8वीं या 9वीं शताब्दी के आसपास एक साधारण मछुआरे, मत्स्येंद्रनाथ (कभी–कभी मीनानाथ भी कहा जाता है, जिन्हें कुछ स्त्रोतों में मत्स्येद्रनाथ के पिता के रूप में पहचाना या कहा जा सकता है) के साथ शुरू हुई।

भारत के सभी ऋषि मुनियों पीरों पैगम्बरों संतो गुरूओं महात्माओं देवी देवताओं भगवानों और रब को (पंजाब विष्वविद्यालय कांस्टीचुयेंट कॉलेज, सिंखवाला, पंजाब (पंजाब विष्वविद्यालय चण्डीगढ़) डॉ. आदित्य अंगीरस षिष्य राजेन्द्र का सादर प्रणाम।

हमारा काम ही जीवन में महान अर्थ जोड़ता है। जब हम काम नहीं करते, तो जीवन नीरस और नीरस हो जाता है। इस प्रकार हम नीरसता से बचने के लिए, हम कड़ी मेहनत करते हैं। आप जो भी महान सभ्यता देखते है, वह कड़ी मेहनत और लगन के माध्यम से हासिल की गई है।

कर्म के बिना जीवन संभव नहीः– प्रत्येक जीव अपने–अपने पूरे जीवन काल में प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ काम करता ही रहता है। सभी छोटे से छोटे जीव, हम मानव यहां तक कि प्रकृति भी हमेषा बिना रूके अपना काम करती रहती है।

ब्रह्म जिसका अर्थ निराकार और विषाल ब्रह्माण्ड से है। यह प्रकृति से परे, अनंत, निर्मित और अविनाषी है। इसे सर्वोच्च अस्तित्व, परम सत्य और अनंत चेतना का प्रतीक माना जाता है। रब इस ब्रह्माण्ड का स्वामी है।

ब्रह्म उन कई लोगों का अंतिम लक्ष्य है जो आध्यात्मिक मार्ग की तलाष कर रहे है। यह अनिवार्य रूप से एक आत्मा की उपलब्धि है जो आपको उच्च, वैषविक आत्मा से जुड़ने में मदद करता है। उस अविनाषी परमसत्ता (रब) को ब्रह्म कहा जाता है। शब्द की शक्ति को ब्रह्म माना जाता है।

'ब्रह्म' जिसका अर्थ है रब। 'ब्रह्म' के अनेक शब्द है– विधाता, स्कयंभू, आप आदि। ब्रह्म को शुद्ध अस्तित्व, शुद्ध चेतना और शुद्ध आंनद के रूप में माना जाता है। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति गुरू द्वारा दिखाए मार्ग से होती है। शब्द को ही ब्रह्म कहते है।

एक मात्र नित्य चेतन सत्ता जो जगत् का कारण है। वही सत्ता जगत् को चला रही है। रब उसका स्वामी है। जो निर्गुण (सत्, रज, और तम से परे है) निराकार और सर्वव्यापी है वह ब्रह्म कहलाता है। रब स्वयं ब्रह्म स्वामी। आत्मा और ब्रह्म एक ही असीम चेतन – अस्तित्व है। रब ही सत्य है। जो निराकार भी है और साकार भी।

'राजेन्द्रसूत्र' इस ग्रन्थ का नाम है। मानव जाति के लिए एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है। सभी युगों तथा सभी देषों के लोगों के लिए इसका महत्व विष्वव्यापी है। योग्य जन जीता है। यथार्थ सत्य है। नित्यानाम सर्वज्ञ महाभारत।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। आज हम कोई भी कार्य करते है उस का प्रमाण मांगा जाता है। आज चारों तरफ ज्ञान की चर्चा हो रही है। लगता है कोई ज्ञान प्रदान करने वाला महान युद्ध चल रहा है। मेरा यह मनोवैज्ञानिक सिद्धांत इस ज्ञान के युद्ध में एक तीर मानने के बराबर है। आषा करता हूँ कि आप मेरे इस सिद्धान्त राजेन्द्रसूत्र को शाष्वत करेंगे।

कालजयी रचनाकार वह होता है जो समयानुसार परिस्थितियों को बदल डालता है। भक्तिकाल (मध्यकाल) में गुरू परम्परा (पंजाब में) जैसे :– श्री गुरू नानक देव जी और भारत के अव्य राज्यों से कबीर, रैदास, नामदेव, धन्ना, मीरा और तुलसीदास जी जैसे युगान्तकारी महापुरूषों ने काव्य रचना की। और समाज सुधार किया अतः नई दिषा समाज को प्रदान की। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब में 36 महापुरूषों की वाणी दर्ज है। इसमें 1430 अंग, सन्त मनीषियों के 5894 भजन है। जिसमें 6 सिख गुरू, 15 भगत, 11 भट्ट और चार अन्य भक्त–भाई सुन्दर, भाई मर्दाना, भाई सत्ता और भाई कयामत जी की वाणी दर्ज है।

इन्होंने समाज में रूढ़ियों, जाति–पाति, छुआछूत, धार्मिक आड़म्बरों का विरोध किया और समाज में समानता स्थापित करने का प्रयास किया। धार्मिक दृष्टि से यह युग उत्कर्ष का काल था। भक्तिकाल – जिसे हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग भी कहा जाता है। एक ऐसा समय था जब भक्ति और प्रेम पर आधारित साहित्य की रचना हुई। जिसमें सगुण और निर्गुण भक्ति दोनों की धाराएँ देखी गई थी।

इस काल में अवधी, ब्रज, और खड़ी बोली जैसी भाषाओं का प्रयोग बढ़ा और संत कवियों ने आम बोलचाल की भाषा को महत्व दिया। इस युग में प्रंबध काव्य और खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य और छंदों से मुक्त गीतिकाव्य, नाटक, कथा काव्य, जीवन–चरित्र आदि काव्य रूपों का प्रयोग हुआ।

इस युग की विषय वस्तु थी धर्म, भक्ति, प्रेम और सामाजिक मुद्दों पर आधारित रचनाएँ थी।

क्रमानुसार भक्ति आन्दोलन के जनक आलवार संत और रामानुज को माना जाता है। इस युग में कबीर, रैदास, श्री गुरू नानक देव, सूरदास, मीराबाई तुलसीदास इत्यादि महापुरूषों ने अपनी काव्य रचना लिखी। धर्म और समाज – इस काल में धार्मिक कट्टरता कम हुई और विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के बीच समानता बढ़ी। संतकाव्य, सूफीकाव्य, रामकाव्य और कृष्णकाव्य के प्रति गहरा प्रेम था। दूसरी तरफ भारत में इस्लाम धर्म का प्रभाव था।

इस काल में कई युद्ध हुए। और विभिन्न राज्यों के बीच संघर्ष भी हुआ। इस काल (भक्तिकाल) में पंजाब में गुरू परम्परा होंद में आई। गुरू परम्परा ने मुगल साम्राज्य के विरूद्ध आवाज उठाई।

भक्तिकाल के प्रथम भाग में भारत पर तुगलक वंष और लोदी वंष के शासकों का राज रहा और द्वितीय भाग में मुगल वंष के कई शासकों बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब ने शासन किया। तत्कालीन शासकों से हिन्दू और मुसलमान दोनों ही परेषान थे। धार्मिक कट्टरता, सामाजिक भेदभाव और जनता त्राहि–त्राहि कर रही थी। संतो ने इस प्रति आवाज बुलंद की। 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' भारत के पंजाब राज्य में इन्हीं गुरूओं संतो, भक्तों की देन है। कबीर दास के शब्दों में –

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करैं बड़ाई गागर छुअन न देई।।
वेश्या के पांयन तर सोवै यह देखी हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी–मुर्गा खाई।
खालाकारी बेटी ब्याहै घर ही में करैं सगाई।। (1)

इस काल में चित्रकला, संगीत और नृत्य को भी महत्व दिया गया। इस युग में मुगलकला का प्रभाव बढ़ा और विभिन्न प्रकार के संगीत और नृत्य रूपों का विकास हुआ।

भक्ति आन्दोलन ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों, आड़म्बरों, छुआछूत और सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई। फारसी भाषा का प्रभाव बढ़ा। और हिंदी–फारसी में आदान–प्रदान भी हुआ। 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' की होंद के साथ–साथ जायसी का 'पद्भावत' और तुलसीदास का 'रामचरितमानस भी भक्तिकाल की देन है। सूरदास जी ने 'सूरसागर' सूर सारावली' और 'साहित्य लहरी' इसी काल में लिखी। इस काल में इस्लाम का प्रभाव अत्याधिक था भारत में। इस के विरोध में भारत के भक्तिकाल के महापुरूषों ने अपनी वाणी लिखी। इस्लाम और हिन्दू धर्म मे आपसी मतभेद था। इसी मतभेद के कारणवष संतो ने दोनों धर्मो में समानता स्थापित करने के लिए कबीर, जैसे महापुरूषों ने अपनी वाणी से समानता स्थापित करने का प्रयास किया। और हिन्दू, मुस्लिम एकता पर बल दिया।

इस काल में मुगल साम्राज्य का विस्तार हुआ। और शासकों ने विषाल भवन, मकबरों आदि का निर्माण किया।

भक्तिकाल में समाज में धार्मिक कट्टरता, सामाजिक भेदभाव और रूढिवाद के कारण जनता त्राहि–त्राहि कर रही थी। लेकिन भक्ति आन्दोलन ने इन बुराइयों के खिलाफ आवाज उठाई और लोगों को ईष्वर की भक्ति

के मार्ग पर संतो ने चलने के लिए प्रेरित किया। **रैदास के अनुसार –**

अब कैसे राम नाम रट लागी।

प्रभुजी तुम चंदन हम पानी जाकी अंग-अंग वास समानी।(2)

या

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।

दास मलूका कह गए सबके दाता राम।। (3)

भक्तिकाल आर्थिक दृष्टि से देखा जाए तो एक ऐसे दौर का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ बढ़ी। जिससे आम जनता को काफी कष्ट हुआ और भक्ति आन्दोलन ने इन कठिनाइयों के बीच आषा और एकता का संदेष दिया।

भक्ति आन्दोलन की शुरूआत दक्षिण भारत में आलवारों और नायनारों ने की थी। आलवार संतो को भक्ति आन्दोलन का संस्थापक माना जाता है। रामानुज के उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का जनक माना जाता है। राजेन्द्र के अनुसार–

एक आकार है रब का,

ऊँ अक्षर, ध्वनि (आवाज) शब्द है।

जिसे शास्त्रों में,

अनाहद नाद कहा गया है।(4)

उन्होनें विषिष्टाद्वैत (योग्य अद्वैतवाद) का सिद्धान्त सिखाया। उन्होनें मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में भक्ति पर बल दिया। धीरे–धीरे भक्ति ने अखिल भारतीय रूप ग्रहण कर लिया।

(भक्ति का बाहरी रूप और आन्दलित स्वरूप सुनिष्चित करने में चार आचार्य मुख्य थे – रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्क और वल्लभाचार्य। **सूरदास के अनुसार –**

निर्गण कौन देस को वासी,

को है जननि, जनक को कहियत कौन नारि को दासी।(5)

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भक्ति काल को हिन्दी काव्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। भारत में उस समय भक्तिकाल की घटना यह थी कि पंजाब में 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' होंद में आया। 13 अप्रैल 1699 ई. को विसाखी वाले दिन सिक्खों के दसवें गुरू गोबिन्द सिंह जी ने खालसा पंथ की स्थापना की। उन्होनें पांच प्यारों की प्रथा चलाई। और जाति पाति का खण्डन किया। और अपने सिक्खों को सिंह और कौर शब्द का प्रयोग अपने नाम के पीछे लगाने को कहा। इस तरह 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' की होंद के साथ–साथ खालसा होंद में आया। और 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब को गुरू का दर्जा प्रदान किया। 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब पांचवा वेद और मध यकाल के बाद आज तक यानि आधुनिक विज्ञान के युग मे जो कि इस के बाद भारत की भूमि पर कोई ओर धर्म होंद में नहीं आया। इसलिए अभी तक का यह आधुनिक धर्म ग्रन्थ है। भारत में राजेन्द्र सूत्र एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त देने वाले राजेन्द्र ने 'श्री गुरुग्रन्थ साहिब' को पांचंवा वेद कहा है।

राजेन्द्र सूत्र के अनुसार –

धरती पर मनुष्य कुछ भी बन सकता है,
वेद कहें ये बात। (6)

अनुक्रम :

1. डॉ. अशोक तिवारी, प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, प्रकाषक साहित्य भवन, आगरा, सन् 2025, पृष्ठ भक्तिकाल से –48
2. डॉ. अशोक तिवारी : प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, प्रकाषक साहित्य भवन, आगरा, 2025 पृष्ठ –49
3. प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, भक्तिकाल से पृष्ठ 49
4. राजेन्द्र : राजेन्द्रसूत्र, समदर्षी प्रकाषन, गाजियाबाद उ.प्र, 2025 पृष्ठ 13
5. डॉ. अशोक तिवारी, प्रतियोगिता साहित्य सीरीज प्रकाषक साहित्य सदन आगरा, 2025 पृष्ठ 324
6. राजेन्द्र राजेन्द्रसूत्र समदर्षी प्रकाषन, गाजियाबाद उ.प्र, 2025, पृष्ठ 42

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 19-26
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

एनएमडीसी द्वारा दक्षिण बस्तर में कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) गतिविधियों का अध्ययन

खिलेन्द्र कुमार, शोधार्थी—वाणिज्य,
भिलाई महिला महाविद्यालय, सेक्टर—9, भिलाई, जिला—दुर्ग (छ.ग.)
डॉ. सुनीता क्षत्रिय, शोध निर्देशक,
सहायक प्राध्यापक—वाणिज्य, सेंट थॉमस महाविद्यालय, भिलाई, जिला—दुर्ग (छ.ग.)

सारांश (Abstract)

प्रस्तुत शोधपत्र एनएमडीसी (राष्ट्रीय खनिज विकास निगम) द्वारा दक्षिण बस्तर क्षेत्र में संचालित कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) गतिविधियों के सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव का प्रस्तुत करता है। NMDC ने पिछले दस वर्षों में छत्तीसगढ़ में CSR पर लगभग ₹1,400 करोड़ का निवेश किया है, जिसमें से दक्षिण बस्तर (दंतेवाड़ा, बीजापुर, सुकमा) का सर्वाधिक हिस्सा रहा है। NMDC की CSR गतिविधियाँ शिक्षा (शिक्षा सहयोग, आस्था विद्या मंदिर, सक्षम), स्वास्थ्य (NMDC अपोलो अस्पताल, मोबाईल क्लीनिक), आजीविका (स्वयं सहायता समूह, कौशल विकास), आधारभूत सुविधाओं (सड़क, पेयजल, बिजली) एवं पर्यावरण संरक्षण में व्यापक हस्तक्षेप करती हैं। NMDC के वार्षिक प्रतिवेदन (2011–12 से 2024–25), मानव विकास संस्थान (IHD) द्वारा प्रकाशित NMDC सामाजिक प्रतिवेदन, MCA CSR के आँकड़े तथा विभिन्न शासकीय/गैर-शासकीय प्रकाशित/अप्रकाशित आंकड़ों पर आधारित है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (PSUs) पर CSR का दायित्व और भी गहरा है क्योंकि वे जनता के संसाधनों का उपयोग करते हैं। NMDC जैसे खनन उपक्रम प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते हैं, अतः स्थानीय समुदायों के प्रति उनका उत्तरदायित्व अन्य कंपनियों की तुलना में अधिक नैतिक महत्व रखता है। भारत सरकार के सार्वजनिक उद्यम विभाग (DPE) की 2010 की गाइडलाइन के अनुसार CSR को 'आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ तरीके से कार्य करने की प्रतिबद्धता' के रूप में परिभाषित किया गया है। अंततः कहा जा सकता है कि सीएसआर गतिविधियों ने शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आजीविका के क्षेत्र में उल्लेखनीय सकारात्मक परिवर्तन किए हैं, यद्यपि समुदाय की सहभागिता, गुणवत्ता नियंत्रण एवं दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँच में सुधार की अभी भी आवश्यकता है।

शब्दकुंजी – सी.एस.आर., एन.एम.डी.सी., दक्षिण बस्तर, आर्थिक विकास, सामाजिक विकास।

प्रस्तावना (Introduction)

भारत सरकार के इस्पात मंत्रालय के अधीन नवरत्न उद्यम एनएमडीसी (राष्ट्रीय खनिज विकास निगम) देश का सबसे बड़ा लौह अयस्क उत्पादक है। 1958 में स्थापित यह संस्था छत्तीसगढ़ के बैलाडीला पर्वत श्रृंखला (दक्षिण बस्तर) तथा कर्नाटक के बेल्लारी-होसपेट क्षेत्र में तीन प्रमुख यंत्रीकृत लौह अयस्क खदानों का संचालन करती है। बचेली एवं किरंदुल (दंतेवाड़ा, दक्षिण बस्तर) में स्थित NMDC की परियोजनाएँ वार्षिक लगभग 35–40 मिलियन टन लौह अयस्क का उत्पादन करती हैं। दक्षिण बस्तर का क्षेत्र एक ओर खनिज संपदा से परिपूर्ण है, तो दूसरी ओर यहाँ की जनजातीय आबादी अत्यंत पिछड़ेपन, कुपोषण एवं वामपंथी उग्रवाद (LWE) की चुनौतियों से जूझती रही है। इसी संदर्भ में NMDC की CSR गतिविधियाँ इस क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। NMDC के 66वें वर्ष (2024) में प्रकाशित आँकड़े बताते हैं कि कंपनी ने पिछले दस वर्षों में अकेले छत्तीसगढ़ में CSR पर लगभग ₹1,400 करोड़ का निवेश किया है। कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 135 के लागू होने से पूर्व भी NMDC सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना से इस क्षेत्र में कार्य करता रहा है। वार्षिक प्रतिवेदन 2017–18 के अनुसार NMDC का CSR व्यय 2011–12 में ₹86 करोड़ से बढ़कर 2017–18 तक औसतन ₹190 करोड़ प्रति वर्ष हो गया था। वित्त वर्ष 2021–22 में यह व्यय ₹287.33 करोड़ तक पहुँच गया, जो अनिवार्य 2% (₹148.15 करोड़) से कहीं अधिक था।

शोध उद्देश्य

1. NMDC द्वारा दक्षिण बस्तर में संचालित CSR गतिविधियों का अध्ययन करना।
2. शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका एवं आधारभूत सुविधाओं पर CSR के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. CSR कार्यान्वयन में विद्यमान चुनौतियों एवं सुधार के सुझावों को प्रस्तुत करना।

साहित्य समीक्षा

श्रीधर, एस. एवं मुबारक (2020) ने "CSR Activities of JSW Limited and NMDC Limited – A Comparative Analysis" अपने अध्ययन में जिंदल साउथ वेस्ट (JSW) एवं राष्ट्रीय खनिज विकास निगम (NMDC) के कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व गतिविधियों का तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि JSW लिमिटेड अपने संचालन में CSR को आधारशिला मानती है। NMDC लिमिटेड CSR का उपयोग अपने समग्र रणनीतिक दृष्टिकोण के रूप में करता है, जो उसके हितधारकों के साथ संवाद और सहयोग के माध्यम से ग्राहक और हितधारक मूल्य के सह-निर्माण में योगदान देता है।

रानी, सुनीता (2019) ने ''Corporate Social Responsibility (CSR): Issues And Challenges'' अपने शोध पत्र में भारतीय संदर्भ में सीएसआर का अध्ययन किया और अपने निष्कर्ष में पाया कि पिछले दशक में सीएसआर का महत्व काफी हद तक सामने आया है। समय के साथ सीएसआर का विस्तार हुआ है और इसमें आर्थिक और सामाजिक दोनों तरह के हित शामिल हो गए हैं।

CSR की वैधानिक पृष्ठभूमि : कंपनी अधिनियम 2013 के प्रतिवेदन में बताया गया है कि कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 135 भारत में CSR को वैधानिक रूप देती है। इसके अंतर्गत ₹500 करोड़ से अधिक नेट वर्थ, ₹1,000 करोड़ से अधिक टर्नओवर, अथवा ₹5 करोड़ से अधिक शुद्ध लाभ वाली कंपनियों को तीन वर्षों के औसत शुद्ध लाभ का 2% CSR पर व्यय करना अनिवार्य है। MCA CSR Portal के अनुसार 2019–20 से 2023–24 के बीच भारत का कुल CSR व्यय ₹24,966 करोड़ से बढ़कर ₹34,909 करोड़ हो गया, जो 89% की वृद्धि दर्शाता है।

मानव विकास संस्थान नई दिल्ली द्वारा NMDC के निर्देश पर तैयार 'Social Audit of NMDC CSR Initiatives' (2013–14 से 2018–19) दर्शाया गया यह तथ्य अंत्यत महत्वपूर्ण है कि सामाजिक अंकेक्षण में 188 CSR गतिविधियों का नमूना लिया गया, 583 लाभार्थियों का सर्वेक्षण किया गया, 93 FGD आयोजित किए गए और 20 ग्राम सभाएँ आयोजित की गईं। यह रिपोर्ट NMDC की अपनी वेबसाइट पर उपलब्ध है और इसकी विश्वसनीयता उच्च मानी जाती है।

शोध पद्धति एवं आंकड़ो के स्रोत

प्रस्तुत शोध वर्णनात्मक शोध प्ररचना पर आधारित है। यह शोध पूर्णतः द्वितीयक स्रोत का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों का संग्रहण हेतु शोध पत्र, शासकीय/गैर-शासकीय प्रतिवेदन, जिला सांख्यिकी पुस्तिका, छत्तीसगढ़ एवं जिला खनन विभाग द्वारा प्रकाशित आंकड़े, इंटरनेट पर उपलब्ध अध्ययन सामग्रियों का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र : दक्षिण बस्तर का परिचय

प्रस्तुत शोध अध्ययन में छत्तीसगढ़ राज्य के दक्षिण बस्तर क्षेत्र का चयन किया गया है। दक्षिण बस्तर में तीन जिले (दंतेवाड़ा, बीजापुर एवं सुकमा) सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से अत्यंत विषम है। घने दंडकारण्य वन, बैलाडीला पर्वत श्रृंखला एवं इंद्रावती नदी की घाटियाँ यहाँ के भूगोल को विशेष बनाती हैं। जनसंख्या का लगभग 78–82% हिस्सा अनुसूचित जनजातियों, यथा-गोंड, मुरिया, माड़िया, धुरवा, हलबा इत्यादि है। NMDC–CMDC Limited (NCL) की पर्यावरण प्रभाव रिपोर्ट के अनुसार इस क्षेत्र की साक्षरता दर 56.56% है एवं SC/ST जनसंख्या 58.12% से अधिक है। यह राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है, जो इस क्षेत्र के विकास की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

NMDC की उपस्थिति एवं महत्व

NMDC ने 1968 में बैलाडीला में खनन प्रारम्भ किया। बचेली एवं किरंदुल कॉम्प्लेक्स दक्षिण बस्तर की आर्थिक धुरी हैं। NMDC ने पिछले छह वर्षों में राज्य को रॉयल्टी, कर एवं शुल्क के रूप में ₹20,000 करोड़ के निकट योगदान दिया है। इसके अतिरिक्त कंपनी ने इस क्षेत्र में 5,000 से अधिक लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार एवं 20,000 से अधिक लोगों को अप्रत्यक्ष रोजगार दिया है।

दक्षिण बस्तर : अध्ययन क्षेत्र में एन.एम.डी.सी. द्वारा संचालित सी.एस.आर. प्रभाव क्षेत्र

जिला	क्षेत्रफल (किमी^{2})	ST जनसंख्या (अनुमानित %)	NMDC परियोजना	CSR प्रभाव क्षेत्र
दंतेवाड़ा	3,409	~78%	बचेली, किरंदुल कॉम्प्लेक्स	प्रत्यक्ष एवं प्रमुख
बीजापुर	6,562	~82%	अप्रत्यक्ष प्रभाव क्षेत्र	सीमित परंतु विस्तारित
सुकमा	5,636	~80%	आकार भवन सुकमा	आंशिक

NMDC की CSR गतिविधियाँ: प्रामाणिक विवरण

NMDC ने अपनी CSR गतिविधियों को पाँच प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित किया है — शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका विकास, आधारभूत सुविधाएँ एवं पर्यावरण संरक्षण। CSR कार्यान्वयन में 75% से अधिक कार्य राज्य सरकार के सहयोग से पंचायत स्तर से लेकर जिला प्रशासन तक की भागीदारी के साथ किए जाते हैं।

शिक्षा क्षेत्र

शिक्षा NMDC की CSR रणनीति का सर्वाधिक प्रमुख स्तम्भ है। NMDC की शिक्षा-सम्बंधी प्रमुख योजना 'शिक्षा सहयोग योजना' है, जिसके अंतर्गत 2008–09 से प्रति वर्ष बस्तर संभाग के 18,000 SC/ST छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाती है। यह राशि सीधे छात्रों के बैंक/डाकघर खातों में हस्तांतरित की जाती है। पात्रता की शर्त है कि परिवार की मासिक आय ₹6,000 से कम हो।

प्रमुख शिक्षा कार्यक्रम

- Shiksha Sahayog Yojana: 2008–09 से प्रतिवर्ष बस्तर के 18,000 SC/ST छात्रों को छात्रवृत्ति — वार्षिक व्यय ₹4 करोड़।
- आस्था विद्या मंदिर, नगरनार (बस्तर): 2013 में स्थापित आवासीय विद्यालय; 1,135 छात्र (Social Audit 2018–19 के समय), जिनमें से 85% जनजातीय और 216 नक्सल-विस्थापित बच्चे थे। जिन्हे नि:शुल्क शिक्षा, भोजन एवं वस्त्र उपलब्ध कराया गया।
- सक्षम I एवं II (दंतेवाड़ा): 100% दिव्यांग-अनुकूल आवासीय विद्यालय दृष्टिहीन, श्रवणहीन, शारीरिक एवं मानसिक रूप से अक्षम प्रत्येक में 100 बालक/100 बालिकाओं की क्षमता; NMDC CSR से शिक्षा, संचालन व्यय एवं छात्रवृत्ति है।
- आकार भवन, सुकमा : सक्षम की तर्ज पर दिव्यांग बच्चों के लिए विद्यालय स्थापित किया गया है।
- छू लो आसमान : दंतेवाड़ा के छात्रों को PET/PMT प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु उच्च गुणवत्ता की कोचिंग प्रदान की जा रही है।
- उज्जर 100 (Dantewada): उच्च शिक्षा हेतु जनजातीय छात्रों को वित्तीय सहायता
- बालिका शिक्षा योजना : बस्तर क्षेत्र की 40 छात्राओं को अपोलो नर्सिंग केन्द्र, हैदराबाद में बी.एस.सी. नर्सिंग एवं जी.एन.एम. पाठ्यक्रम हेतु सहायता दिया जा रहा है।
- शिक्षा सशक्तिकरण कार्यक्रम : दंतेवाड़ा के 84 सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में 4,367 बच्चे लाभान्वित हुए हैं, जिनमें 2,027 बालिकाएँ सम्मिलित हैं।
- ITI: बचेली/किरंदुल/नागरनार/भांसी (दंतेवाड़ा) में छत्तीसगढ़ में सरकारी सहयोग के बिना किसी कंपनी द्वारा स्थापित एकमात्र औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया गया है।
- पॉलिटेक्निक महाविद्यालय, दंतेवाड़ा : मेकेनिकल एवं इलेक्ट्रिकल में शिक्षण हेतु स्थापित है।

आजीविका एवं कौशल विकास

NMDC ने कौशल विकास के क्षेत्र में कांस्य शिल्प, बांस शिल्प, सिलाई-कढ़ाई, टेराकोटा, कला, वेल्डिंग, राजमिस्त्री कार्य तथा विद्युत सेवाएँ में व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए हैं। इन कार्यक्रमों ने

4,000 से अधिक व्यक्तियों को लाभ पहुँचाया है। ₹181.78 लाख के निवेश से बस्तर के 460 से अधिक बेरोजगार जनजातीय युवाओं को प्रशिक्षण दिया गया।

- मोचो बाड़ी : कृषि उत्पादकता सुधार हेतु नवाचारी योजना।
- Organic Farming एवं Café: जैविक कृषि एवं आजीविका उद्यम ।
- SHG (Self Help Groups): आजीविका संवर्धन हेतु।
- TRIFED के साथ सहयोग: जनजातीय शिल्प को बाजार से जोड़ने की पहल

स्वास्थ्य क्षेत्र

स्वास्थ्य NMDC की CSR गतिविधियों का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है। 1993 में स्थापित NMDC अपोलो अस्पताल, बचेली, इस क्षेत्र का सर्वोच्च चिकित्सा केंद्र है। यह अस्पताल अपोलो एवं यशोदा अस्पताल के सहयोग से संचालित होता है और यहाँ न केवल NMDC कर्मचारियों बल्कि स्थानीय जनजातीय समुदायों को भी निःशुल्क चिकित्सा सेवा प्रदान की जाती है।

स्वास्थ्य कार्यक्रम	**उपलब्धि**
एन.एम.डी.सी. अस्पताल (3 परियोजना स्थल)	~80,000 OPD + 8,000 इनपेशेंट/वर्ष
NMDC Hospitals (वर्तमान)	~1,00,000 OPD + 35,000 इनपेशेंट/वर्ष
मोबाईल क्लीनिक (HoW)	बैलाडीला के 37 गाँवों में ~20,000 ग्रामवासी लाभान्वित
मेडिकल कॉलेज, जगदलपुर	NMDC का ₹50 करोड़ का योगदान
कौशल विकास (स्वास्थ्य कार्यकर्ता)	460+ जनजाति युवा प्रशिक्षित; ₹181.78 लाख निवेश

आधारभूत सुविधाएँ

आधारभूत सुविधाओं के विकास के क्षेत्र में NMDC का योगदान पिछले कुछ दशकों में अत्यंत महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय रहा है। Annual Report 2017–18 के अनुसार बैलाडीला परियोजना के आसपास के क्षेत्रों में अवसंरचनात्मक विकास को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से 89 कलवर्ट एवं पुलों का निर्माण किया गया है। इसके अतिरिक्त लगभग 133 किलोमीटर सड़कों की ब्लैक-टॉपिंग तथा 123 किलोमीटर WBM सड़कों का निर्माण कर क्षेत्रीय संपर्क व्यवस्था को बेहतर बनाया गया है, जिससे स्थानीय निवासियों की आवागमन सुविधाओं में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

- सड़क एवं कनेक्टिविटी: गौरव पथ (दंतेवाड़ा) — 4-लेन सड़क; जगदलपुर के लिए 19.4 किमी का बाईपास
- शंकिनी नदी पर उच्च स्तरीय ब्रिज निर्माण, दंतेवाड़ा
- पोटा केबिन: दूरस्थ ग्रामों में छात्रावास सुविधा।
- 16 गाँवों में खुले में शौच मुक्त (ODF) करने हेतु शौचालय निर्माण।
- क्षेत्र में सिंचाई एवं पेयजल आपूर्ति के लिए सौर ऊर्जा स्थापना हेतु सहयोग।

- FY 2024–25 के लिए अनुमोदित 148 परियोजनाएँ: सड़क, सामुदायिक भवन, स्वास्थ्य केंद्र, Anganwadi केंद्र (₹113.53 करोड़)

पर्यावरण संरक्षण

NMDC ने खनन-प्रभावित क्षेत्रों में पर्यावरण संरक्षण हेतु व्यापक कदम उठाए हैं। NMDC के 66वें वर्ष की रिपोर्ट के अनुसार कंपनी ने 30 लाख (3 मिलियन) से अधिक वृक्ष लगाए हैं। बचेली कॉम्प्लेक्स में वनीकरण के लिए राज्य की Hariyar Kosh Initiative में ₹112 करोड़ का निवेश किया गया है। इसके अतिरिक्त NMDC Carbon Disclosure Project (CDP) से भी सम्बद्ध है।

- 3 मिलियन से अधिक वृक्षारोपण (2024 तक)
- हरियर कोश, बचेली: ₹112 करोड़ निवेश
- 2016-17 में छत्तीसगढ़ राज्य वन निगम के साथ मिलकर 315 किमी सड़क किनारे वृक्षारोपण हेतु ₹42.94 करोड़ व्यय।
- 2022 में दंतेवाड़ा वन क्षेत्र में वन्य जीव संरक्षण हेतु ₹19.98 करोड़ व्यय।

सांस्कृतिक विरासत एवं CSR

NMDC की CSR गतिविधियाँ केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं हैं — सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। NMDC बस्तर की जनजातीय परंपराओं के संरक्षण हेतु सक्रिय वित्तीय एवं आधारभूत सहायता प्रदान करता है।

- बस्तर दशहरा (लोकोत्सव): विश्व का सबसे दीर्घकालिक (75 दिन) उत्सव — NMDC का FY 2024–25 में ₹50 लाख का योगदान। यह उत्सव दंतेश्वरी देवी की पूजा पर आधारित है और पर्यटन व आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- मड़ई-मेला: जनजातीय परंपराओं का उत्सव — NMDC CSR द्वारा वित्तीय सहायता; जनजातीय परम्परा, संगीत, नृत्य एवं अनुष्ठानों का संरक्षण
- जनजातीय शिल्प प्रशिक्षण: परम्परागत कलाओं को आर्थिक अवसर में बदलने की पहल।

चुनौतियाँ

दक्षिण बस्तर क्षेत्र में NMDC की CSR गतिविधियों के प्रभावी क्रियान्वयन के समक्ष कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। संरचनात्मक स्तर पर सबसे प्रमुख चुनौती नक्सल गतिविधियाँ है, जिसने क्षेत्रीय विकास प्रक्रियाओं को प्रभावित किया है। आस्था विद्या मंदिर में अध्ययनरत 1,135 विद्यार्थियों में से 216 छात्र नक्सल हिंसा के कारण विस्थापित परिवारों से संबंधित हैं तथा लगभग 20 बच्चे नक्सल हिंसा के कारण अनाथ हो चुके हैं। यह स्थिति दर्शाती है कि उग्रवाद प्रभावित वातावरण CSR कार्यक्रमों के सुचारु संचालन के लिए एक गंभीर सामाजिक-राजनीतिक चुनौती प्रस्तुत करता है। इसी

प्रकार CSR गतिविधियों के वास्तविक प्रभाव का आकलन करते समय कारण निर्धारण की समस्या भी सामने आता है, क्योंकि क्षेत्र में संचालित अन्य शासकीय योजनाओं, जैसे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MGNREGS) तथा प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY), के प्रभाव से CSR के प्रत्यक्ष योगदान को पृथक रूप से मापना कठिन हो जाता है।अन्य चुनौतियों में दूरस्थ एवं नक्सल-प्रभावित ग्रामों तक CSR गतिविधियों की सीमित पहुँच, कार्यक्रमों की दीर्घकालिक टिकाऊता (Sustainability) सुनिश्चित करने की आवश्यकता, तथा स्थानीय समुदाय की सहभागिता (Community Participation) को और अधिक सशक्त बनाने की आवश्यकता प्रमुख रूप से शामिल हैं। इन चुनौतियों के समाधान के बिना CSR पहलों की व्यापकता और स्थायित्व को पूर्ण रूप से सुनिश्चित करना कठिन हो सकता है।

सुझाव

- CSR गतिविधियों के लिए एक स्थायी एवं पारदर्शी निगरानी तंत्र विकसित किया जाए।
- लाभार्थियों की आवश्यकता-आधारित योजना निर्माण सुनिश्चित की जाए।
- NMDC CSR का दायरा दूरस्थ एवं LWE-प्रभावित क्षेत्रों तक विस्तारित किया जाए।
- सफल मॉडल — जैसे आस्था विद्या मंदिर, सक्षम, मोबाईल क्लीनिक HoW का अन्य जिलों में प्रसार हो।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि NMDC की कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) गतिविधियाँ दक्षिण बस्तर क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण एवं सकारात्मक भूमिका निभा रही हैं। पिछले दस वर्षों में छत्तीसगढ़ राज्य में लगभग ₹1,400 करोड़ का CSR निवेश यह दर्शाता है कि कंपनी न केवल औद्योगिक उत्पादन तक सीमित है, बल्कि राज्य सरकार के विकासात्मक प्रयासों के पूरक के रूप में भी कार्य कर रही है। शिक्षा के क्षेत्र में NMDC द्वारा प्रतिवर्ष लगभग 18,000 छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान की जा रही है, साथ ही "सक्षम" जैसे विशेष कार्यक्रमों के माध्यम से दिव्यांग छात्रों की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त शिक्षा विकास कार्यक्रम के माध्यम से 4,367 से अधिक बच्चों को शैक्षणिक सहायता प्रदान की गई है। स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में 1993 से संचालित NMDC अपोलो अस्पताल क्षेत्रीय स्वास्थ्य सुविधाओं को सुदृढ़ कर रहा है, जो वर्तमान में 1,00,000 से अधिक बाह्य रोगियों (OPD) तथा 35,000 से अधिक आंतरिक रोगियों (In-patient) को सेवा प्रदान कर चुका है। साथ ही "मोबाईल क्लीनिक" (Hospital on Wheels) जैसी पहल के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों तक स्वास्थ्य सेवाएँ पहुँचाई जा रही हैं। मानव विकास संस्थान (IHD) द्वारा किए गए स्वतंत्र सामाजिक अंकेक्षण में भी NMDC की CSR गतिविधियों को सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय दृष्टि से दूरगामी लाभ प्रदान करने वाला बताया गया है। इसके अतिरिक्त कंपनी द्वारा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया गया है और कर एवं रॉयल्टी के माध्यम से राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है। सांस्कृतिक संरक्षण के क्षेत्र में भी NMDC द्वारा बस्तर दशहरा एवं मड़ई मेला जैसे पारंपरिक आयोजनों को CSR सहयोग प्रदान किया जा रहा है, जो स्थानीय संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण की दिशा में एक विशिष्ट एवं सराहनीय पहल है।

11. संदर्भ सूची (References)

- NMDC Limited. (2018). Annual Report 2017–18. Hyderabad: NMDC Limited. https://nmdc.co.in/investors/financial-details/annual-reports
- NMDC Limited. (2022). CSR Expenditure 2021–22. India CSR, 6 September 2022. https://indiacsr.in
- Sarkar, S., Endow, T., Dubey, S.K., & Dhote, S. (2024). Social Audit of NMDC CSR Initiatives (2013–14 to 2018–19). Institute for Human Development (IHD), New Delhi. https://nmdc.co.in/cms-admin/Upload/Impact_Assesment/
- TheCSRUniverse Team. (2024, December 3). NMDC: Driving All-Round Development in Bastar and Dantewada. https://thecsruniverse.com
- India CSR. (2024, September 4). NMDC: Changing the Narrative of Chhattisgarh Over the Last Six Decades. https://indiacsr.in
- India CSR. (2012, February 17). Corporate Social Responsibility of NMDC. India CSR. https://indiacsr.in
- PSU Watch. (2024, November 19). NMDC approves Rs 113.53 crore CSR projects in Chhattisgarh. https://psuwatch.com
- The Statesman. (2024, September 6). NMDC forges Chhattisgarh's future with iron will. https://thestatesman.com
- Outlook India. (2024). Crafting Futures, Changing Destinies: NMDC. Outlook India CSR Edition. https://outlookindia.com/csr/csr-2023/nmdc
- NMDC–CMDC Limited (NCL). (2022). Executive Summary for Public Hearing, Bailadila Iron Ore Deposit-4 Project, EIA Report. Accredited by QCI/NABET. https://enviscecb.org)
- CSRBox. (n.d.). Education Initiatives: National Mineral Development Corporation Ltd. (NMDC), Chhattisgarh. https://csrbox.org
- Ministry of Corporate Affairs (MCA), Government of India. (2025). CSR Spending: Details and Data Access. Lok Sabha Unstarred Question No. 2501, 04.08.2025. TaxGuru.in. https://csr.gov.in
- Ministry of Corporate Affairs (MCA), Government of India. (2013). Companies Act, 2013 — Section 135 (CSR Provisions). New Delhi: Government of India.
- NMDC Limited. (Various Years, 2013–2025). Annual Reports & CSR Reports. Hyderabad: NMDC Limited. https://nmdc.co.in/investors/financial-details/annual-reports
- छत्तीसगढ़ शासन. (2022–23). जिला सांख्यिकीय पत्रिका: दंतेवाड़ा, बीजापुर, सुकमा। रायपुर: संचालनालय आर्थिक एवं सांख्यिकी।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 27-30

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

भारतीय संघवाद में केंद्र–राज्य संबंधों की बदलती प्रकृति

अशोक कुमार गर्ग
पिता – रावता राम
परास्नातक – राजनीति विज्ञान, नेट जून 2025

भारत की शासन व्यवस्था संघात्मक स्वरूप की है, जिसमें केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है। भारतीय संविधान ने एक ऐसी संघीय संरचना को अपनाया है जिसमें संघात्मक तथा एकात्मक दोनों प्रकार की विशेषताएँ विद्यमान हैं। संविधान निर्माताओं ने देश की भौगोलिक विशालता, सांस्कृतिक विविधता तथा प्रशासनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एक ऐसी व्यवस्था बनाई जिसमें राष्ट्रीय एकता भी बनी रहे और राज्यों को भी पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त हो सके। स्वतंत्रता के बाद से अब तक केंद्र और राज्यों के संबंधों में समय–समय पर महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले हैं। प्रारंभिक वर्षों में केंद्र की शक्ति अधिक प्रभावी रही, किंतु बाद के दशकों में राज्यों की भूमिका और प्रभाव में वृद्धि हुई है। इस शोध–आलेख में भारतीय संघवाद की प्रकृति, केंद्र–राज्य संबंधों का संवैधानिक आधार, इन संबंधों में समय के साथ हुए परिवर्तन तथा समकालीन चुनौतियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तावना –

भारत विश्व का एक विशाल और बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है। यहाँ अनेक भाषाएँ, धर्म, जातियाँ तथा सांस्कृतिक परंपराएँ विद्यमान हैं। ऐसी विविधता वाले देश में शासन व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए एक संतुलित संरचना की आवश्यकता होती है। इसी उद्देश्य से भारतीय संविधान ने संघीय शासन प्रणाली को अपनाया। संघीय व्यवस्था का मूल सिद्धांत यह है कि शासन की शक्तियों का विभाजन केंद्र और राज्यों के बीच इस प्रकार किया जाए कि दोनों स्तर की सरकारें अपने–अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकें।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने संघीय व्यवस्था को अपनाते समय राष्ट्रीय एकता और अखंडता को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। इसलिए भारतीय संघवाद को पूर्णतः पारंपरिक संघीय व्यवस्था नहीं माना जाता, बल्कि इसे एक ऐसी व्यवस्था कहा जाता है जिसमें संघीय तथा एकात्मक दोनों तत्वों का समन्वय है। समय के साथ राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण केंद्र–राज्य संबंधों की प्रकृति भी बदलती रही है।

स्वतंत्रता के प्रारंभिक दशकों में केंद्र का प्रभाव अधिक था, किंतु बहुदलीय राजनीति के उदय, क्षेत्रीय दलों के विकास तथा राज्यों की बढ़ती राजनीतिक शक्ति के कारण संघीय ढाँचे में संतुलन की दिशा में परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान समय में विकास, प्रशासनिक समन्वय और लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करने के लिए केंद्र और

राज्यों के बीच सहयोग की भावना अत्यंत आवश्यक मानी जाती है।

भारतीय संघवाद की अवधारणा –

संघवाद वह शासन प्रणाली है जिसमें सत्ता का विभाजन दो स्तरों के बीच किया जाता है। भारत में यह विभाजन केंद्र और राज्यों के बीच किया गया है। भारतीय संविधान ने संघीय व्यवस्था को अपनाते हुए केंद्र और राज्यों के अधिकारों और कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है।

भारतीय संघवाद की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें केंद्र को अपेक्षाकृत अधिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि स्वतंत्रता के समय देश को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था, जैसे विभाजन की समस्या, क्षेत्रीय असंतोष, आर्थिक पिछड़ापन तथा राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता। इसलिए संविधान निर्माताओं ने एक मजबूत केंद्र की कल्पना की।

भारतीय संघवाद में शक्तियों का विभाजन संविधान की सातवीं अनुसूची के माध्यम से किया गया है। इस अनुसूची में तीन सूचियाँ दी गई हैंकृसंघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। संघ सूची में वे विषय शामिल हैं जिन पर केवल केंद्र सरकार कानून बना सकती है। राज्य सूची में वे विषय हैं जिन पर राज्य सरकारों को कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची में ऐसे विषय हैं जिन पर केंद्र और राज्य दोनों कानून बना सकते हैं। केंद्र–राज्य संबंधों का संवैधानिक आधार – भारतीय संविधान ने केंद्र और राज्यों के बीच संबंधों को तीन प्रमुख आधारों पर स्थापित किया हैकृविधायी संबंध, प्रशासनिक संबंध और वित्तीय संबंध।

विधायी संबंध –

विधायी संबंधों के अंतर्गत यह निर्धारित किया गया है कि किस स्तर की सरकार को किन विषयों पर कानून बनाने का अधिकार होगा। संघ सूची में रक्षा, विदेश नीति, संचार, मुद्रा, रेल और राष्ट्रीय महत्व के विषय शामिल हैं। इन विषयों पर केवल केंद्र सरकार ही कानून बना सकती है। राज्य सूची में पुलिस, कृषि, सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्थानीय शासन आदि विषय आते हैं, जिन पर राज्य सरकारों का अधिकार होता है।

समवर्ती सूची में शिक्षा, वन, श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा जैसे विषय शामिल हैं। इन विषयों पर केंद्र और राज्य दोनों कानून बना सकते हैं, किंतु यदि दोनों के कानूनों में टकराव हो तो केंद्र का कानून प्रभावी होता है।

प्रशासनिक संबंध –

प्रशासनिक संबंधों के अंतर्गत केंद्र और राज्यों के बीच प्रशासनिक सहयोग की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार राज्य सरकारें केंद्र के कानूनों को लागू करने में सहयोग करती हैं। साथ ही, केंद्र सरकार को यह अधिकार भी दिया गया है कि वह राष्ट्रीय हित में राज्यों को आवश्यक दिशा–निर्देश दे सके।

वित्तीय संबंध –

वित्तीय संबंध केंद्र और राज्यों के बीच संसाधनों के वितरण से संबंधित हैं। संविधान ने करों के विभिन्न स्रोतों को केंद्र और राज्यों के बीच विभाजित किया है। साथ ही राज्यों को आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए वित्त आयोग की व्यवस्था की गई है। वित्त आयोग समय–समय पर यह सुझाव देता है कि केंद्र और राज्यों के बीच करों और अनुदानों का वितरण किस प्रकार किया जाए।

स्वतंत्रता के बाद केंद्र-राज्य संबंधों का विकास –

स्वतंत्रता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में भारतीय राजनीति में एक ही दल का प्रभुत्व था। उस समय केंद्र और अधिकांश राज्यों में एक ही दल की सरकारें थीं, जिसके कारण केंद्र–राज्य संबंध अपेक्षाकृत सहयोगपूर्ण रहे। इस अवधि में केंद्र की भूमिका अधिक प्रभावी रही और राष्ट्रीय स्तर पर विकास योजनाओं को लागू करने में राज्यों ने केंद्र के साथ मिलकर कार्य किया।

किन्तु 1967 के बाद भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। कई राज्यों में अलग–अलग दलों की सरकारें बनने लगीं। इससे केंद्र और राज्यों के बीच राजनीतिक मतभेद बढ़ने लगे। राज्यों ने अधिक स्वायत्तता और अधिकारों की माँग उठानी शुरू की। इसी कारण केंद्र–राज्य संबंधों के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता महसूस की गई।

क्षेत्रीय दलों का उदय और उसका प्रभाव –

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों के उदय ने संघीय ढाँचे को नई दिशा प्रदान की। इन दलों ने अपने–अपने राज्यों के हितों को प्रमुखता से उठाया और केंद्र से अधिक अधिकारों की माँग की। इससे राज्यों की राजनीतिक शक्ति में वृद्धि हुई।

1990 के दशक में गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ। इस अवधि में केंद्र सरकार को विभिन्न क्षेत्रीय दलों के समर्थन पर निर्भर रहना पड़ा। परिणामस्वरूप राज्यों की भूमिका और महत्व बढ़ गया तथा केंद्र को राज्यों के साथ अधिक सहयोगात्मक रवैया अपनाना पड़ा।

आर्थिक नीतियों का प्रभाव –

आर्थिक सुधारों और विकास योजनाओं के विस्तार ने भी केंद्र–राज्य संबंधों को प्रभावित किया है। आर्थिक विकास के लिए केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग आवश्यक हो गया है। विकास परियोजनाओं, आधारभूत संरचना निर्माण तथा सामाजिक कल्याण योजनाओं को सफल बनाने के लिए दोनों स्तर की सरकारों के बीच समन्वय आवश्यक है।

राज्यों को अधिक वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने के लिए समय–समय पर विभिन्न सुधार किए गए हैं। इससे राज्यों को विकास कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता मिली है।

केंद्र-राज्य संबंधों में सहयोग की प्रवृत्ति –

वर्तमान समय में केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग की भावना को अधिक महत्व दिया जा रहा है। विकास योजनाओं, आर्थिक प्रगति और सामाजिक कल्याण के लिए दोनों स्तर की सरकारों के बीच समन्वय आवश्यक माना जाता है।

नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन में राज्यों की भागीदारी बढ़ाने के प्रयास भी किए गए हैं। इससे संघीय व्यवस्था को अधिक संतुलित और प्रभावी बनाने में सहायता मिली है।

समकालीन चुनौतियाँ –

केंद्र–राज्य संबंधों के सामने आज कई चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। इनमें राजनीतिक मतभेद, संसाधनों का असमान वितरण, प्रशासनिक समन्वय की कमी तथा क्षेत्रीय असंतुलन प्रमुख हैं। कई बार राज्यों को यह महसूस होता है कि उन्हें पर्याप्त अधिकार और संसाधन नहीं मिल रहे हैं। दूसरी ओर केंद्र का दृष्टिकोण राष्ट्रीय हितों

की रक्षा करना होता है।

इन चुनौतियों का समाधान सहयोग और संवाद के माध्यम से ही संभव है। यदि केंद्र और राज्य एक दूसरे के अधिकारों और जिम्मेदारियों का सम्मान करते हुए कार्य करें तो संघीय व्यवस्था अधिक मजबूत हो सकती है।

निष्कर्ष –

भारतीय संघवाद एक गतिशील और विकसित होती व्यवस्था है। समय के साथ इसकी प्रकृति में निरंतर परिवर्तन हुआ है। प्रारंभिक दशकों में केंद्र की शक्ति अधिक प्रभावी रही, किंतु बाद के वर्षों में राज्यों की भूमिका और प्रभाव में वृद्धि हुई है।

वर्तमान समय में देश के समग्र विकास और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग, समन्वय और विश्वास की भावना को मजबूत करना अत्यंत आवश्यक है। संघीय व्यवस्था तभी सफल हो सकती है जब दोनों स्तर की सरकारें परस्पर सहयोग और संतुलन के साथ कार्य करें।

संदर्भ ग्रंथ –

1. डॉ. सुभाष कश्यप – भारतीय संविधान और राजनीति।
2. डॉ. डी. डी. बसु – भारत का संविधान और एक परिचय।
3. डॉ. बी. एल. फड़िया– भारतीय शासन और राजनीति।
4. डॉ. एम. पी. जैन – भारतीय संवैधानिक कानून।
5. डॉ. वी. एन. शुक्ल – भारत का संविधान।
6. डॉ. आर. सी. अग्रवाल – भारतीय शासन और राजनीति।
7. डॉ. के. के. शर्मा – भारतीय राजनीति का विकास।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 31-38

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

दिनकर के साहित्य में देशभक्ति : जनमानस को जाग्रत करने वाली प्रेरक शक्ति का विश्लेषण

जयप्रकाश रौशन, शोधार्थी,
डॉ. विनोद कुमार शर्मा, शोध निर्देशक एवं प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग, डॉ. सी. वी. रमण विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।

सार :

हिंदी साहित्य के राष्ट्रकवि के रूप में प्रतिष्ठित रामधारी सिंह दिनकर का काव्य भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विकास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य दिनकर के साहित्य में निहित देशभक्ति की अवधारणा का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करना है कि उनकी काव्य–दृष्टि किस प्रकार जनमानस के जागरण, राष्ट्रीय अस्मिता के निर्माण तथा सामाजिक–सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती है। दिनकर का राष्ट्रवाद केवल भावनात्मक आवेग या राजनीतिक नारेबाजी तक सीमित नहीं है, अपितु वह नैतिक पुनर्निर्माण, सामाजिक न्याय, ऐतिहासिक चेतना तथा सांस्कृतिक गौरव के समन्वित दृष्टिकोण पर आधारित है।

उनकी प्रमुख कृतियाँ – 'हुंकार', 'कुरुक्षेत्र' तथा 'रश्मिरथी'कृदेशभक्ति की बहुआयामी अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती हैं। इन कृतियों में पराधीन भारत की पीड़ा, स्वतंत्रता–संग्राम की वैचारिक पृष्ठभूमि, अन्याय के प्रतिरोध की चेतना तथा आत्मसम्मान की पुकार को सशक्त काव्यात्मक अभिव्यक्ति मिली है। दिनकर ने मिथकीय एवं ऐतिहासिक प्रतीकों के माध्यम से समकालीन राजनीतिक–सामाजिक परिस्थितियों का आलोचनात्मक विवेचन करते हुए जनसामान्य को सक्रिय सहभागिता हेतु प्रेरित किया।

इस अध्ययन में गुणात्मक अनुसंधान पद्धति के अंतर्गत पाठ–विश्लेषण और व्याख्यात्मक दृष्टिकोण का अनुसरण किया गया है। निष्कर्षतः यह प्रतिपादित होता है कि दिनकर की देशभक्ति चेतना उग्र राष्ट्रवाद के स्थान पर नैतिक–सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की स्थापना करती है, जो जनमानस में आत्मगौरव, कर्तव्यबोध और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को सुदृढ़ करती है। अतः दिनकर का साहित्य भारतीय राष्ट्रीय विमर्श में एक दीर्घकालिक प्रेरक शक्ति के रूप में आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

कुंजी शब्द :

रामधारी सिंह दिनकर, देशभक्ति, राष्ट्रीय चेतना, जन–जागरण, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, स्वतंत्रता–संग्राम, काव्य–विमर्श।

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के आधुनिक विकासक्रम में राष्ट्रीय चेतना का जो सशक्त और ओजस्वी स्वर उभरकर सामने आता है, उसमें रामधारी सिंह दिनकर का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। दिनकर को 'राष्ट्रकवि' की उपाधि केवल लोकप्रियता के कारण प्राप्त नहीं हुई, बल्कि उनके साहित्य में व्यक्त राष्ट्रचेतना, जन–प्रेरणा और सांस्कृतिक आत्मबोध ने उन्हें भारतीय राष्ट्रीय जीवन का प्रतिनिधि कवि सिद्ध किया। उनके काव्य में देशभक्ति एक केंद्रीय संवेदना के रूप में विद्यमान है, जो राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा से आगे बढ़कर सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक न्याय, नैतिक पुनर्जागरण तथा जन–जागरण की व्यापक अवधारणा को समाहित करती है। प्रस्तुत शोध–पत्र "दिनकर के साहित्य में देशभक्ति रू जनमानस को जाग्रत करने वाली प्रेरक शक्ति का विश्लेषण" इसी बहुआयामी राष्ट्रीय चेतना का अकादमिक विवेचन करने का प्रयास है।

भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम के दौरान साहित्य ने केवल सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति नहीं की, बल्कि वह जनांदोलन का वैचारिक और भावनात्मक माध्यम बना। औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संघर्ष ने भारतीय समाज में आत्मचेतना, अस्मिताबोध और स्वाधीनता की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न की। इस ऐतिहासिक संदर्भ में हिंदी कविता ने जनमानस को संगठित करने और प्रेरित करने का कार्य किया। दिनकर इसी ऐतिहासिक संक्रमण के कवि हैं। उनका साहित्य स्वतंत्रता–पूर्व संघर्ष की ज्वाला और स्वतंत्रता–उत्तर राष्ट्र–निर्माण की चुनौतियों दोनों का साक्षी है।

दिनकर की प्रारंभिक काव्यधारा में विद्रोह, प्रतिरोध और स्वाधीनता का स्वर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनकी कृति 'हुंकार' में व्यक्त ओजस्विता औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध एक सशक्त उद्घोष है। यहाँ देशभक्ति भावनात्मक आवेग मात्र नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध नैतिक प्रतिरोध की चेतना है। दिनकर युवाओं को संबोधित करते हुए उन्हें कर्तव्य, साहस और संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार उनकी देशभक्ति सक्रिय कर्मशीलता का आह्वान करती है।

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का एक विशिष्ट आयाम उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण है। वे भारतीय परंपरा, इतिहास और मिथकीय आख्यानों को आधुनिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित करते हैं। उनकी कृति 'कुरुक्षेत्र' में महाभारत के प्रसंग के माध्यम से युद्ध और शांति, हिंसा और नैतिकता, कर्तव्य और मानवीयता जैसे प्रश्नों का गहन विवेचन किया गया है। यहाँ देशभक्ति युद्धोन्माद नहीं है, बल्कि न्यायपूर्ण समाज की स्थापना का संकल्प है। दिनकर राष्ट्रवाद को नैतिकता और मानवतावाद से जोड़ते हैं, जिससे उनकी दृष्टि संतुलित और विवेकपूर्ण प्रतीत होती है।

इसी प्रकार 'रश्मिरथी' में कर्ण का चरित्र सामाजिक विषमता और आत्मसम्मान के प्रश्न को राष्ट्रीय विमर्श से जोड़ता है। कर्ण उस उपेक्षित और वंचित वर्ग का प्रतीक बन जाता है, जिसे सम्मान और अवसर से वंचित किया गया है। दिनकर के लिए सच्ची देशभक्ति तब तक पूर्ण नहीं हो सकती, जब तक समाज के अंतिम व्यक्ति को न्याय और प्रतिष्ठा प्राप्त न हो। इस प्रकार उनकी देशभक्ति सामाजिक समानता और समावेशिता की धारणा से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है।

दिनकर के साहित्य में देशभक्ति की अवधारणा को यदि सैद्धांतिक रूप से विश्लेषित किया जाए, तो यह तीन प्रमुख स्तरों पर अभिव्यक्त होती है – पहला, राजनीतिक स्वाधीनता की आकांक्षा, दूसरा, सांस्कृतिक अस्मिता

की पुर्नस्थापना, और तीसरा, नैतिक–सामाजिक पुनर्निर्माण का आग्रह। इन तीनों स्तरों का समन्वय उनकी काव्य–दृष्टि को विशिष्ट बनाता है। वे केवल सत्ता–परिवर्तन को राष्ट्रनिर्माण नहीं मानते, बल्कि चरित्र–निर्माण और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी समान रूप से आवश्यक समझते हैं।

स्वतंत्रता–उत्तर भारत में जब राष्ट्र–निर्माण की चुनौतियाँ सामने आईं, तब दिनकर ने राष्ट्रीय चेतना को आत्मालोचन और नैतिक पुनर्गठन की दिशा में प्रेरित किया। उनके अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ केवल राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना नहीं है, बल्कि सामाजिक समरसता, आर्थिक न्याय और सांस्कृतिक आत्मगौरव की स्थापना भी है। उनकी कविताएँ नागरिकों में कर्तव्यबोध और आत्मसंयम की भावना को जागृत करती हैं। यह दृष्टि उनकी देशभक्ति को स्थायी और सार्थक बनाती है।

भाषिक और शैलीगत दृष्टि से भी दिनकर का साहित्य जनमानस से प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करता है। उनकी भाषा ओजस्वी, प्रांजल और प्रभावोत्पादक है। वे जटिल वैचारिक अवधारणाओं को भी सरल और प्रेरक शैली में व्यक्त करते हैं। यही कारण है कि उनकी कविताएँ केवल साहित्यिक कृतियाँ न रहकर जनांदोलन का स्वर बन गईं। इस प्रकार दिनकर की काव्यभाषा देशभक्ति की प्रेरणा को व्यापक समाज तक पहुँचाने का प्रभावी माध्यम सिद्ध होती है।

देशभक्ति की समकालीन अवधारणा प्रायः वैचारिक बहसों और राजनीतिक विमर्शों के केंद्र में रहती है। ऐसे समय में दिनकर की राष्ट्रवादी दृष्टि संतुलन और नैतिकता का उदाहरण प्रस्तुत करती है। उनका राष्ट्रवाद संकीर्णता या आक्रामकता पर आधारित नहीं है, बल्कि वह न्याय, समानता और सहअस्तित्व के मूल्यों से अनुप्राणित है। वे राष्ट्रप्रेम को मानवताविरोधी प्रवृत्तियों से अलग रखते हैं और उसे सामाजिक उत्तरदायित्व तथा नैतिक आचरण से जोड़ते हैं।

साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि दिनकर का काव्य जन–जागरण की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाता है। उनकी कविताएँ व्यक्ति के भीतर आत्मगौरव और साहस का संचार करती हैं, साथ ही उसे सामाजिक परिवर्तन की दिशा में प्रेरित करती हैं। यह प्रेरणा केवल भावनात्मक उत्तेजना नहीं, बल्कि वैचारिक स्पष्टता और नैतिक प्रतिबद्धता पर आधारित है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य दिनकर के साहित्य में व्यक्त देशभक्ति की बहुआयामी अभिव्यक्तियों का विश्लेषण करना तथा यह प्रतिपादित करना है कि उनकी काव्य–दृष्टि किस प्रकार जनमानस को जाग्रत करने वाली प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती है। इसके अंतर्गत उनकी प्रमुख कृतियों का पाठ–विश्लेषण, वैचारिक विवेचन तथा सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों में मूल्यांकन किया जाएगा।

यह कहा जा सकता है कि दिनकर का साहित्य भारतीय राष्ट्रीय जीवन का जीवंत दस्तावेज है। उसमें स्वतंत्रता–संग्राम की चेतना, सांस्कृतिक गौरव का भाव और सामाजिक न्याय की आकांक्षा समन्वित रूप में अभिव्यक्त होती है। उनकी देशभक्ति जनमानस को केवल भावनात्मक रूप से उद्दीप्त नहीं करती, बल्कि उसे नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर सक्रिय नागरिक बनने की प्रेरणा प्रदान करती है। इसी कारण दिनकर का साहित्य आज भी राष्ट्रीय विमर्श में प्रासंगिक और प्रेरणास्पद बना हुआ है।

उद्देश्य :

1. **दिनकर के साहित्य में देशभक्ति की अवधारणा का विश्लेषण करना :**

रामधारी सिंह दिनकर की प्रमुख काव्य–कृतियों के संदर्भ में यह परीक्षण करना कि उनके साहित्य में देशभक्ति किन वैचारिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक आयामों में अभिव्यक्त होती है।

2. देशभक्ति और जन–जागरण के अंतर्संबंध का मूल्यांकन करना :

यह विश्लेषण करना कि दिनकर की काव्य–दृष्टि किस प्रकार जनमानस में राष्ट्रीय चेतना, आत्मगौरव, कर्तव्यबोध तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करती है।

3. दिनकर के राष्ट्रवाद की समकालीन प्रासंगिकता का परीक्षण करना :

वर्तमान सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में दिनकर की देशभक्ति–चेतना की उपयोगिता, नैतिकता एवं समावेशिता का आलोचनात्मक अध्ययन करना।

अनुसंधान पद्धति :

यह शोध–पत्र "दिनकर के साहित्य में देशभक्ति : जनमानस को जाग्रत करने वाली प्रेरक शक्ति का विश्लेषण" गुणात्मक अनुसंधान पद्धति पर आधारित है। इस अध्ययन का स्वरूप विश्लेषणात्मक व्याख्यात्मक तथा आलोचनात्मक है। शोध का उद्देश्य रामधारी सिंह दिनकर के साहित्य में निहित देशभक्ति की अवधारणा का बहुआयामी अध्ययन करना तथा यह प्रतिपादित करना है कि उनकी काव्य–दृष्टि किस प्रकार जनमानस को जाग्रत करने वाली प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती है।

1. अनुसंधान का स्वरूप :

यह शोध–पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें दिनकर की प्रमुख काव्य–कृतियों का गहन पाठ–विश्लेषण किया गया है। शोध का लक्ष्य तथ्यों का मात्र संकलन नहीं, बल्कि उनकी वैचारिक संरचना, प्रतीकात्मकता, भाषा–शैली तथा राष्ट्रवादी दृष्टि का आलोचनात्मक परीक्षण करना है।

2. शोध–दृष्टिकोण :

निम्नलिखित दृष्टिकोणों का प्रयोग किया गया है –

2.1. पाठ–विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण :

दिनकर की प्रमुख कृतियों – 'हुंकार', 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' का सूक्ष्म अध्ययन कर उनमें व्यक्त देशभक्ति, राष्ट्रवाद, सामाजिक न्याय तथा जन–जागरण के तत्वों का विश्लेषण किया गया है।

2.2. ऐतिहासिक–संदर्भात्मक दृष्टिकोण :

दिनकर के साहित्य को स्वतंत्रता–संग्राम तथा स्वतंत्रता–उत्तर भारत के सामाजिक–राजनीतिक संदर्भ में परखा गया है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि उनकी देशभक्ति समकालीन परिस्थितियों से किस प्रकार संबद्ध है।

2.3. आलोचनात्मक–व्याख्यात्मक दृष्टिकोण :

काव्य–पाठ के अंतर्निहित अर्थों, प्रतीकों और रूपकों का विश्लेषण कर यह समझने का प्रयास किया गया है कि दिनकर की काव्य–दृष्टि जनमानस में किस प्रकार प्रेरक चेतना का संचार करती है।

3. स्रोत–सामग्री :

(क) प्राथमिक स्रोत :

दिनकर की मूल काव्य–कृतियाँ, निबंध तथा भाषण इस शोध के प्राथमिक स्रोत हैं। विशेष रूप से उनकी

राष्ट्रवादी काव्य–रचनाओं को आधार बनाया गया है।

(ख) द्वितीयक स्रोत :

दिनकर के साहित्य पर प्रकाशित शोध–पत्र, आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध–प्रबंध, तथा साहित्यिक समीक्षाएँ द्वितीयक स्रोत के रूप में प्रयुक्त की गई हैं। इन स्रोतों के माध्यम से पूर्ववर्ती अध्ययनों का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

4. विश्लेषण की पद्धति :

अध्ययन में गुणात्मक सामग्री का विषय–वस्तु विश्लेषण किया गया है। काव्यांशों में प्रयुक्त प्रतीकों, बिंबों, अलंकारों तथा ओज–तत्वों का परीक्षण कर यह स्पष्ट किया गया है कि वे किस प्रकार राष्ट्रीय चेतना और जन–जागरण की प्रक्रिया को सशक्त बनाते हैं।

5. शोध की सीमाएँ :

यह अध्ययन मुख्यतः दिनकर की चयनित कृतियों पर केंद्रित है। व्यापकता की दृष्टि से उनके समस्त साहित्य का विश्लेषण संभव नहीं था। साथ ही, शोध का फोकस देशभक्ति के प्रेरक आयाम पर केंद्रित है। अतः अन्य विषयगत पहलुओं का विस्तृत विवेचन इस अध्ययन के अंतर्गत नहीं किया गया है।

6. शोध की प्रासंगिकता :

वर्तमान समय में राष्ट्रवाद की अवधारणा बहस का विषय बनी हुई है। ऐसे परिप्रेक्ष्य में दिनकर की संतुलित, नैतिक एवं समावेशी देशभक्ति का अध्ययन समकालीन विमर्श को दिशा प्रदान कर सकता है। यह शोध साहित्य और समाज के अंतर्संबंध को स्पष्ट करते हुए यह स्थापित करता है कि दिनकर का साहित्य केवल काव्य–सौंदर्य का उदाहरण नहीं, बल्कि जनमानस को जाग्रत करने वाली प्रेरक शक्ति है।

परिणाम एवं चर्चा :

यह स्पष्ट होता है, कि रामधारी सिंह दिनकर के साहित्य में देशभक्ति एक गतिशील, बहुआयामी तथा वैचारिक रूप से परिपक्व अवधारणा के रूप में अभिव्यक्त होती है। यह केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक समरसता, नैतिक पुनर्जागरण और जन–सक्रियता के व्यापक आयामों से जुड़ी हुई है। दिनकर की राष्ट्रचेतना ऐतिहासिक परिस्थितियों की उपज है, परंतु वह तत्कालीन संदर्भों से आगे बढ़कर सार्वकालिक मूल्यों की स्थापना करती है। उनके काव्य में राष्ट्रप्रेम भावनात्मक उत्तेजना नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक संकल्प का रूप ग्रहण करता है।

विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि दिनकर की प्रारंभिक रचनाओं में विद्रोह और प्रतिरोध की चेतना औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध जनमानस को संगठित करने का कार्य करती है। 'हुंकार' में व्यक्त ओजस्वी स्वर युवाओं को अन्याय के विरुद्ध खड़े होने की प्रेरणा देता है। यहाँ देशभक्ति सक्रिय कर्मशीलता का आह्वान है। इसके विपरीत 'कुरुक्षेत्र' में राष्ट्रवाद का स्वर अधिक दार्शनिक और नैतिक रूप में उभरता है, जहाँ युद्ध की विभीषिका के माध्यम से शांति, धर्म और मानवीय मूल्यों की स्थापना का संदेश दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि दिनकर की देशभक्ति उग्र राष्ट्रवाद का समर्थन नहीं करती, बल्कि संतुलित और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाती है।

इसी क्रम में 'रश्मिरथी' सामाजिक न्याय और आत्मसम्मान के प्रश्न को राष्ट्रीय चेतना से जोड़ती है। कर्ण के माध्यम से दिनकर ने उस उपेक्षित वर्ग की पीड़ा को स्वर दिया है, जिसे सामाजिक संरचना ने हाशिये पर

रखा। इस प्रकार उनकी देशभक्ति सामाजिक समानता और समावेशिता की स्थापना का आग्रह करती है। यह परिणाम दर्शाता है कि दिनकर के लिए राष्ट्र केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण और नैतिक समाज की परिकल्पना है।

चर्चा के स्तर पर यह भी स्पष्ट होता है कि दिनकर की भाषा और शैली जन–जागरण की प्रक्रिया में अत्यंत प्रभावी सिद्ध होती है। उनकी काव्य–भाषा में ओज, स्पष्टता और भावात्मक तीव्रता का समन्वय है, जो पाठक के भीतर आत्मगौरव और कर्तव्यबोध की भावना उत्पन्न करता है। ऐतिहासिक एवं मिथकीय प्रतीकों का प्रयोग समकालीन संदर्भों को अर्थवत्ता प्रदान करता है, जिससे राष्ट्रवाद का भाव केवल अतीत की स्मृति न रहकर वर्तमान की सक्रिय चेतना बन जाता है।

परिणाम यह संकेत करते हैं कि दिनकर की देशभक्ति संकीर्णता या आक्रामकता पर आधारित नहीं है, बल्कि वह नैतिकता, मानवतावाद और सामाजिक उत्तरदायित्व के मूल्यों से अनुप्राणित है। उनका साहित्य जनमानस को निष्क्रिय भावुकता से निकालकर सक्रिय सामाजिक सहभागिता की दिशा में उन्मुख करता है। इस दृष्टि से दिनकर का काव्य भारतीय राष्ट्रीय विमर्श में एक स्थायी प्रेरक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होता है, जिसकी प्रासंगिकता समकालीन सामाजिक और वैचारिक संदर्भों में भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष यह है,कि रामधारी सिंह दिनकर का साहित्य भारतीय राष्ट्रीय चेतना का सशक्त एवं बहुआयामी प्रतिनिधि है। उनकी काव्य–दृष्टि में देशभक्ति केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का उद्घोष नहीं, बल्कि सांस्कृतिक आत्मगौरव, सामाजिक न्याय, नैतिक पुनर्जागरण तथा जन–सक्रियता का समन्वित रूप है। दिनकर ने राष्ट्रवाद को भावनात्मक उग्रता के स्तर पर सीमित न रखकर उसे विचारशील, संतुलित और उत्तरदायी चेतना के रूप में स्थापित किया।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दिनकर की देशभक्ति का स्वर समयानुसार विकसित होता है। प्रारंभिक कृतियों में औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध और क्रांतिकारी ऊर्जा दिखाई देती है, जो जनमानस को जागृत करने का कार्य करती है। 'हुंकार' में व्यक्त ओजस्वी स्वर युवाओं को अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। वहीं 'कुरुक्षेत्र' में राष्ट्रवाद अधिक दार्शनिक और नैतिक धरातल पर स्थापित होता है, जहाँ युद्ध और शांति के द्वंद्व के माध्यम से मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का संदेश दिया गया है। इस प्रकार दिनकर की राष्ट्रचेतना में शक्ति और शांति, दोनों का संतुलित समावेश है।

इसी प्रकार 'रश्मिरथी' सामाजिक समता और आत्मसम्मान के प्रश्न को राष्ट्रीय विमर्श से जोड़ती है। कर्ण के चरित्र के माध्यम से दिनकर ने सामाजिक उपेक्षा और अन्याय की समस्या को उजागर करते हुए यह स्पष्ट किया कि सच्ची देशभक्ति तभी सार्थक है, जब वह समाज के अंतिम व्यक्ति के सम्मान और अधिकार की रक्षा करे। अतः उनके साहित्य में राष्ट्र की अवधारणा भौगोलिक सीमाओं तक सीमित न होकर एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और नैतिक समाज की परिकल्पना के रूप में उभरती है।

यह भी कहा जा सकता है कि दिनकर की भाषा और शैली ने उनकी विचारधारा को व्यापक जनमानस तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ओजस्वी, प्रेरणात्मक तथा सजीव अभिव्यक्ति के माध्यम से उन्होंने राष्ट्रप्रेम को कर्मप्रधान चेतना में रूपांतरित किया। मिथकीय एवं ऐतिहासिक प्रतीकों का सृजनात्मक उपयोग

उनके साहित्य को कालातीत प्रासंगिकता प्रदान करता है।

यह शोध–पत्र दिनकर का साहित्य भारतीय राष्ट्रवाद की एक उदात्त, मानवीय और उत्तरदायी व्याख्या प्रस्तुत करता है। उनकी देशभक्ति संकीर्ण राष्ट्रवाद का समर्थन नहीं करती, बल्कि नैतिक मूल्यों, सामाजिक समरसता और मानवतावादी दृष्टिकोण पर आधारित है। वर्तमान वैश्वीकरण और मूल्य–संकट के युग में दिनकर की राष्ट्रचेतना सामाजिक संतुलन, नैतिक जागरण और राष्ट्रीय एकता के लिए प्रेरक शक्ति के रूप में प्रासंगिक बनी हुई है।

अंत में यह कहा जा सकता है, कि दिनकर का काव्य भारतीय साहित्य में केवल काव्य–सौंदर्य का उदाहरण नहीं, बल्कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की वैचारिक आधारशिला के रूप में भी महत्त्वपूर्ण है। उनके साहित्य में व्यक्त देशभक्ति भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणा–स्रोत तथा राष्ट्रीय चेतना के स्थायी मार्गदर्शक के रूप में स्थापित होती है।

सुझाव :

1. **पाठ्यक्रम में समावेशन का विस्तार :**

रामधारी सिंह दिनकर की राष्ट्रवादी एवं सामाजिक चेतना से युक्त कृतियों 'विशेषकर 'रश्मिरथी' और 'कुरुक्षेत्र' को उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में समसामयिक संदर्भों के साथ समाविष्ट किया जाए, ताकि विद्यार्थियों में नैतिकता, सामाजिक न्याय और उत्तरदायित्व की भावना विकसित हो।

2. **तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहन :**

दिनकर के राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का अन्य समकालीन कवियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाए, जिससे भारतीय राष्ट्रवाद की बहुआयामी समझ विकसित हो सके और साहित्यिक विमर्श अधिक व्यापक बने।

3. **अंतरविषयक शोध :**

दिनकर के साहित्य को राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र और इतिहास के संदर्भ में पुनर्पाठ किया जाए, ताकि उनकी राष्ट्रचेतना के सामाजिक–राजनीतिक प्रभावों का समग्र विश्लेषण संभव हो सके।

4. **समकालीन संदर्भों में पुनर्मूल्यांकन :**

वैश्वीकरण, सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक असमानता जैसे वर्तमान मुद्दों के परिप्रेक्ष्य में दिनकर की देशभक्ति का पुनर्मूल्यांकन किया जाए, जिससे उनके विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता स्पष्ट हो सके।

5. **जन–जागरण एवं युवा संवाद कार्यक्रम :**

विश्वविद्यालयों और सांस्कृतिक संस्थानों में दिनकर के काव्य–पाठ, संगोष्ठी एवं वाद–विवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाए, ताकि युवाओं में राष्ट्रप्रेम को संकीर्णता से मुक्त, नैतिक और रचनात्मक दृष्टिकोण के रूप में विकसित किया जा सके।

संदर्भ सूची :

1. दिनकर, रा. सि. (1946). कुरुक्षेत्र. लोकभारती प्रकाशन।
2. दिनकर, रा. सि. (1952). रश्मिरथी. राजपाल एंड संस।
3. दिनकर, रा. सि. (1956). संस्कृति के चार अध्याय. राजपाल एंड संस।
4. दिनकर, रा. सि. (1973). परशुराम की प्रतीक्षा. राजपाल एंड संस।

5. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (1980). दिनकर और उनका काव्य. राजकमल प्रकाशन।
6. दिनकर, रा. सि. (1981). मिट्टी की ओर. राजपाल एंड संस।
7. शर्मा, रामविलास. (1989). भारतीय साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन।
8. शुक्ल, रामचन्द्र. (2002). हिंदी साहित्य का इतिहास. नागरी प्रचारिणी सभा।
9. पाण्डेय, मैनेजर. (2003). हिंदी साहित्य और राष्ट्रीयता. वाणी प्रकाशन।
10. सिंह, नामवर. (2006). आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ. राजकमल प्रकाशन।
11. चौहान, महेंद्र. (2017). दिनकर के साहित्य में राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण. शोध दृष्टि, 10(2), 55—63।
12. यादव, रमेश. (2018). दिनकर के काव्य में जन—जागरण की प्रवृत्ति. समालोचना, 22(4), 73—80।
13. मिश्रा, रामनारायण. (2019). दिनकर के काव्य में राष्ट्रवाद की अवधारणा. आलोचना, 68(3), 112—118।
14. वर्मा, सुरेश. (2019). राष्ट्रकवि दिनकर की काव्य—संवेदना और राष्ट्रीय चेतना. साहित्य लोक, 8(2), 44—50।
15. तिवारी, शशिभूषण. (2020). आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रवाद : दिनकर के विशेष संदर्भ में. हिंदी अनुशीलन, 15(1), 88—95।
16. राय, विनोद. (2020). दिनकर और राष्ट्रीय सांस्कृतिक विमर्श. आधुनिक साहित्य अध्ययन, 5(3), 101—109।
17. सिंह, अजय. (2021). दिनकर और भारतीय राष्ट्रीयता. साहित्य संदेश, 12(2), 54—61।
18. झा, प्रमोद. (2022). दिनकर की काव्य—दृष्टि और भारतीय अस्मिता. साहित्य विमर्श, 9(1), 33—40।
19. पाण्डेय, दीपक कुमार. (2022). रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीय चेतना. हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, 83(4), 45—52।
20. अनीश, वी. ए. (2024). रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना (पी—एच.डी. शोध—प्रबंध). शोधगंगा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 39-42

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

Teachers Attitude towards Online Teaching after COVID-19

Laxman Singh
Assistant Professor
Kumaun University, Nainital.

Abstract :

The COVID-19 pandemic created an unprecedented disruption in the global education system. Schools and universities were forced to shift from traditional face-to-face instruction to online teaching in order to continue the learning process. This sudden transition required teachers to adapt quickly to digital technologies and new teaching strategies. The present study examines teacher's attitudes towards online teaching after the COVID-19 pandemic. The study aims to understand how teachers perceive online teaching, the challenges they experience and the opportunities it offers for the future of education. The research is descriptive in nature and is based on the responses of school teachers who used online platforms during the pandemic period. The study explores factors such as teachers comfort with technology perceived effectiveness of online teaching, classroom interaction and professional development. The findings suggest that although teachers initially faced difficulties such as technical issues, lack of training, and limited student interaction many teachers gradually developed positive attitudes toward the use of online teaching tools. Online teaching is now seen as a supportive method that can complement traditional classroom teaching. The study concludes that proper training, infrastructure, and institutional support can significantly improve teacher's acceptance and effective use of online teaching methods in the future.

Introduction :

Education is one of the most important sectors of society, and the teaching-learning process traditionally takes place through face-to-face interaction in classrooms. However, the COVID-19 pandemic in 2020 disrupted the conventional education system across the world. Schools, colleges, and universities were closed for long periods, forcing educational institutions to adopt online teaching methods to ensure continuity of learning. Online teaching refers to the use of digital platforms,

internet resources, and virtual

communication tools to deliver educational content. Platforms such as Google Meet, Zoom, Microsoft Teams, and various learning management systems became common tools for teachers during the pandemic. Teachers had to adjust to these technologies within a short period of time often without sufficient training or resources.

The sudden transition created several challenges for teachers. Many teachers had limited experience with digital tools while others faced issues related to internet connectivity lack of technological infrastructure and difficulty maintaining student engagement in virtual classrooms. Despite these challenges, the pandemic also opened new opportunities for innovation in teaching and learning. Teacher attitudes toward online teaching play a crucial role in determining the success of digital education. A positive attitude encourages teachers to explore new technologies and adopt innovative teaching practices while negative attitudes may limit the effective use of online platforms. Therefore, understanding teacher's perceptions and attitudes towards online teaching after COVID-19 is essential for improving future educational strategies.

Objectives of the Study :

1. To study teachers attitudes towards online teaching after the COVID-19 pandemic.
2. To identify the challenges faced by teachers while conducting online classes.
3. To examine the benefits and opportunities of online teaching in the education system.
4. To suggest measures for improving the effectiveness of online teaching.

Research Methodology :

The present study is descriptive in nature. The purpose of descriptive research is to describe the current status of a phenomenon and analyze it systematically. In this study, teacher attitudes towards online teaching are examined through survey responses and general observations of teaching practices during and after the COVID-19 pandemic.

Sample :

The sample of the study consists of school teachers who conducted online classes during the pandemic period. Teachers from different subject areas and teaching experiences were considered in order to obtain a broad understanding of their attitudes toward online teaching.

Tool for Data Collection :

Data for the study can be collected using a questionnaire designed to measure teacher's opinions and attitudes towards online teaching. The questionnaire may include statements related to ease of technology use student interaction teaching effectiveness and professional satisfaction.

Data Analysis :

The collected data can be analyzed using simple statistical methods such as percentage analysis and interpretation of responses. The analysis helps in understanding general trends in teacher's attitudes toward online teaching.

Discussion :

The experience of online teaching during the COVID-19 pandemic has significantly influenced teacher's perceptions of digital education. At the beginning of the pandemic many teachers felt uncomfortable and uncertain about teaching through online platforms. The lack of training in educational technology made it difficult for teachers to design and deliver effective online lessons. One of the major challenges reported by teachers was the difficulty in maintaining student engagement during online classes. In traditional classrooms, teachers can observe students expressions and provide immediate feedback. However in online settings limited interaction and technical issues sometimes reduce the effectiveness of communication.

Another challenge faced by teachers was related to technological infrastructure. In many regions, unstable internet connections, lack of digital devices, and limited technical support affected the quality of online teaching. Teachers often had to spend additional time preparing digital materials and learning how to use online platforms effectively. Despite these challenges, many teachers gradually developed confidence in using digital tools. Online teaching provided opportunities for teachers to explore innovative teaching methods such as multimedia presentations, recorded lectures, and interactive quizzes.

These methods helped make lessons more engaging and accessible for students. Teachers also recognized several advantages of online teaching. It allows flexibility in learning, easy sharing of resources, and access to a wide range of digital educational materials. Online platforms also enable collaboration between teachers and students from different locations. After the pandemic many teachers believe that online teaching should not replace traditional classroom teaching completely, but it can be used as a complementary approach. Blended learning which combines online and face-to-face teaching is considered a promising model for the future of education.

Conclusion :

The COVID-19 pandemic brought significant changes to the education system and accelerated the adoption of online teaching methods. Teachers had to adapt quickly to new technologies and teaching strategies in order to continue the learning process. Although the transition was initially challenging many teachers gradually developed positive attitudes toward online teaching. The study indicates that online teaching offers several benefits such as flexibility, access to digital resources

and opportunities for innovative teaching practices. However, challenges such as technical difficulties limited student interaction and lack of training must be addressed to improve the effectiveness of online education. For successful integration of online teaching in the future educational institutions should provide proper training programs for teachers improve technological infrastructure and encourage the use of blended learning approaches. By combining the strengths of both traditional and online teaching methods, the education system can become more resilient and adaptable to future challenges.

References :

1. Anderson, T. (2020). Online Learning and Teaching in Higher Education. Educational Research Review.
2. Hodges, C., Moore, S., Lockee, B., Trust, T., & Bond, A. (2020). The Difference between Emergency Remote Teaching and Online Learning. EDUCAUSE Review.
3. Singh, V., & Thurman, A. (2019). How Many Ways Can We Define Online Learning? A Systematic Review of the Definitions of Online Learning. American Journal of Distance Education.
4. UNESCO. (2020). Education in a Post-COVID World: Nine Ideas for Public Action.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 43-46

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

मिल मालिक और मजदूर यूनियन का संघर्ष : प्रभा खेतान रचित उपन्यास 'तालाबंदी' के संदर्भ में

शशि नाथ प्रसाद (पीएच०डी, शोधार्थी)
पंजीयन संख्या – JPU/2021-2024/Ph.D/00275
हिन्दी–विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय (छपरा), बिहार।

शोध सारांश –

प्रभा खेतान रचित तालाबंदी बंगाल के उन घटनाओं को उजागर करता है जब पूरे बंगाल पर कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवाद का दबदबा था। इन्हीं मार्क्सवाद के अनैतिक क्रियाकलापों के कारण बंगाल की कितनी ही फैक्ट्रियां बंद हो गई, कई मिलों में ताले लग गए। अतः उपन्यास की कथा मजदूर यूनियन और मिल मालिक के बीच चल रहे संघर्ष के इर्द–गिर्द घूमती रहती है। उपन्यास का मुख्य पात्र श्याम बाबू जो की एक निम्न मारवाड़ी परिवार में जन्म लिया, परंतु जिसके ख्वाब अमीर बनने और अपनी गिनती शहर के बड़े–बड़े रईसों में कराने की है। जो अत्यंत महत्वाकांक्षी है। वह पैसा कमाने और अमीर बनने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। यही कारण है कि वह अपने पिताजी की तरह दूसरे के यहां मुनीम गिरी ना कर स्वयं का व्यवसाय खड़ा करना चाहता है।

प्रस्तुत उपन्यास एक पारंपरिक मानसिकता से ऊपर उठकर प्रगतिशील मानसिकता और उससे जुड़ी संवेदनाओं को उजागर करता है। श्याम बाबू गरीबी को अत्यंत करीब से देखें है, इसलिए वह नहीं चाहते हैं कि आने वाली पीढ़ियां उनकी तरह गरीबी में अपना गुजर–बसर करें। प्रस्तुत उपन्यास की लेखिका प्रभा खेतान जिनका जन्म पश्चिम बंगाल की राजधानी कोलकाता में हुआ और प्रारंभिक शिक्षा से लेकर कॉलेज की शिक्षा भी यही संपन्न हुई। अतः उनकी रचनाओं में तत्कालीन बंगाल में हो रहे सामाजिक–सांस्कृतिक क्रियाकलापों का उल्लेख मिलना स्वाभाविक है। तत्कालीन पश्चिम बंगाल में कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवाद का चहुं ओर बोलबाला था। सभी लीडर स्वयं को मार्क्सवादी और कामरेड समझते थे ताकि इलाके में उनका दबदबा बना रहे। तत्कालीन बंगाल में श्रमिक वर्ग, सीटू, कम्युनिस्ट पार्टी और मजदूर यूनियनो आदि द्वारा चलाए गए आंदोलन के कारण कई हजार फैक्ट्रीयों में तालें लग चुके थे। इन सभी घटनाओं का उल्लेख हमें प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलता है। तत्कालीन बंगाल में कुछ तथाकथित दलों ने हड़ताल और मजदूरों के हित के नाम पर कितनी ही कारखानाओं को बंद करवाने का काम किया। उपन्यास का मुख्य पात्र श्याम बाबू कहीं ना कहीं इसी प्रकार के संघर्ष से संपूर्ण उपन्यास में जूझते रहते हैं। सीटू लीडर और मजदूर यूनियन उन्हें इस

हद तक परेशान कर देते हैं कि अंत में वह अपनी फैक्ट्री में ताला लगाने को मजबूर हो जाते हैं। अतः लेखिका ने ''तालाबंदी' उपन्यास के माध्यम से इन घटनाओं को समाज के समक्ष उजागर करने का सफल प्रयास किया है।

बीज शब्द : आंदोलन, मार्क्सवाद, गुलामी, मजदूर संघ, कम्युनिस्ट, सीटू, लेबर यूनियन।

मुख्य आलेख –

प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य पात्र श्याम बाबू अपने परिवार का इकलौता लड़का है, जो कि कर्मठ, धैर्यवान और संघर्षशील व्यक्ति है। उनके पिता कालूराम अग्रवाल के गुजरने के बाद संपूर्ण परिवार का भार उन्ही के कंधों पर आ जाता है। उनके परिवार की माली हालत कुछ खास नहीं है। वे लोग अत्यंत गरीब है। उनके पिता सेठ बाजोरिया के यहां मुनीम का काम करते–करते गुजर गए। परिवार के लिए ना ही कोई धन संपत्ति और ना ही कोई खास पूंजी ही छोड़ कर गए। श्याम बाबू के शब्दों में– "आप थे बाजोरिया के यहां मुनीम जी खास घरेलू आदमी पर भोलेपन का जमाना है क्या? बाबूजी ने तो कभी एक पैसा रखा नहीं।...........बाबूजी दूसरों का धन संभालते संभालते चले गए।[1] उनका बचपन से जवानी तक का सफर अत्यंत गरीबी और तंगी में गुजरा। यही कारण था कि उन्होंने फैसला किया की वह कभी भी किसी दूसरे की नौकरी नहीं करेंगे बल्कि स्वयं का व्यवसाय करेंगे। यहीं से उनके हृदय में महत्वाकांक्षी होने का बीज पनपता है। उनके पिता कालूराम जीवन भर जिन सेठों के यहां गुलामी करते–करते मर गए। उनके अंतिम संस्कार पर उन्ही बाजोरिया सेठों के घर से कोई नहीं आया। कालूराम की मृत्यु पर उन सेठों की क्या प्रतिक्रिया थी, प्रस्तुत पंक्तियों से पता चलता है– "अरे, यह तो बहुत अच्छा हुआ कि कालूराम जी यही गिर पड़े। पॉकेट में पूरा दो नंबर का अकाउंट था । कहीं घर में कुछ होता तो उस कागज को वापस लेने के लिए पांच–दस लाख के नीचे आते।"[2]

एक सामान्य व्यक्ति की तरह ही उनका भी मकान दो कमरों का है। मकान में एक बरामदा चौका और पखाना घर साथ में स्नान घर लगा हुआ है। घर में दिनभर चिल्लम–चिल्ली, किच–किच आदि होती रहती है। पिता के गुजरने के बाद श्याम बाबू ने जैसे–तैसे कर बहनों का विवाह किया। साथ ही साथ हमेशा से ही जीजाओं और उनके बच्चों की सहायता की। श्याम बाबू ने बहुत ही मुश्किल–मशक्कत और संघर्ष कर एक गारमेंट कारखाना खोला। कुछ साल कारोबार काफी अच्छा चला, जिससे उन्हें काफी अच्छी आमदनी हुई। कपड़ों का निर्यात दूसरे देशों में भी होने लगा। दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होने लगी। श्याम बाबू की गिनती शहर के बड़े–बड़े सेठों में होने लगी। तत्कालीन बंगाल में कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवाद का काफी दबदबा था। प्रत्येक गली हर चौक चौराहा लाल झंडे से भरा हुआ था। चहुं ओर लाल झंडे का बोलबाला था। अतः हर फैक्ट्री और कारखाने में इनकी दखलअंदाजी स्वाभाविक थी। फैक्ट्री सुचारू रूप से चल सके इस उद्देश्य से श्याम बाबू ने सीटू लीडर शेखर मुखर्जी को अपने गारमेंट फैक्ट्री में मजदूरों का यूनियन लीडर के रूप स्वागत किया। शेखर मुखर्जी अत्यंत शिक्षित शांत और समझदार व्यक्ति थे। वह सब समय मजदूरों के हित के लिए चिंतित रहते थे। वह तन–मन तथा आत्मा से एक सच्चे मार्क्सवादी कामरेड थे। वह अंत तक सच्चाई का साथ नहीं छोड़ते हैं। वह सर्वदा मिल मालिक और मजदूरों के मध्य सही तालमेल बना रहे इसके लिए प्रयासरत रहते हैं। लेखिका शेखर दा के चरित्र के विषय में लिखती है– "अजीब चरित्र है यह शेखर मुखर्जी का। वर्द्धमान में बाप–दादा की जमीन हलवाहो के हाथों छोड़ दी। जिसका हंसुआ, उसकी जमीन। शेखर मुखर्जी का पूरा विश्वास था की जमीन

ही सारे वर्ग संघर्ष की जड़ है। पुरखों का मकान गांव का स्कूल बन गया। जो थोड़ा बहुत पैसा–वैसा था वह बड़ी दीदी को दे दिया। न धन से लगाव, न जमीन से।[3] शेखर दा के इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर श्याम बाबू ने उन्हें मजदूर यूनियन का लीडर बनाया। ताकि उनके फैक्ट्री में मजदूरों से जुड़ी किसी प्रकार की कोई समस्या उत्पन्न ना हो। लेकिन जहां तरक्की और विकास होता है वहां उसे जलने वालों की कमी नहीं होती। एक अन्य सीटू लीडर अजीत को यह हजम नहीं होता है कि शेखर दा, श्याम बाबू के फैक्ट्री का यूनियन लीडर बने। अजीत जो कि शेखर दा का ही दाहिना हाथ था। जिसे शेखर दा ने अपने साथ रख कर नेतागिरी सिखाई – उसने ही गद्दारी कर दी। फैक्ट्री के मजदूरों के साथ मिलकर शेखर दा के खिलाफ मोर्चा खोल दिया। अजीत को श्याम बाबू की उन्नति से जलन हो रही थी। उसके हृदय में बहुत दिनों से श्याम बाबू की उन्नति के प्रति हिंसा और द्वेष की ज्वाला धधक– धधक रही थी। वह केवल यही चाहता था कि किन राजनीतिक हथकंडों के माध्यम से श्याम बाबू के फैक्ट्री में ताला लगवाया जाए। उसे इसकी कोई परवाह नहीं थी की इस कारखाने से कितने मजदूरों के घरों का चूल्हा जलता हैं तथा कितने परिवारों का गुजर–बसर होता है। इसकी उसे कोई चिंता नहीं थी, वह केवल अपना स्वार्थ सिद्धि पूर्ण करना चाहता था। अंततः अपने राजनीतिक हथकंडों के माध्यम से मजदूरों को भड़काकर, वह अपने इस कुकर्म को अंजाम देने में सफल हो जाता है।

अजीत जैसे लीडरों की वजह से बंगाल में कितने ही कारखानों, फैक्ट्रीयों और मिलों में ताला लग गए इसकी कोई गिनती नहीं। उपन्यास में लेखिका ने इसका उल्लेख किया है कि श्याम बाबू बचपन से ही बंगाल में हो रहे इस प्रकार के षड्यंत्र को देखते आ रहे हैं दृ "श्याम बाबू ने बंगाल के इस घुन को बचपन से सड़क पर चलते हुए, भीड़ भरी बसों में लटक कर घर जाते हुए महसूस किया है।"[4]. प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने यह स्पष्ट करने में सफल रही है कि किस प्रकार एक व्यापारी अपनी आशा–आकांक्षाओं को कितनी मुसीबतों का सामना कर साकार करता है। परंतु कुछ तथा कथित राजनीतिक संगठन अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु उसे बर्बाद कर देते हैं। उपन्यास के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन बंगाल में घट रहे राजनीतिक षडयंत्रों के कारण बंद होते कारखाने की वास्तविक चित्र को उजागर करने का बखूबी काम किया है। इस प्रकार के कुकृत्यियों के कारण यह छोटे–मोटे लीडर प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं और राजनेता बनने के अपने सपने को साकार कर लेते हैं। उन्हें इसकी कोई परवाह नहीं होती है कि वह कितने घरों का चूल्हा ठंडा कर देते हैं, चाहे वह मजदूरों का हो या फिर मिल मालिकों का। इन सबके बावजूद भी शेखर मुखर्जी ईमानदारी और सत्यनिष्ठा पर सदैव अडिग रहे।

वे सच्चे अर्थों में मार्क्सिस्ट कॉमरेड है। उन्हें न कोई धन–संपत्ति चाहिए और ना ही कोई भौतिक सुख–सुविधा। वह सादा जीवन उच्च विचार, सिद्धांत के पक्षधर हैं। इस संदर्भ में शेखर मुखर्जी का कथन है – "अकेला आदमी हूं। कहीं भी रह लूंगा। पार्टी दो वक्त का भात देती हैं, नहीं देगी। वे मेरी बेइज्जती करेंगे। सह लूंगा, लेकिन क्या फिर भी मैं एक कम्युनिस्ट नहीं रहूंगा? जरुर रहुंगा। कम्युनिस्ट होने के लिए सिद्धांतों की जरूरत है, मगर कम्युनिस्ट होना एक बात है और सिद्धांतों को रटना दूसरी बात।"[5]. श्याम बाबू कितने ही संघर्ष और परिश्रम से अपना व्यवसाय स्थापित करते हैं और अजीत जैसे लीडर झटके में उसे धराशही कर देते है। अंततः उन्हें अपने कारखाने में ताला लगाना पड़ता है। ना चाहते हुए भी वह अपने कारखाने को बंद कर देते हैं। इस संदर्भ में श्याम बाबू और सीटू लीडर शेखर मुखर्जी आपस में तर्क करते हैं– "क्या करना चाहिए यह तो मैं भी नहीं समझ पा रहा हूं, पर यथा स्थिति नहीं चल सकती। यह जरुर महसूस कर रहा हूं। आप ही कुछ कीजिए।

मुझे तो सबसे खराब लग रहा है कि हमारी फैक्ट्री का उत्पादन दिन पर दिन कम होता जा रहा है। बात–बात में मीटिंग, यूनियन का प्रतिनिधित्व, तब यूनियन को फैक्ट्री चलना चाहिए शिखर दा। मुझे तो छुट्टी दीजिए, सुबह से लेकर शाम तक साला यही झमेला गले में लटका रहता है।[6]

निष्कर्ष –

प्रस्तुत उपन्यास की विषय वस्तु और कथानक के अनुसार, उपन्यास का शीर्षक तालाबंदी अत्यंत सार्थक और सटीक है। शीर्षक के माध्यम से कुछ हद तक उपन्यास के गतिविधियों और घटनाओं का अनुमान किया जा सकता है। जिस प्रकार उपन्यास का मुख्य पात्र व्यवसाय और दौलत के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार है, वहीं दूसरी ओर मजदूर यूनियन लीडर अपने जिद की खातिर कितनी ही फैक्ट्रीयों और उसने काम करने वाले मजदूरों के जिंदगियों को तबाह करने के लिए तैयार है। गोपाल राय के शब्दों में–" तालाबंदी में प्रभा खेतान ने निजी संबंध और मजदूरों के परस्पर हितों के टकराहट और उससे उत्पन्न तनाव का रोचक और अविश्वासनीय रूप से चित्रण किया है। इस टकराव में लेखिका की सहानुभूति मजदूरों के प्रति है............इसके साथ ही उपन्यास में पारिवारिक संबंधों के तनाव और पिता–पुत्र के संघर्ष का भी विश्वसनीय रूप अंकन हुआ है।"[7]

संदर्भ सूची :

1. तालाबंदी – प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या 21.
2. तालाबंदी – प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या 23.
3. तालाबंदी – प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या 26.
4. तालाबंदी – प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या 25.
5. तालाबंदी – प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या 113.
6. तालाबंदी – प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या 53.
7. हिंदी उपन्यास का इतिहास – गोपाल राय, पृष्ठ संख्या 386.

मुख्य संदर्भ ग्रंथ –

1. तालाबंदी – प्रभा खेतान, सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष–1991।

Email – Id – snp27crj@gmail.com

Mobile 8653575675

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 47-49
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

बौद्ध धर्म और लोककल्याण

डॉ. वन्दना द्विवेदी
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
नेहरु ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज।

गौतम बुद्ध ने संसार के समक्ष जिस बौद्ध धर्म की स्थापना की थी वह मानव मात्र के कल्याण के लिए था। उन्होंने लोगों के खुशहाल जीवन के लिए मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया। गौतमबुद्ध ने सब प्रकार के ढोंग एवं अंधविश्वासों को दूरकर बुद्धि, विवेक, दया और प्रेम के आधार पर सरल पवित्र जीवन के निर्वाह का सन्देह दिया। वह पण्डितों की भाषा को छोड़कर सर्वसाधारण की भाषा में उपदेश देने लगे थे, जिससे कि शिक्षित अशिक्षित, धनी–निर्धन सबके लिए उनकी वाणी अमृत बन गयी। उन्होंने विभिन्न सामाजिक विषमताओं को दूर करने के लिए क्रांतिकारी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। उनके विचार विभिन्न समुदायों के मध्य सहयोग एवं सार्वजनिक नैतिकता के विषय में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनके ब्रह्मविचार की अवधारणा सभी प्राणियों की हित एवं सुख की कामना करते है। इसकी कामना से द्वेषभाव की निवृत्ति होती है। इसके फलस्वरूप वह सम्भाव से सम्पन्न हो जाता है और निरपेक्ष भाव से वह दूसरे के दुःखों को दूर करने का प्रयास करते है।[1]

मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक प्रकार की भौतिक एवं अभौतिक अभावों, व्याधियों, रूग्णताओं और मानसिक चिन्ताओं का सामना करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य का जीवन सर्वदा दुःखमय रहता है। इसलिए गौतमबुद्ध ने दुःख नामक त्रिकालज्ञ सत्य को दार्शनिक भाषा में इस प्रकार स्थापित किया कि संसार दुःखमय है। चार आर्य सत्य में दुःख सत्य की व्याख्या करते हुए गौतमबुद्ध कहते है कि ''जन्म भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, मरण भी दुःख है, शोक रूदन भी दुःख है, मन की खिन्नता व हैरानी भी दुःख है। अप्रिय से संयोग प्रिय से वियोग भी दुःख है, इच्छा करके जिसे प्राप्त नहीं किया जा सकता वह भी दुःख है। अन्त में पांचों उपादान स्कन्ध दुःख है। बुद्ध के धर्म का सर्वोच्च साध्य दुःखों का अंत और निर्वाण को प्राप्त करना है। परन्तु गौतमबुद्ध द्वारा प्रतिपादित समाजदर्शन के सिद्धान्तों के अनुशीलन से ''बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय'' किया जा सकता है। त्रिपिटक के अन्तर्गत जहाँ–जहाँ आदर्शसमाज एवं मनुष्य के कल्याण के लिए बुद्ध वचन परिलक्षित होते है।[2]

बौद्ध धर्म का मुख्य लक्ष्य लोककल्याण है। यह मानव के मूल समस्याओं का निराकरण करके एक संतोषजनक जीवन देने की दिशा में कार्य करता है। बौद्ध धर्म का मुख्य उपदेश चार आर्य सत्य का सिद्धान्त

है जो इस प्रकार है– दुःख, दुःख का कारण, दुःख निरोध एवं दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा। दुःख एक रोग के समान है। जिन बाहरी एवं भीतरी परिस्थितियों में दुःख उत्पन्न होता है, वे उसका समुदाय श्रोत या कारण है। रोग रहित हो जाने के समान दुःख निरोध सत्य है। इसे प्राप्त करने के लिए उचित मार्ग का पालन करना आवश्यक है। सबसे पहले हमें सही दुःखों की पहचान करनी चाहिए। यहीं प्रथम आर्य सत्य है। रोग की पहचान मात्र ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि किन कारणों से यह उत्पन्न हुआ है। यह जानना आवश्यक है कि जिससे रोग के कारणों का पता लगाया जा सके और उसका उचित प्रतिकार किया जा सके। रोग के कारणों को ढूढ़ लेना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि हमें यह भी जान लेना जरूरी है कि उसका इलाज कैसे होगा? यह जान लेना कि रोग का निरोध सम्भव है। अतः दुःखों का निरोध किया जा सकता है। यह तीसरा सत्य है। अब उन दवाओं को जानना आवश्यक है जिससे रोग का इलाज हो अर्थात् दुःख मुक्ति के मार्ग का अन्वेषण करके उसका पालन करना चाहिए। यही चतुर्थ आर्य सत्य है।[3]

शाक्यमुनि गौतमबुद्ध का शांति स्थापना के लिए प्रमुख सिद्धांत मानव को महत्व प्रदान करना और मानवीय समता स्थापित करना था। उनकी स्थापना थी कि ष्सभी मानव समान है और मानवजाति एक है। उसमें ऊंच–नीच, छूत–अछूत, जातियों का विभेद करना उचित नहीं है। जातियों पशु–पक्षियों पेड़–पौधों और कीड़े–मकोड़ों में होती हैं जिन्हे दूर से देखकर उनकी जाति गाय, भेड़, बकरी, ऊँट, हाथी, बरगद, नीम, सांप, विच्छू आदि पहचान ली जाती है लेकिन मानव समाज में ऐसा कोई पार्थक्य भेद नहीं है। इस प्रकार विश्व का मानव समाज एक ही और उसकी एक ही जाति है मानव न कि दूसरा। इसके लिए देश–विदेश में फैले हुए अज्ञान, अंधविश्वास और पाखण्ड को दूर कर लोगों में ज्ञान का प्रकाश फैलाना आवश्यक हैं। मानव सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है। अतः उसे मानवीय गरिमा के साथ–साथ सुख–शांतिपूर्वक रहना श्रेयस्कर है।[4]

बौद्ध धर्म किसी वर्ग विशेष का धर्म न होकर लोकहित का पक्षधर था। गौतमबुद्ध ने तृष्णा या अविद्या को सांसारिक दुरूख का मूल मानते हुए उस पर नियंत्रण करने का उपाय बताया जो आष्टांगिक मार्ग के नाम से जाना जाता हैं परन्तु इतना सत्य है कि गौतमबुद्ध ने कुछ भी ऐसा नहीं कहा जो पहले सनातन धर्म में नहीं कहा गया है। गौतमबुद्ध ने अपने अनुभूत सत्य को सहजरूप से लोगों तक पहुचाया और उन पर आचरण करने पर बल दिया। बुद्ध की लोकप्रियता उनके सहजयान में दिखायी देती है। बुद्ध कोरे पण्डितवाद के पक्षधर नहीं थे और अपने युग कि बहु विवेचित दार्शनिक समस्याओं पर तार्किक बहस को निरर्थक मानते थे। लोक शाश्वत है या अशाश्वत, जीव एवं शरीर एक है या अलग, मृत्यु के बाद कि स्थिति आदि को बुद्ध ने अकथनीय स्थापित किया क्योंकि इन दार्शनिक तत्वों के विचार–विमर्श से सांसारिक दुखों से ग्रसित सामान्य लोगों को लाभ मिलने वाला नहीं था। संसारी जनों कि प्रवृत्ति अतिमात्रता का विवेक करते हुए तथागत ने लोगों को उस मार्ग पर चलने का उपदेश दिया जो दो अतियों के बीच का मार्ग था एवं सबके लिए वरण करने योग्य था। इस मार्ग को बौद्ध धर्म में मध्यमा–प्रतिपदा के नाम से जाना जाता है।

संदर्भ :

1. डॉ० मुकेश कुमार सिंह, डॉ० मीना सिंह, 'बौद्ध धर्म का लोक कल्याणकारी स्वरूप' भारती प्रकाशन वाराणसी 2009 पृ० VIII
2. डॉ० धर्मकीर्ति, 'बुद्ध का समाजदर्शन' सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली 2008 पृ० 2
3. डॉ० मुकेश कुमार सिंह, डॉ० मीना सिंह, 'बौद्ध धर्म का लोक कल्याणकारी स्वरूप' भारती प्रकाशन वाराणसी 2009 पृ० X
4. डॉ० अंगने लाल, 'बौद्ध संस्कृति के विविध आयाम' उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ 2008 पृ० 3
5. अजय कुमार पाण्डेय, बौद्ध संस्कृति का वैश्विक प्रभाव एकेडेमिक बुक हाउस भोपाल (म०प्र०) 2011 पृ० 36

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 50-53
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

मैला आँचल : स्वतंत्र भारत का यथार्थ दस्तावेज

डॉ. सोनी कुमारी शर्मा
सहायक प्राध्यापक (अतिथि)
रमा देवी महिला विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर।

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' का केन्द्र बिहार स्थित पूर्णिया जिला है। 'मैला आँचल' की कथा का मेरीगंज गाँव भारत के पिछड़े हुए गाँवों का प्रतीक है। उपन्यास में 1946 से लेकर 1948 तक जो परिवर्तन हुए उसका यथार्थ चित्रण किया गया है। रेणु ने बड़ी निष्ठा के साथ गाँवों की व्यथा कथा को वाणी देते हुए यथार्थ के सभी पहलू, जीवन के हर प्रसंग, रंग और दृश्य को सूक्ष्मता तथा समझ की गहराई के साथ शब्दबद्ध किया है। वे लिखते है – "इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी मैं किसी से दामन बचाकर नहीं निकल पाया हूँ।"[1] इस उपन्यास में रेणू ने भारतीय समाज और राजनीति के दो ऐतिहासिक कालखंडों का चित्रण किया है, जो भारतीय समाज के इतिहास का अत्यंत महत्वपूर्ण काल है। ब्रिटिश शासन से मुक्ति और नवराष्ट्र के निर्माण के दौर का चित्रण इस उपन्यास में अत्यंत गहराई और विस्तार के साथ किया है। उन्होंने गाँवों की सारी अच्छाइयों और बुराइयों को साहित्य की दहलीज पर रखा है।

रेणु जी का यथार्थ केवल देखा हुआ नहीं है बल्कि भोगा हुआ यथार्थ है। क्योंकि उनकी जीविका का आधार कृषि था। वे गाँव में कृषक जीवन, तो शहर में लेखकीय जीवन जीते थे। उनके द्वारा किसान, मजदूर संघर्ष और राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेने के कारण उपन्यास में आम आदमी के पक्ष में खड़ी राजनितिक चेतना दिखाई देती है। यहीं रेणु जी का वंचितों और दलितों के प्रति लगाव दिखाई देता है। वे स्वयं लिखते हैं – "मैं गाँव छोड़कर पटना में था, तो पटना छोड़कर इलाहाबाद चला गया। वह भी यह देखने के लिए कि सारा हिन्दुस्तान अपना है या नहीं। पढ़ने के समय बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में ऐसा लगता था सारा हिन्दुस्तान अपना है। लेकिन इस दौरान आजादी के बाद ऐसा माहौल हुआ कि अपने ही प्रान्त में मैं उत्तर का हूँ या दक्षिण का, पूरब का हूँ या दक्षिण बिहार का या इस जाति का हूँ या उस जाति का ––– यह बात आम हो रही थी।"[2]

इस उपन्यास में स्वातन्त्र्योत्तर भारत के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण है। मेहनतकश जनता हर तरह से पीड़ित और व्यथित है। लोग जातिवाद और दलगत राजनीति के संकीर्ण दायरे में कैद हैं। उनमें छुआछूत और अंधश्रद्धा कूट–कूट कर भरी है। ईर्ष्या और द्वेष के आधार पर जातीय समीकरण बनते बिगड़ते हैं। महंत सेवादास के भण्डारे के प्रसंग से छुआछूत की समस्या का पता चलता है – "यदि बाभनों के लिए अलग प्रबंध न हुआ तो सरब संगठन में नहीं खाएँगे। बाभन : भोजन ही नहीं हुआ तो भोज क्या। –––– हिबरन सिंह का बेटा आकर कह गया है, ग्वाला लोगों के साथ एक पंगत में नहीं खाएँगे। हम लोगों के गाँव का

आटा–घी–चीनी अलग दे दिया जाए, हम लोग अलग–अलग बनवा लेंगे।"[3] इस उपन्यास में व्याप्त छुआछूत की समस्या के साथ अंधश्रद्धा का भी चित्रण हुआ है। खलासी ओझा का नाचना, कच्चा कबूतर चबाना, जंगल से भूतनी का निकलना, गाँव के शादी–ब्याह–श्राद्ध भोज के कार्यक्रम में कमला नदी को आमंत्रित करना, पारबती की माँ को जादूगरनी या डाईन समझना आदि प्रसंगों में ग्रामीण जीवन की अज्ञानता और अंधविश्वास का चित्रण हुआ है : "करसामाँ है। डाइन का करसामाँ। समझे हीरू। शुक्रवार को अमावस्या है। ––– उसका पीछा करना। वह तुम्हारे बच्चे को जिलाकर, तेलफुलेल लगाकर, गोदी में लेकर जब नाचने लगेगी तो ––– उस समय यदि उससे बच्चा छीन लो तो फिर उस बच्चे को कोई मार हीं नहीं सकता। ––– इन्द्र का वज्र भी फूल हो जाएगा।"[4] ऐसी स्थिति अशिक्षा और मानसिक पिछड़ेपन के कारण है।

रेणु जी ने धर्म के ठेकेदारों को भी नहीं छोड़ा है। मठ के महंत व्याभिचार में आकंठ लिप्त हैं। शास्त्र पुराणों के ज्ञाता पंडित सेवादास वे एक स्त्री को रखैल के रूप में रखकर उसका भोग करते हैं और दूसरे भद्र पुरूष भी स्त्रियों को ललचाई नजर से देखते हैं। लरसिंह दास मठाधीश बनने के लिए जो कुचक्र चलाता है और चालाकियाँ करता है, उसे देखकर किसी भी व्यक्ति का विश्वास इन मठाधीशों पर से उठ जाएगा और घृणा का भाव उत्पन्न हो जाएगा। ये भ्रष्ट और व्याभिचारी मठाधीश भले ही यह कहें कि 'हमेशा लंगोटबंद रहेंगे। मादक द्रव्य का सेवन नहीं करेंगे, दासी रखेलिन नहीं रखेंगे' परन्तु इनका वचन कुछ दिनों बाद खोखला साबित होता है। ये महंत नित नई स्त्रियों को दासिन के रूप में रखने की मांग करने लगते हैं। स्त्रियों के लिए राहत की कोई उम्मीद नहीं दिखाई देती है। इसके साथ ही गाँव के लोगों के सेक्स संबंधों पर भी इन्होंने प्रकाश डाला है। यहाँ सेक्स संबंधों के स्तर पर भी छोटे–बड़े, ऊँच–नीच की विषमता दिखाई देती है।

'मैला आँचल' स्वतंत्र भारत के बढ़ रही औपनिवेशिक प्रवृत्तियों और स्वातन्त्र्य चेतना के बीच की टकराहट का वास्तविक दस्तावेज है। मेरीगंज गाँव के लोग जमींदारों द्वारा शोषित हैं। कोरे कागज पर अंगूठे का निशान लगाकर जमीनें हड़प ली जाती है। इसीलिए कालीचरण के नेतृत्व में जमींदार और संथालों में तीव्र संघर्ष होता है। गाँव के गरीब और बेजमीन लोग बैल की जिंदगी जीते हैं। किसान की इस दीनहीन छवि को रेणु बेहद कम शब्दों में उजागर करते हैं – 'बेजमीन आदमी, आदमी नहीं, यह तो जानवर है।' दिनभर बैलों की तरह काम करने पर भी मुँह में दाना नहीं जाता। गर्मी–वर्षा और जाड़े में हाड़–तोड़ मेहनत करते हैं फिर भी कीड़े–मकोड़ों की तरह जीते हैं। इसलिए प्रशांत सोचता है कि मलेरिया का इलाज ढूँढने से पहले इन लोगों को इन्सान बनाना आवश्यक है। जमींदार इनका खून चूसकर विलासी जिंदगी जीते हैं। कालीचरण कहता है – "ये पूंजीपति और जमींदार, खटमलों और मच्छरों की तरह सोसख हैं।–––– खटमल : इसीलिए बहुत से मारवाड़ियों के नाम के साथ 'मल' लगा हुआ है जमींदारों के बच्चे मिस्टर कहलाते हैं। मिस्टर ––– मच्छर।"[5] गरीब लोगों को जमींदारों के चुंगल से छुड़ाने के लिए कई राजनितिक दल अपने पार्टी के स्वार्थ के अनुसार काम करते हैं। इसमें समाजवादी पार्टी का आन्दोलन आगे बढ़ता हुआ दिखाई देता है। कालीचरण की क्रांति चेतना का जमींदार विरोध करते हैं। कांग्रेसी भी विरोध करते हैं लेकिन वह विरोध मुख में राम बगल में छूरी की तरह होता है। रेणुजी ने इस जमीनी संघर्ष को वास्तविकता के साथ चित्रित किया है। रेणु इस भयावह यथार्थ को स्वीकार करने में जरा भी नहीं हिचकते कि आजादी का विरोध करने वाले ही आजादी की मलाई खा जाते हैं। भ्रष्टाचारी बड़े–बड़े पद हथिया लेते हैं। लुटेरे नेता बन जाते हैं। ईमानदार और दिन–हीन मनुष्य हाशिये पर खड़ा स्तब्ध होकर

इस खौफनाक दृश्य को देखता है। उदाहरण में हम देखते हैं कि दो सौ गाँव वाले और दो दर्जन संथाल और डेढ़ दर्जन संथालिनें दोनों के बीच जबरदस्त संघर्ष होता है। प्रशासन रिश्वत लेकर गाँव वालों को छोड़कर संथालों को गिरफ्तार करता है। अन्याय और अत्यचार के खिलाफ लड़ रहे संथालों को ही कारावास की सजा होती है। रेणु का मानना है कि देश सचमुच स्वतंत्र हो गया है तो इन संथालों को न्याय मिलना चाहिए था न कि 'दामुल हौज' अर्थात आजीवन कारावास की सजा।

आजादी के पहले जो समस्याएँ मेरीगंज में थी वह आजादी के बाद और भी बढ़ गयी है। रेणु जी ने आजादी का फायदा किन लोगों को हुआ यह प्रश्न भी उपन्यास में उठाया है। पूंजीपति और जमींदार आजादी के बाद समाज सेवक और नेताओं के रूप में सामने आये। आजादी के जुलूस में शामिल होने वाले कुछ लोग आज भी भूखे हैं। क्या यही आजादी है। इस वास्तविकता का चित्रण रेणु ने किया है। ऐसे लोगों के लिए आजादी झूठी है। उनके साथ धोखा है – "यह आजादी झूठी है। देश की जनता भूखी है।"[6] स्वतंत्र भारत में हिन्दू–मुसलमान दंगे भड़क उठते हैं। दोनों धर्मों के लोगों के मन में एक–दूसरे के प्रति अविश्वास पैदा होता है – "दंगा हो रहा है। सुनते हैं कि डिल्ली, कलकत्ता, नखलौ, पटना सब जगह हिन्दू–मुसलमान में लड़ाई हो रही है। गाँव के गाँव साफ––– आग लगा देते हैं।"[7] रेणु कहते है कि इस आजादी से भारत नाम के एक ऐसे बालक का जन्म होता है जिसकी माँ को पक्षाघात हो गया है और घर में आग लग जाती है। यह आग आगे क्या–क्या करेगी इसका पता नहीं है। और यह सच आज हम देख भी रहे हैं। यहाँ लेखक की दूर दृष्टि का परिचय मिलता है।

आजादी के बाद राजनीति का गिरता हुआ स्तर उसमें अपराधी तत्वों की घुसपैठ, धन और बल का प्रयोग, जाति केन्द्रित चुनाव पद्धति आदि पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। रेणु की किसी भी राजनितिक दल में निष्ठा नहीं थी। इसी कारण बदलती राजनितिक परिस्थिति का यथार्थ चित्रण 'मैला आँचल' में मिलता है। रेणु ने केवल मनुष्य को महत्व दिया और इसी कारण वे डॉ. प्रशांत और समाजसेवक बावनदास जैसे निःस्वार्थी नेताओं का निर्माण करना चाहते हैं। लेकिन बावनदास की मृत्यु के साथ सत्ता के लिए गाँधीवाद की पूजा का नाटक कर बाद में उसकी हत्या करना इस सत्य को भी कुशलता के साथ उद्घाटित किया है। उन्होंने बताया है कि आजादी के उपरांत दुलारचंद कापरा जैसे स्मगलर द्वारा कैसे स्वतंत्रता सेनानियों की हत्या की गई। उसके इशारे पर ही बावनदास को जीवित कुचल कर मार दिया जाता है। बावनदास के झोले का 'चेथरिया पीर' बनकर लटकना गाँधी के उच्च आदर्शों और उनके द्वारा स्थापित किए गए नैतिक मूल्यों का लटकना है अर्थात गाँधीवादी विचारों का विघटन है। किस प्रकार आपराधिक प्रवृति वाले लोग नेता बनकर देश की सत्ता की कुर्सी पर बैठे और देश को बर्बाद कर अंधकार की ओर धकेलते गए इसका चित्रण रेणु ने बखूबी किया है। प्रो. कृष्णचन्द्र लाल के अनुसार – "मैला आँचल रेणु के मानवतावादी दृष्टिकोण और मेहनतकश जनता की पक्षधरता का दस्तावेज है जिससे हम भारत के पिछड़े गाँवों की दशा–दुर्दशा के साथ–साथ भारतीय राजनीति, समाज और धार्मिक जीवन के पाखण्ड और चोचलों को समझकर मनुष्यता के पोषक विचारों को अपनी अंतरात्मा में सुदृढ़ कर सकते हैं।"[8]

मैला आँचल में रेणु ने डॉ. प्रशांत द्वारा एक चिट्ठी ममता को लिखवाई है, जिसका विशेष महत्त्व है। यह चिट्ठी लेखक के विचारों का आईना है। इस चिट्ठी में मानव, मानव की प्रगति और विकास की कामना तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना के साथ–साथ सामाजिक–राजनितिक समस्याओं को भी उजागर किया गया है। एक

प्रकार से इस चिट्ठी के माध्यम से रेणु ने सामाजिक, आर्थिक और राजनितिक समस्याओं का चित्रण कर उसका समाधान खोजने का प्रयास किया है। उपन्यास का विशेष पात्र डॉ. प्रशांत स्वतंत्र भारत के मेरीगंज गाँव को देखकर दुखी होता है। आजादी तो मिली है लेकिन मेरीगंज गाँव जो पूरे भारत के गाँवों का प्रतिनिधित्व करता है, वहाँ आजादी का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। लोग यहाँ अर्धनग्न, अशिक्षित, भूखे, असहाय, हैजा और कालाजर से पीड़ित हैं। प्रशांत कहता है – मैं यहाँ प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भींगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएंगे। मैं साधना करूँगा ग्रामवासिनी भारतमाता के आँचल तले। कम से कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाए ओठों पर मुस्कराहट लौटा सकूँ, उनके हर्दय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।"[9] कहना न होगा कि इस कथन के माध्यम से रेणु ने ग्रामीण जीवन के प्रति अपनी घनिष्ठ निष्ठा और पवित्र प्रेम को प्रकट किया है। वे गाँव को हमेशा खुशहाल देखना चाहते थे, शोषणमुक्त और रोगमुक्त देखना चाहते थे।

निष्कर्षतः रेणु जी के लेखकीय सरोकार साफ हैं। उन्होंने 'मैला आँचल' उपन्यास में स्वाधीनता, आजादी, स्वतंत्रता जैसे बड़े शब्दों के बीच दबे हुए कमजोर आदमी की आवाज को मुखर किया है। आजादी के एकदम बाद जनता में व्याप्त गहरे असंतोष और मोहभंग की पीड़ा को पूरे उपन्यास में चित्रित किया है। इसके साथ ही गाँव का उद्धार कैसे होगा? वंचित लोग आगे कैसे बढ़ेंगे? यह चिंता भी रचनाकार के मन में रही है और इस चिंता को 'मेरीगंज' के बहाने रेणु ने प्रस्तावित किया है। रेणु बदलावों के फिल्मी हवाई सपने नहीं दिखाते लेकिन 'मैला आँचल' में उन्होंने तिलमिलाती सच्चाइयों को भी अनदेखा नहीं किया है। बहुत कम उपन्यासों में ऐसे शोषण, जहालत और कामचोरी का यथार्थ चित्रण मिलता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, भूमिका ।
2. अनभै (उपन्यास विशेषांक) अंक 16–17, अक्टूबर–मार्च 2008, सम्पादक रतनकुमार पाण्डेय, पृ. सं. 128
3. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. सं. 27
4. वही, पृ. सं. 246
5. वही, पृ. सं. 176
6. वही, पृ. सं. 225
7. वही, पृ. सं. 232
8. अनभै (उपन्यास विशेषांक) अंक 16–17, अक्टूबर–मार्च 2008, सम्पादक रतनकुमार पाण्डेय, पृ. सं. 134
9. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. सं. 229

ई मेल– s0sharma1987@gmail-com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 54-59

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

भगवान दास मोरवाल के साहित्य में धर्म और स्त्री अस्मिता : स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य में

सुषमा, शोधार्थी,
निर्देशक– **डॉक्टर संजय कुमार** (सह–आचार्य)
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल यूनिवर्सिटी हिसार।

सारांश :–

यह शोध पत्र भगवानदास मोरवाल के साहित्य में निहित धर्म और स्त्री अस्मिता के अंतर्संबंध में स्त्री विमर्श की दृष्टि से गहन विश्लेषण करने के उद्देश्य के साथ–साथ स्त्री के अंतःकरण को भी उजागर करता है। धर्म केवल समाज में आस्था का ही विषय नहीं है, बल्कि नैतिक मूल्यों, लैंगिक भूमिकाओं और सामाजिक संरचना को निर्धारित करने की भी शक्ति रखता है। धार्मिक मान्यताओं का नारी की स्वतंत्रता, पहचान और सामाजिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भगवानदास मोरवाल इस जटिल समस्या को विभिन्न रूपों में देखते हैं, उनके साहित्य में धर्म कहीं नारी के दमन का कारण बनता है तो कहीं उनके आत्मबल या प्रतिरोध का कारण भी सिद्ध होता है। भगवान दास मोरवाल जी ने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्री पात्रों के सामाजिक स्तर, अवमानना, धार्मिक परंपराओं, सामाजिक रूढ़ियों, पितृसत्तात्मक मूल्यों के मध्य अपनी अस्मिता को स्थापित करते हुए प्रस्तुत किया है। लेखक ने अपने उपन्यास बाबल तेरा देस में, हलाला, वंचना, रेत, कांस, शंकुतिका वह लेकिन जैसी कहानियों में स्त्री दुर्दशा व शोषण का बड़ा ही विदारक वर्णन किया है। इनके स्त्री पात्र केवल पीड़ित ही नहीं बल्कि विचारशील, प्रश्नाकुल और आत्मनिर्णय की सत्ता के रूप में आगे बढ़ती हुई दिखाई देती हैं।

प्रस्तावना :–

लेखक ने अपने कथा साहित्य में दर्शाया है कि भारतीय समाज में धर्म केवल आस्था का विषय ही नहीं बल्कि नैतिक मान्यता, सामाजिक बुनावट, पारिवारिक व्यवस्थाओं को परिभाषित करता है। भगवानदास जी का मानना है कि नारी जीवन धर्म के मामले में काफी जटिल है। विभिन्न धर्मों का आकलन करने पर प्राप्त होता है कि सभी धर्मों में स्त्री के लिये कड़े व जटिल नियमों का गठन किया गया है। धार्मिक ग्रंथ स्त्री को त्याग, समर्पण और मर्यादा की मूर्ति के रूप में स्थापित करते हैं। इन्हीं धार्मिक ग्रंथों की मान्यताएँ, परम्पराएं उनके अधिकारों, स्वतंत्रता और अस्मिता को एक दायरे में सीमित कर देती है।

धर्म के आधार पर स्त्री अस्मिता की दुर्दशा : विविध आयाम :

धार्मिक ग्रंथ और पितृसत्तात्मकता –

हमारे धार्मिक ग्रंथों में हमेशा ही स्त्री को देवी और पूजनीय दर्शाया गया है। जब किसी को उस पूजनीय औधे पर बैठाया जाता है तो उनके साथ ही उस व्यक्ति की कुछ जिम्मेवारियां और मर्यादाएं तय कर दी जाती है। यही स्त्रियों के मामले में भी हुआ उन्होंने त्याग, तपस्या, समर्पण का प्रतिबिंब बनाकर छोड़ दिया गया। उनके कंधों पर पुरुषों द्वारा बनाए गए स्त्री विरोधी ढांचे के अनुसार चलने की जिम्मेवारी सौंप दी गई जो एक तरह से पुरुषों द्वारा बनाई गई योजना का ही हिस्सा मालूम पड़ता है। पुरुषों ने समाज को संचालित करने की बागडोर अपने हाथों में ले ली और स्त्रियों के साथ इज्जत को जोड़ दिया। मतलब अब स्त्री जो स्त्री करेगी उसको इज्जत का ख्याल रखना पड़ेगा, क्योंकि वह देवी है ना, समर्पण की मूर्ति है। अगर वह कुछ भी मनचाहा करेगी जो धार्मिक ग्रंथों की नियमावली में उचित नहीं है तो वह कुलटा, कुलक्ष्णी, बेशर्म, बेहया कहलाएगी। इन धार्मिक ग्रंथों की रचना करने वाले कौन हैं अधिकतर पुरुष फिर चाहे वह मनु स्मृति हो या फिर रामचरित्रमानस। त्याग तो सीता को ही करना पड़ेगा चाहे अग्निपरीक्षा हो या फिर धोबी के कहने मात्र से गृह त्याग।

इस बारे में डॉ. रोहिणी अग्रवाल कहती हैं कि "स्त्री को लेकर भारतीय साहित्य दर्शन एवं धर्म शास्त्रों में चिंतन की सुदीर्घ परंपरा रही है। जहाँ स्त्री को संपूर्ण सत्ता को भोग्या, अबला, ललना, कामिनी, रमणी आदि विशेषणों के साथ हेय और पुरुष सापेक्ष रूप चित्रित किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्राचीन एवं मध्ययुगीन सभी रचयिता एवं टीकाकार पुरुष थे। दूसरे मातृ सत्तात्मक व्यवस्था के अपदस्थ होने के बाद से समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विधान रहा है। फलतः स्वाभाविक था कि पुरुष के संदर्भ में पुरुष दृष्टि द्वारा स्त्री को देखा जाता। इसलिए पुरुष की श्रेष्ठता, सम्मान, स्थान, शक्ति, अधिकार और स्वार्थ की रक्षा के लिए धर्म शास्त्रों में अनेक ऐसे आप्त वचनों, सूत्रों, श्लोकों की रचना की जिन्होंने स्त्रियों के जीवन को अनेक सामाजिक–नैतिक अलगाव में बांध दिया।"[1]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से पितृसत्तात्मक ढांचे पर आधारित है। पितृसत्तात्मक सोच ने स्त्रियों को हमेशा से उनके अधिकारियों और उन से जुड़ें फायदों से वंचित रखा। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्रियों को केवल जिम्मेदारियों एवं असंख्य कर्तव्य में बांध दिया। उसको एक स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया जहाँ से वह अपने बारे में सोचने, विचार करने तक ही जैसे भूल गयी। उसे पुरुषों द्वारा बनाए गए नियम सही और सच्चे लगने लगे क्योंकि पुरुषों ने महिलाओं की सोचने की क्षमता पर ही धावा बोल दिया। उन्होंने ऐसा वातावरण तैयार किया जिससे महिलाओं को यह लगने लगा कि जो सदियों से चलता आ रहा है, वही सच है। इंग्लिश में इसके लिए कंडीशनिंग शब्द का प्रयोग किया जाता है यानी की जो बात आपको बार बार बताई जाए तो वह आपको उचित लगने लगती है। यही कारण कि हिंदी साहित्य के संपूर्ण इतिहास को देखें या धार्मिक ग्रंथों को देखें तो उनमें स्त्री को या तो देवी के रूप में पूजकर उसको मर्यादित कर दिया गया या फिर उसको पांव की जूती समझा गया।

स्त्री को कभी भी पुरुषों के बराबर मान्यता नहीं मिली पुरुषों की दृष्टि में स्त्री हमेशा से कामिनी, रमणीय और अबला ही रही। स्त्री का मूल्यांकन हमेशा पुरुष के केंद्र में ही रहा या यह भी कह सकते हैं की पुरुष के दृष्टिकोण से हुआ। जिसमें स्त्री का काम केवल पुरुष को सुख प्रदान करना, सेवा करना और परंपराओं का

निरंतर निर्वाहन करते हुए पाया गया। स्त्री को पुरुष की नियति मानकर उसके अधीन ही मान्यता दी गयी।

भगवानदास मोरवाल के अधिकांश साहित्य में स्त्री की वेदना, पीड़ा का बड़े ही विदारक और मार्मिक तरीके से वर्णित किया गया है। अपने कथा साहित्य में लेखक ने समाज के कठोर पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पड़ताल की है, जिसने स्त्री जीवन को सदैव बंधनों और व्यवस्था में जकड़े रखा। किस प्रकार पुरुषों ने स्त्रियों को अपने अधीन रखने के लिए षडयंत्र रचे। पुरुषों ने धर्म ग्रंथों का सहारा महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया। बाबुल तेरे देस में उपन्यास में एक जगह मुमताज के माध्यम से लेखक दिखाते हैं कि महिलाओं को शादी के बाद अपने पति को ही सब कुछ मानना पड़ता है, उसका हर हुक्म बजाना पड़ता है, असगरी को मुमताज बताती है कि 'शौहर के हकों का बयान' नामक अध्याय के पृष्ठों को खोलते हुए बोली, "तो सुनो, मौलाना अशरफ अली थानवी साहब के इस असली और मुकम्मल जेवर के मुताबिक औरत के लिए शौहर को राजी और खुश रखना सबसे बड़ी इबादत हैं। प्यारे नबी सल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फरमाया है कि जो औरत पांचों वक्त की नमाज पढ़ती रहे, रमजान के महीने में रोजे रखे, अपने आप को पाक–दामन रखे, अपने शौहर की सेवा और उनके हुक्म को मानती रहे, ऐसी औरत जिस दरवाजे से चाहे जन्नत से चली जाए यानी ऐसी औरत जन्नती कहलाती है।"[2]

इसी प्रकार वंचना उपन्यास में लेखक ने मर्दवादी सोच को दर्शाया है किस प्रकार सज्जन सिंह अपने बेटे द्वारा किए गए कुकर्म को जायज ठहराता है। यह उसकी पौरुष पूर्ण मानसिकता को दिखाता है। उसका मानना है कि शादी के बाद पति का पत्नी पर पूर्ण अधिकार होता है, इसमें औरत से किसी भी मामले में इजाजत लेने की आवश्यकता नहीं होती। उसके बेटे ने बिना उसकी पत्नी की रजामंदी के अगर शारीरिक संबंध बना लिए तो यह कौन सी बड़ी बात हो गई। मैरिटल रेप जैसी किसी बात को वह मानते तो क्या सुनना भी पसंद नहीं करते। उन्हें ऐसी बातें सुनकर जैसे हँसी आती है ऐसा भी कुछ होता है क्या? अगर कोई मामला कोर्ट कचहरी तक पहुँच भी जाता है तो उसको तोड़ मरोड़कर ऐसे पेश किया जाता है कि स्त्री का पक्ष कहीं टूटकर बिखर जाता। वंचना उपन्यास में अनिल कानूनविद् कहते हैं कि "मेरा अनुमान यह है कि पीठ इस धारा को ही समाप्त कर देगी। वह इसलिए कि न्याय का मर्द उपासक यह कभी भी नहीं चाहेगा कि पितृसत्ता की नकेल उसके हाथों से छूटे। इसलिए मुझे लगता है कि यह संविधान पीठ द्वारा 497 को असंवैधानिक भले ही कह दे, मगर औरत को पति और प्रेमी के विरुद्ध शिकायत करने का हक कदापि नहीं देगा। देखते हैं पिता पुत्र में से किसकी जीत होती है। हाँ अगर संविधान पीठ लिंग समानता और स्त्री मुक्ति की आड़ लेकर इस धारा को समाप्त करती है, तो एक तरह से ऐसा करना व्यभिचार और वैधानिकता प्रदान करना और एय्याशी व देह व्यापार को खुली छूट देना होगा। एक तरह से बदलते युग का यह पितृसत्ता का नया समाजशास्त्र होगा।"[3] भगवान दास मोरवाल के कथा साहित्य में पितृसत्ता केवल पारिवारिक व्यवस्था ही नहीं है बल्कि सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था के रूप में स्थापित होती है, जो स्त्री के अस्तित्व, अस्मिता और स्वतंत्रता को नियंत्रित करती। उनके कथा साहित्य में पितृसत्ता का यथार्थवादी, आलोचनात्मक और परिवर्तनकारी दृष्टिकोण मिलता है। पुरुषों की स्त्रियों पर वर्चस्ववादी मानसिकता इनके उपन्यास व कहानियों में देखी जा सकती।

धर्म के नाम पर स्त्री शोषण और सामाजिक अन्याय :

भारतीय समाज में धर्म को सदैव नैतिकता, आस्था और सामाजिक व्यवस्था का आधार माना गया है, परंतु स्त्रियों के मामले में अनेक बार धर्म की व्याख्या पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से की गई है, जिसके कारण स्त्रियों को

विभिन्न प्रकार के शोषण और सामाजिक भेदभाव का सामना करना पड़ा है। धार्मिक परंपराओं, मान्यताओं और रूढ़ियों के नाम पर स्त्री की स्वतंत्रता, अधिकार और अस्मिता को सीमित कर दिया जाता है। कई सामाजिक व्यवस्थाएँ 'जैसे विवाह, तलाक, उत्तराधिकार तथा स्त्री के आचरण से जुड़े नियम' अक्सर पुरुष प्रधान मानसिकता के अनुसार निर्धारित किए गए हैं, जिनका प्रतिकूल प्रभाव स्त्रियों के जीवन पर पड़ता है। बाबल तेरे देस में उपन्यास में लेखक कुरान का जिक्र करते हुए कहते हैं कि "हे नारी तू नीचे की ओर देखा कर, ऊपर की ओर नहीं। अपने पैरों को मिलाकर रखा कर। तेरी जघाएं दिखाई न दें। वस्त्र ऐसे पहन जिससे तेरे को ओष्ट तथा कटि के नीचे के हिस्से पर किसी भी दृष्टि न पड़े।"[4]

धर्म के नाम पर बनाए गए कुछ कठोर सामाजिक नियम स्त्रियों को ही अधिक दंडित करते हैं। उदाहरण के लिए, विवाह और तलाक से जुड़ी कुछ प्रथाएँ, स्त्री के जीवन को असुरक्षित और निर्भर बना देती हैं। संलाप में लेखक कहते हैं कि "धर्म और मर्दवादी व्यवस्था का गठजोड़ इतना मजबूत है कि उसे बींघना बहुत मुश्किल है। यह उल्लेखनीय है कि सभी धर्मों के धर्म ग्रंथों के रचयिता हम मर्द ही रहे हैं। इसलिए हमने अपने बचने के तो सारे रास्ते खोज लिए, मगर अपने से निरीह और कमजोर तबकों के रास्ते या तो बेहद संकरे कर दिए, या उन्हें बंद ही कर दिया। पूरी दुनिया में धर्मों का जितना इस्तेमाल स्त्री सत्ता के खिलाफ हुआ उसके बारे में हम सब जानते हैं। कई बार तो ऐसा लगता है मानो सब धर्मों के धार्मिक ग्रंथों के रचयिताओं ने आपस में मिलकर स्त्री संबंधी संहिताओं को बुना है।"[5] इस इसी प्रकार, धार्मिक रूढ़ियाँ स्त्रियों के पहनावे, व्यवहार और सामाजिक जीवन में उनकी भागीदारी को भी नियंत्रण करती हैं। परिणामस्वरूप स्त्री को समान अधिकार और सम्मान प्राप्त नहीं हो पाता और उसकी अस्मिता संकट में पड़ जाती है। लेखक लेकिन कहानी में एक जगह आयशा के पति माध्यम से पहनावा को लेकर पुरुषों की मानसिकता को दिखाते है उसकी सजने सँवरने पर रोक लगाते हुए कहता है कि "हमारे हीन ई सुरकी–लिपस्टिक, साड़ी– वाडी हिंददआणी पहरे है.......मुसलमाणनी न पहरे है....... ई हमारी हदीस में ना है, समझी काफरन की घरवाली ही पहरे है।"[6] भगवानदास मोरवाल के साहित्य और स्त्री–विमर्श ने इस स्थिति पर गंभीर प्रश्न उठाए हैं। धर्म के नाम पर होने वाला यह शोषण केवल सामाजिक अन्याय ही नहीं, बल्कि स्त्री की मानवीय गरिमा का भी हनन है। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि धार्मिक मान्यताओं और परंपराओं का पुनर्मूल्यांकन किया जाए, ताकि धर्म समाज में समानता, न्याय और मानवता के मूल्यों को मजबूत कर सके और स्त्री को उसकी स्वतंत्र पहचान और सम्मान प्राप्त हो सके।

साम्प्रदायिकता और स्त्री जीवन :

संसार में युद्ध में साम्प्रदायिकता चाहे कहीं भी हों उसका हरजाना सिर्फ और सिर्फ महिलाओं को भुगतना पड़ता है। पुरुषों की क्रूरता और बर्बरता का सामना महिलाओं को अपनी अस्मिता चुकाकर करना पड़ता है। हम हालिया ईरान–इजराइल–अमेरिका युद्ध में भी देख सकते हैं कि वहाँ भी कमजोर निस्सहाय छोटी बच्चियों के स्कूल को निशाना बनाया गया और उनको दफ्न कर दिया गया। जहाँ वे अपनी जिंदगी बनाने की इच्छा आयी थी। ये तो एक उदाहरण है ऐसे बहुत सारे अमानवीय उदाहरण हम अपने आसपास देख सकते हैं, चाहे वह गुजरात दंगों की बिलकिस बानो हो, या कोई और। किसी को धर्म के नाम पर, किसी को जाति के नाम पर कुचला गया। उसकी अस्मिता के साथ खिलवाड़ किया गया। आज भी हमारे आस–पास धार्मिक साम्प्रदायिकता का जो सबसे बड़ा जो हरजाना चुकाती है, वो औरतें ही हैं। लेखक ने भूकंप कहानी के माध्यम से पारो की

मनोस्थिति को प्रकट किया है कि किस प्रकार विभाजन के वक्त एक बूढ़ी औरत उस तरह विभाजनकारी त्रासदी को सहन करती है– "पूरी रात पारो ने आँखों ही आँखों से काटी। गांव के सारे लोग गली– मोहल्ले में पहरेदार के रूप में बिछ गए। जब भी किसी 'जागते रहो' का स्वर रात के सन्नाटे को चीरता हुआ पारो के कानों से टकराता है वे अंदर तक हिल जाती है।"[7] सत्य तो ये है कि धर्म कभी भी मानवता के हत्या करना, हिंसा फैलाना या वैमनस्य सीखाना नहीं चाहता। सभी धर्मों का एक ही ध्येय होता है वह मानवीय मूल्यों का संवर्धन और उन्नयन करने की तालीम देना। परन्तु जब धर्म राजनैतिक स्वार्थ और सामुदायिक पहचान की संकीर्णता से जोड़ा जाता है तो वह अपने वास्तविक उद्देश्य से परे होता चला जाता है।

तलाक, हलाला और स्त्री अस्मिता का सवाल :

तलाक और हलाला जैसी प्रथाएँ केवल वैवाहिक संबंधों का सवाल नहीं हैं, बल्कि वे स्त्री की अस्मिता, गरिमा और स्वतंत्रता से गहराई से जुड़ी हुई हैं। कई समाजों में धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं के नाम पर स्त्री के जीवन के साथ खिलवाड़ किया जाता है।

तलाक का अधिकार सामान्यतः पुरुष को अधिक सहजता से प्राप्त होता रहा है, जबकि स्त्री के लिए यह प्रक्रिया कठिन और जटिल होती है। इससे पारिवारिक संबंधों में असमानता दिखाई देती है और स्त्री की स्थिति कमजोर हो जाती है। कई बार पुरुष द्वारा त्वरित या एकतरफा तलाक स्त्री के जीवन में आर्थिक, सामाजिक और मानसिक संकट पैदा कर देता है।

इसी प्रकार हलाला की प्रथा भी स्त्री अस्मिता के प्रश्न को और अधिक जटिल बनाती है। तलाक के बाद यदि पति–पत्नी पुनः साथ रहना चाहते हैं तो स्त्री को किसी अन्य पुरुष से विवाह कर उसके साथ संबंध बनाकर पुनः तलाक लेना पड़ता है। कई बार दूसरा विवाह करने के बाद वह व्यक्ति तलाक देने से मना कर देता है, तब यह स्थिति और भयावह हो जाती है, क्योंकि जो व्यक्ति हलाला के लिए उस स्त्री से विवाह करता है। वह उसका शारीरिक एवं मानसिक दोनों तरह से शोषण करता है। इस प्रक्रिया में स्त्री की अस्मिता तार–तार होकर रह जाती है। यह प्रक्रिया स्त्री की स्वतंत्र, इच्छा और सम्मान के विपरीत मानी जाती है, क्योंकि इसमें स्त्री को एक स्वतंत्र व्यक्ति के बजाय एक सामाजिक–धार्मिक नियम का पालन करने वाली वस्तु की तरह देखा जाता है। लेखक भगवानदास मोरवाल इस बारे में हलाला उपन्यास में लिखते हैं– "हलाला का मतलब एक तलाकशुदा औरत किसी दूसरे मर्द से निकाह करे तो फिर उससे या तो तलाक ले या उसके उस शौहर की मौत हो जाए, तभी वह शौहर के लिए हलाल होती है– इसी का नाम हलाला है।"[8] स्त्री क्या चाहती है, उसे कोई नहीं पूछता, उससे पशुवत् व्यवहार किया जाता है, यानी कि वे इंसान है ही नहीं। जब उसको पहले पति ने तलाक दिया उसमें उसकी सहमत थी। क्या वो हलाला के लिए तैयार है या फिर दूसरे शौहर से तलाक लेना चाहती है।

आधुनिक समय में स्त्री–विमर्श के संदर्भ में इन प्रथाओं पर गंभीर बहस हो रही है। कई सामाजिक कार्यकर्ता और विचारक मानते हैं कि धर्म और परंपरा की आड़ में स्त्री के अधिकारों का हनन नहीं होना चाहिए। स्त्री को समान अधिकार, सम्मान और निर्णय लेने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, ताकि उसकी अस्मिता सुरक्षित रह सके। तलाक ए बिद्दत 2019 को हटाया गया।

तलाक और हलाला का मुद्दा केवल धार्मिक या वैवाहिक व्यवस्था का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह स्त्री के अधिकार, समानता और आत्मसम्मान से जुड़ा एक महत्वपूर्ण सामाजिक विमर्श है। यदि समाज में वास्तविक

समानता स्थापित करनी है तो इन प्रथाओं पर पुनर्विचार करना आवश्यक है, ताकि स्त्री को एक स्वतंत्र और सम्मानित व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार किया जा सके।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि भगवान दास मोरवाल ने स्त्री जीवन की हर एक पहलू पर अपनी लेखनी चलाई है, चाहे वह बाबल तेरा देश में की पारो हो, असगरी या शकीला हो या हलाला की नजराना सबकी मानसिकता का उल्लेखनीय बड़े ही मार्मिक रुप में किया है। यह भी कह सकते हैं कि लेखक ने जैसे उन सब स्त्रियों की परिस्थितियों को जिया हो, क्योंकि इतनी गहनता के साथ स्त्री जीवन का उल्लेख वही व्यक्ति कर सकता है जिसने नजदीक से स्त्री जीवन को देखा और महसूस किया हो। आज भी लेखक भगवानदास मोरवाल इसी प्रयास में लगे रहते हैं कि वह किस प्रकार पिछड़ी, दमित, समाज की नीचले तबके की स्त्रियों की आवाज बन सके। पितृसत्तात्मक सोच के खिलाफ आवाज उठाते हैं। धर्म के नाम पर स्त्रियों के साथ हो रहे शोषण का विरोध करते हैं। धार्मिक सांप्रदायिकता का महिलाओं के उपर पड़ने वाला नकारात्मक प्रभाव उन्हें परेशान करता है। इसके साथ–साथ विवाह, तलाक, हलाला जैसे गंभीर समस्याएं जो स्त्री व पुरुष के बीच असामान्यता, भेदभाव पैदा करती है उस पर लेखक की पूर्ण नजर है।

संदर्भ सूची :-

1. डॉक्टर रोहिणी अग्रवाल, साहित्य का स्त्री–स्वर, पृष्ठ–7
2. भगवानदास मोरवाल बाबल तेरे देस में, पृष्ठ–385
3. भगवान दास मोरवाल, वंचना, पृष्ठ–161–162
4. भगवान दास मोरवाल, बाबल तेरे देस में, पृष्ठ–361
5. संलाप भगवानदास मोरवाल, संपादक डॉक्टर नैया, पृष्ठ–72
6. महराब व अन्य कहानियाँ, कहानी भूकंप, पृष्ठ–35
7. महराब और अन्य कहानियाँ कहानी, भूकंप, पृष्ठ–68
8. भगवानदास मोरवाल, हलाला, पृष्ठ–129

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
March 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 60-65

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

From Urban Craft Traditions to Colonial Modernity : Transformations in Indian Artistic Production

Siddhant Mishra

Research Scholar, Lovely Professional University.

Abstract :

The history of Indian art demonstrates a continuous process of cultural transformation shaped by technological innovation, religious ideology, and political patronage. This article examines three critical phases in the development of artistic traditions in India: the urban craft traditions of the Indus Valley Civilization, the imperial painting culture of the Mughal court, and the transformation of artistic production during British colonial rule in the nineteenth century. Through a comparative historical analysis, the study explores the materials, techniques, symbolism, and institutional contexts that influenced artistic expression across these periods. The article argues that Indian art evolved through a process of cultural interaction and adaptation, where indigenous traditions were constantly reshaped through changing systems of patronage and cross-cultural exchanges.

Keywords : Indian art history, Indus civilization, Mughal painting, colonial art, artistic patronage, cultural exchange

1. Introduction :

The artistic history of the Indian subcontinent is marked by a remarkable diversity of forms and traditions that developed across different historical contexts. From early urban civilizations to imperial courts and colonial institutions, artistic production in India has been shaped by complex interactions between political authority, religious belief, and cultural exchange.

This study explores three key historical phases that illustrate these transformations :

- The artistic production of the Indus Valley Civilization, representing early urban craft traditions.
- The development of Mughal painting under imperial patronage, which integrated Persian and Indian artistic elements.
- The colonial transformation of Indian art in the nineteenth century, when Western academic

training and new technologies reshaped artistic practices.

By examining these periods together, the article seeks to demonstrate how artistic traditions in India evolved through processes of continuity, adaptation, and cultural negotiation.

2. Historiography of Indian Art :

The historiography of Indian art has evolved significantly over the past century. Early scholarship was largely shaped by colonial art historians, who often approached Indian art through European aesthetic frameworks.

One of the earliest systematic studies of Indian art was produced by Percy Brown, whose works on Indian architecture and painting attempted to classify artistic traditions chronologically. Although Brown's work remains influential, it reflected a largely descriptive approach typical of early twentieth-century scholarship. Another major figure in the historiography of Indian art was Ananda K. Coomaraswamy, who emphasized the spiritual and philosophical dimensions of Indian artistic traditions. Coomaraswamy argued that Indian art should be understood within the context of religious symbolism and metaphysical concepts rather than purely aesthetic criteria. Later scholars such as Stella Kramrisch expanded the interpretive framework by examining the relationship between art, ritual, and cosmology in Indian traditions. Kramrisch's work highlighted the symbolic meanings embedded in artistic forms, particularly in temple architecture and sculpture.

More recent historians, including Partha Mitter, have critically examined the impact of colonialism on the interpretation of Indian art. Mitter argues that colonial institutions played a central role in shaping modern perceptions of Indian artistic traditions and in redefining artistic hierarchies. Contemporary scholarship also incorporates archaeological evidence, anthropological perspectives, and cultural history, allowing for a more nuanced understanding of artistic production across different historical periods.

3. Artistic Production in the Indus Valley Civilization :

The Indus Valley Civilization (c. 2600–1900 BCE) represents one of the earliest urban societies in South Asia. Archaeological excavations at sites such as Harappa and Mohenjo-daro have revealed a highly developed craft tradition that produced a wide range of artistic objects.

Indus artisans worked with materials including terracotta, bronze, steatite, faience, shell, and semi-precious stones. The famous bronze sculpture known as the **Dancing Girl** demonstrates the advanced metallurgical skills of Indus craftsmen, particularly the use of the lost-wax casting technique. Another important category of artifacts is the steatite seals, which frequently depict animals and composite creatures accompanied by inscriptions in the undeciphered Indus script. Scholars have suggested that these seals served administrative, economic, or ritual purposes. Despite the absence

of monumental sculptures or temples, the artistic output of the Indus civilization reveals a highly organized craft economy. The standardized production of seals, beads, and pottery indicates a sophisticated system of craft specialization and trade networks.

4. Mughal Court Culture and the Development of Painting :

The establishment of the Mughal Empire in the sixteenth century introduced a new system of artistic patronage centered on the imperial court. Mughal rulers actively supported artistic production, creating royal workshops that employed painters from different cultural backgrounds. The Mughal painting tradition developed through the interaction of Persian miniature painting and indigenous Indian artistic practices. When Emperor Humayun returned to India after his exile in Persia, he brought Persian artists to his court, who played a key role in shaping the early Mughal style.

Under Emperor Akbar, the imperial atelier produced large illustrated manuscripts such as the Akbarnama and Hamzanama. These works combined Persian stylistic conventions with Indian narrative themes and vibrant color schemes. During the reign of Jahangir, Mughal painting became increasingly naturalistic. Artists produced highly detailed representations of animals, plants, and birds, reflecting the emperor's interest in natural history.

Under Shah Jahan, Mughal painting became more refined and decorative, emphasizing courtly elegance and imperial grandeur. However, after the decline of Mughal patronage during the reign of Aurangzeb, many artists migrated to regional courts, contributing to the development of Rajput and Deccan painting traditions.

5. Colonial Encounters and Artistic Transformation :

The nineteenth century marked a significant turning point in the history of Indian art due to the impact of British colonial rule. Colonial administrators established art schools that introduced Western academic training in drawing, perspective, and anatomy.

Institutions such as the Government School of Art in Calcutta promoted European artistic methods, encouraging Indian artists to adopt new techniques such as oil painting and naturalistic representation. One of the most prominent artists of this period was Raja Ravi Varma, who combined Western academic realism with Indian mythological themes. His paintings of gods and epic narratives became widely popular, particularly after the introduction of lithographic printing.

At the same time, colonial artistic influence generated debates about cultural authenticity. Indian intellectuals and artists increasingly sought to revive indigenous artistic traditions, leading to the emergence of nationalist artistic movements in the late nineteenth and early twentieth centuries.

6. Continuity and Transformation in Indian Artistic Traditions :

An examination of Indian artistic traditions over an extended period of time reveals a

complicated pattern of cultural synthesis, continuity, and evolution. Certain structural elements persisted from the Indus Valley Civilization to the Mughal era and thereafter under colonial control, despite the fact that the artistic forms and materials employed by artists underwent substantial changes. These include how patronage and artistic output are related, how religious and symbolic themes endure, and how cultural interaction influences artistic creativity.

6.1 Patronage and Institutional Framework :

The patronage system has been one of the most enduring elements influencing artistic output in India. Throughout history, artistic endeavours have thrived within institutional frameworks backed by state authorities, religious organizations, or political elites.

Craft specialization and urban economic organization seem to have been strongly associated with artistic expression in the Indus Valley Civilization. According to archaeological evidence, craftspeople worked in organized craft industries, creating standardized items including pottery, jewellery, and seals (Kenoyer, 1998). Many artifacts' homogeneity suggests that metropolitan areas like Harappa and Mohenjo-daro have centralized production and regulatory structures.

Patronage moved from urban civic institutions to imperial court establishments throughout the Mughal era. Painters, calligraphers, and craftspeople collaborated under royal supervision in karkhanas, artistic workshops actively supported by Mughal kings (Beach, 1992). These workshops served as both artistic hubs and tools for imperial representation. Mughal kings' legitimacy and authority were visually constructed through court settings, illustrated texts, and portraits. Another change in cultural support occurred during British colonial administration. The establishment of official art schools and museums by colonial rulers changed the nature of creative education and output. By promoting Western academic methods, establishments like Calcutta's Government School of Art redefined the criteria used to assess artistic ability (Guha-Thakurta, 1992). This led to the institutionalization of cultural patronage and its connection to contemporary educational systems.

Therefore, the reliance of artistic output on patronage persisted as a structural aspect of Indian art history, even though the sources of patronage changed throughout time—from municipal authorities to imperial courts and colonial institutions.

6.2 Symbolism and Religious Continuity :

Indian art has continuously maintained a close relationship with symbolic and religious values despite the diversity of artistic styles across historical times. Recurring motifs like animals, trees, and composite images indicate the existence of symbolic or ritual importance in the Indus Valley Civilization, even though the exact meanings of many symbols are still unknown due to the unintelligible script (Kenoyer, 1998).

During the Mughal era, religious iconography and imperial ideology were intimately associated with artistic symbolism. Emperors were frequently shown in meticulously designed visual environments that highlighted their power and heavenly favour. At the same time, rulers like Jahangir's academic interests were mirrored in naturalistic study of plants and animals.

Religious symbolism remained a significant part of artistic creation during the colonial era, especially in popular prints and paintings that told legendary stories. By producing images that were widely shared and acknowledged throughout the subcontinent, artists like Ravi Varma helped to standardize the visual representation of Hindu deities. Thus, symbolic and religious themes continued to play a major role in Indian artistic expression even as artistic techniques changed over centuries.

6.3 Technological Innovation and Artistic Change :

Throughout history, technological advancements have also had a significant impact on the development of artistic traditions. The Indus Valley Civilization's usage of the lost-wax casting method shows how advanced metallurgical understanding was developed early on. In a same vein, improvements in paper manufacturing and pigment preparation let Mughal miniature painting flourish. New technologies like lithographic printing revolutionized the availability and distribution of visual pictures throughout the colonial era. The mass production of paintings and prints made possible by lithography made it possible for religious and artistic imagery to reach a larger audience than in the past (Mitter, 2007).

7. Conclusion :

The Indian subcontinent's artistic traditions have evolved historically through a complicated process influenced by political patronage, cultural exchange, and technological advancement. This study illustrates how artistic techniques changed in reaction to larger social and historical circumstances by looking at the Indus Valley Civilization's artistic output, the evolution of Mughal court painting, and the changes brought about during the colonial era.

The evidence presented demonstrates that artistic production in India has consistently been influenced by institutional frameworks and systems of patronage. Artistic items like bronze sculptures, seals, and figurines were intimately associated with urban craft specialization and trade networks in the Indus Valley Civilization.

Under the support of the imperial court, creative innovation flourished during the Mughal era. The creation of royal workshops promoted artistic cooperation and a unique painting style that blended Persian artistic methods with native Indian visual components. In addition to being beautiful works of art, Mughal paintings represented courtly culture and imperial authority visually.

The introduction of Western academic instruction and new creative institutions throughout

the colonial era had a profound impact on artistic creativity. Hybrid artistic forms emerged as a result of Indian painters' exposure to European techniques like perspective and oil painting. This synthesis is best illustrated by characters like Raja Ravi Varma, who blended Indian mythological elements with European realism. Indian art has remained closely associated with religious, cultural, and symbolic traditions despite these changes. The persistent relevance of visual culture in communicating societal ideals and collective identities is demonstrated by the recurrence of these themes throughout various historical eras.

In conclusion, the development of Indian art should be understood as a process of **continuity and adaptation**, shaped by ongoing cultural dialogue and historical change.

References :

1. Brown, P. (1953). *Indian painting*. D. B. Taraporevala.
2. Coomaraswamy, A. K. (1918). *The dance of Shiva: Essays on Indian art and culture*. Sunwise Turn.
3. Craven, R. (1997). *Indian art: A concise history*. Thames & Hudson.
4. Harle, J. C. (1994). *The art and architecture of the Indian subcontinent*. Yale University Press.
5. Huntington, S. L. (1985). *The art of ancient India*. Weatherhill.
6. Kramrisch, S. (1955). *The art of India*. Phaidon.
7. Michell, G. (1989). *The Penguin guide to the monuments of India*. Penguin Books.
8. Mitter, P. (2001). *Indian art*. Oxford University Press.
9. Mitter, P. (2007). *The triumph of modernism: India's artists and the avant-garde 1922–1947*. Reaktion Books.
10. Pal, P. (1986). *Indian sculpture*. Los Angeles County Museum of Art.
11. Rowland, B. (1977). *The art and architecture of India*. Penguin Books.
12. Sullivan, B. M. (1999). *The Hindu traditions: Reading in the religious traditions of the world*. Prentice Hall.
13. Thapar, R. (2002). *Early India: From the origins to AD 1300*. University of California Press.
14. Tomory, E. (1989). *A history of fine arts in India and the West*. Orient Longman.
15. Welch, S. C. (1978). *Imperial Mughal painting*. George Braziller.
16. Beach, M. C. (1992). *Mughal and Rajput painting*. Cambridge University Press.
17. Guha-Thakurta, T. (1992). *The making of a new "Indian" art: Artists, aesthetics and nationalism in Bengal*. Cambridge University Press.
18. Desai, V. N. (2005). *India's princely states: People, princes and colonialism*. Cambridge University Press.
19. Possehl, G. L. (2002). *The Indus civilization: A contemporary perspective*. AltaMira Press.
20. Kenoyer, J. M. (1998). *Ancient cities of the Indus Valley civilization*. Oxford University Press.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 66-73

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

परम्परागत फसलों के ह्रास का भौगोलिक विश्लेषण 2010–2022 : महू तहसील के संदर्भ में

राजा डावर
समाज विज्ञान अध्ययन शाला देवी अहिल्या विश्वविघ्यालय, इन्दौर
डॉ. बी.एल. पाटीदार
प्राध्यापक भूगोल विभाग, शा. महाविलय उमरबन, धार।

सारांश :

प्रस्तुत शोध-पत्र महू तहसील (जिला इन्दौर) में 2010-2022 के मध्य फसल प्रतिरूप में आए संरचनात्मक परिवर्तन का भौगोलिक एवं सांख्यिकीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन विशेष रूप से ज्वार, बाजरा और दलहन जैसी परम्परागत फसलों के क्षेत्रफल में आई गिरावट तथा सोयाबीन आधारित कृषि विशेषीकरण की प्रवृत्ति पर केंद्रित है। द्वितीयक आँकड़ों के आधार पर प्रतिशत परिवर्तन, प्रवृत्ति विश्लेषण तथा Herfindahl फसल एकाग्रता सूचकांक का उपयोग किया गया। परिणाम संकेत करते हैं कि सिंचाई विस्तार, बाजार निकटता, नीतिगत प्रोत्साहन तथा भूमि संरचना में परिवर्तन इस संक्रमण के प्रमुख प्रेरक रहे हैं। अध्ययन यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि कृषि प्रणाली में विशेषीकरण अल्पकालीन आय वृद्धि तो प्रदान करता है, किंतु दीर्घकाल में पारिस्थितिक और सामाजिक जोखिम उत्पन्न कर सकता है।

मुख्य शब्द : फसल प्रतिरूप, परम्परागत फसलें, सोयाबीन विस्तार, कृषि विशेषीकरण, महू तहसील

1. प्रस्तावना :

भारतीय कृषि प्रणाली ऐतिहासिक रूप से विविधता, पारिस्थितिक अनुकूलन और जोखिम-संतुलन पर आधारित रही है। विशेषकर अर्ध-शुष्क एवं मानसूनी क्षेत्रों में बहुफसली कृषि (mixed cropping) केवल उत्पादन पद्धति नहीं, बल्कि जलवायु अनिश्चितता से निपटने की एक रणनीतिक व्यवस्था थी। मध्य भारत का मालवा क्षेत्र इसी परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ ज्वार, बाजरा, अरहर तथा अन्य मिलेट फसलें वर्षा-आश्रित कृषि की आधारशिला थीं। ये फसलें सीमित इनपुट में उत्पादन देती थीं, मृदा उर्वरता को बनाए रखती थीं तथा ग्रामीण परिवारों को पोषण-सुरक्षा प्रदान करती थीं। कृषि-परिवर्तन पर किए गए अध्ययनों में यह स्पष्ट किया गया है कि विविध फसल प्रणाली जोखिम-वितरण (risk spreading) का कार्य करती है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ वर्षा की अनिश्चितता अधिक होती है (पिंगली, 2012)।

किन्तु 1990 के दशक में आर्थिक उदारीकरण और कृषि के बाज़ारीकरण ने फसल प्रतिरूप को प्रभावित किया। मूल्य-समर्थन नीतियाँ, तेलहन प्रोत्साहन कार्यक्रम तथा प्रसंस्करण उद्योगों का विस्तार कृषि निर्णयों में निर्णायक कारक बने। भल्ला एवं सिंह (2009) ने उदारीकरण-उपरांत कृषि में क्षेत्रीय विशेषीकरण की प्रवृत्ति को रेखांकित किया है, जिसके अंतर्गत कुछ राज्यों में नकदी फसलों का विस्तार तीव्र हुआ। मध्य प्रदेश इसका प्रमुख उदाहरण है। कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित *Agricultural Statistics at a Glance* (2022) के अनुसार 2010-11 में राज्य में सोयाबीन का क्षेत्रफल कुल सकल बोये क्षेत्र का लगभग 29-30 प्रतिशत था, जो 2021-22 तक बढ़कर 41 प्रतिशत से अधिक हो गया। इसी अवधि में ज्वार और बाजरा के क्षेत्रफल में उल्लेखनीय गिरावट दर्ज की

गई। इस परिप्रेक्ष्य में यह अध्ययन महू तहसील के संदर्भ में यह परीक्षण करने का प्रयास करता है कि परम्परागत फसलों का ह्रास मात्र वर्णनात्मक प्रवृत्ति है या सांख्यिकीय रूप से सिद्ध संरचनात्मक परिवर्तन। साथ ही यह शोध यह भी विश्लेषित करता है कि भौगोलिक संसाधन संरचना, सिंचाई विस्तार और बाजार निकटता किस प्रकार इस परिवर्तन को प्रभावित कर रहे हैं। इस प्रकार यह अध्ययन सामान्य राष्ट्रीय प्रवृत्तियों से विशिष्ट स्थानीय वास्तविकता की ओर अग्रसर होता है।

2. उद्देश्य :

1. 2010-2022 के मध्य फसल प्रतिरूप में परिवर्तन का विश्लेषण करना।
2. परम्परागत फसलों के क्षेत्रफल में गिरावट की सांख्यिकीय पुष्टि करना।
3. कृषि विशेषीकरण की प्रवृत्ति को मापना।
4. परिवर्तन के भौगोलिक एवं आर्थिक कारकों की व्याख्या करना।

3. परिकल्पनाएँ :

H_1 : 2010-2022 के मध्य परम्परागत फसलों का क्षेत्रफल सांख्यिकीय रूप से घटा है।

H_2 : अध्ययन अवधि में फसल एकाग्रता सूचकांक में वृद्धि हुई है।

4. अध्ययन क्षेत्र :

महू तहसील मालवा पठार के दक्षिण-पश्चिमी भाग में स्थित है और प्रशासनिक दृष्टि से इन्दौर जिले का एक महत्वपूर्ण उपक्षेत्र है। यह क्षेत्र दक्कन ट्रैप शैल संरचना पर विकसित हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप यहाँ गहरी काली मिट्टी (Vertisols) का व्यापक विस्तार मिलता है। National Bureau of Soil Survey and Land Use Planning (NBSS&LUP, 2018) के अनुसार काली मिट्टी उच्च जलधारण क्षमता, गहरी प्रोफ़ाइल तथा पोषक तत्व संरक्षण की विशेषता रखती है, जिससे यह खरीफ फसलों के लिए अनुकूल मानी जाती है। जलवायु की

दृष्टि से यह क्षेत्र उष्णकटिबंधीय मानसूनी प्रकार का है। India Meteorological Department (2020) के दीर्घकालिक औसत आँकड़ों के अनुसार इन्दौर-मालवा क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा लगभग 95- 1100 से.मी. के बीच दर्ज की जाती है, जिसका लगभग 85 प्रतिशत भाग जून से सितंबर के बीच प्राप्त होता है। वर्षा का यह मौसमी एकाग्रण ऐतिहासिक रूप से ज्वार, बाजरा और अरहर जैसी वर्षा-आश्रित फसलों के लिए अनुकूल रहा है। कृषि संरचना पारंपरिक रूप से खरीफ प्रधान रही है, किन्तु पिछले एक दशक में रबी फसलों का विस्तार स्पष्ट रूप से बढ़ा है। *Land Use Statistics* (कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, विभिन्न वर्ष) यह संकेत करती है कि मध्य प्रदेश में सिंचित क्षेत्र के विस्तार के साथ दो फसली प्रणाली का प्रसार हुआ है। महू तहसील में नलकूप आधारित सिंचाई प्रमुख स्रोत के रूप में उभरी है, जिसने गेहूँ और अन्य रबी फसलों के क्षेत्रफल में वृद्धि को संभव बनाया। Central Ground Water Board (2022) की रिपोर्टें भी राज्य में भूजल दोहन में वृद्धि की पुष्टि करती हैं।

5. कार्यप्रणाली :

इस अध्ययन में 2010-2022 की अवधि के लिए द्वितीयक कृषि आँकड़ों का उपयोग किया गया, जो कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय तथा राज्य स्तरीय कृषि सांख्यिकी से प्राप्त किए गए। विश्लेषण का उद्देश्य परम्परागत फसलों के क्षेत्रफल में परिवर्तन तथा कृषि विशेषीकरण की प्रवृत्ति का सांख्यिकीय परीक्षण करना था।

5.1 प्रयुक्त सांख्यिकीय उपकरण :

1. **प्रतिशत परिवर्तन विश्लेषण: प्रतिशत परिवर्तन** = $\frac{(\text{नयामान} - \text{पुरानामान})}{\text{पुरानामान}} \times 100$

इससे अध्ययन अवधि में क्षेत्रफल वृद्धि या कमी की तीव्रता ज्ञात की गई।

2. **प्रवृत्ति (Trend) विश्लेषण**: समय-श्रृंखला के आधार पर फसल क्षेत्रफल में वृद्धि या गिरावट की दिशा का परीक्षण किया गया।

3. **Herfindahl फसल एकाग्रता सूचकांक: $H=\sum(Pi)^2$**

जहाँ Pi कुल क्षेत्रफल में प्रत्येक फसल का अनुपात है।

सूचकांक के उच्च मान का अर्थ है अधिक विशेषीकृत कृषि संरचना।

इन उपकरणों के माध्यम से फसल विविधता से विशेषीकरण की ओर संक्रमण का मात्रात्मक परीक्षण किया गया।

6. आँकड़ा विश्लेषण एवं सांख्यिकीय परीक्षण :

अध्ययन अवधि 2010-11 से 2021-22 के मध्य उपलब्ध आधिकारिक आँकड़ों के आधार पर फसल प्रतिरूप परिवर्तन का विश्लेषण किया गया। आँकड़े *Agricultural Statistics at a Glance 2022* (कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार) तथा मध्य प्रदेश शासन के आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय से संकलित किए गए हैं। प्रस्तुत प्रतिशत मान सकल बोये क्षेत्र (Gross Cropped Area) के सापेक्ष हैं।

तालिका 1 : मध्य प्रदेश में प्रमुख फसलों का क्षेत्रफल (%), 2010-2022

वर्ष	**ज्वार**	**बाजरा**	**दलहन (कुल)**	**सोयाबीन**
2010-11	13.8	9.6	19.7	29.8
2015-16	11.2	8.1	18.5	34.6
2020-21	7.4	5.2	16.4	39.7
2021-22	6.9	4.8	15.9	41.2

स्रोत : कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय (2022); आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय, मध्य प्रदेश (विभिन्न वर्ष)

6.1 प्रवृत्ति विश्लेषण (Trend Analysis)

तालिका से स्पष्ट है कि 2010-11 से 2021-22 के बीच ज्वार का हिस्सा 13.8 प्रतिशत से घटकर 6.9 प्रतिशत रह गया। यह लगभग 6.9 प्रतिशत अंक (percentage points) की गिरावट है। यदि इसे सापेक्ष परिवर्तन के रूप में देखें तो ज्वार में लगभग 49.9 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई।

बाजरा का क्षेत्रफल 9.6 प्रतिशत से घटकर 4.8 प्रतिशत हुआ, अर्थात 4.8 प्रतिशत अंक की गिरावट। सापेक्ष दृष्टि से यह लगभग 50 प्रतिशत की कमी है। तथापि, मध्यवर्ती वर्षों में गिरावट की गति भिन्न रही। 2015-16 से 2020-21 के बीच बाजरा में लगभग 35 प्रतिशत से अधिक की तीव्र गिरावट दर्ज की गई, जो यह संकेत करती है कि परिवर्तन क्रमिक किन्तु चरणबद्ध था।

दलहन (कुल) में 19.7 प्रतिशत से 15.9 प्रतिशत तक की कमी (लगभग 3.8 प्रतिशत अंक) दर्ज हुई। सापेक्ष रूप से यह लगभग 19.3 प्रतिशत की गिरावट है। यह दर्शाता है कि सभी परम्परागत फसलें समान तीव्रता से प्रभावित नहीं हुईं; मिलेट्स की तुलना में दलहनों का संकुचन अपेक्षाकृत नियंत्रित रहा। इसके विपरीत सोयाबीन का क्षेत्रफल 29.8 प्रतिशत से बढ़कर 41.2 प्रतिशत तक पहुँच गया। यह 11.4 प्रतिशत अंक की वृद्धि है, जो सापेक्ष रूप से लगभग 38.2 प्रतिशत विस्तार को दर्शाती है। वृद्धि की प्रवृत्ति निरंतर रही और प्रत्येक अंतराल में सोयाबीन की हिस्सेदारी में वृद्धि दर्ज हुई।

6.2 वार्षिक औसत परिवर्तन (Compound Trend Approximation) :

यदि 2010-11 से 2021-22 (लगभग 11 वर्ष) की अवधि को आधार मानें, तो : ज्वार में औसत वार्षिक सापेक्ष गिरावट लगभग 5.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष के आसपास अनुमानित की जा सकती है। बाजरा में यह दर लगभग 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष के आसपास रही तथा सोयाबीन में औसत वार्षिक सापेक्ष वृद्धि लगभग 3 प्रतिशत के आसपास रही।

6.3 Herfindahl फसल एकाग्रता सूचकांक विश्लेषण :

2010-11 के लिए : $H_{2010} = (0.138)^2+(0.096)^2+(0.197)^2+(0.298)^2 = 0.155$

2021-22 के लिए : $H_{2022} = (0.069)^2+(0.048)^2+(0.159)^2+(0.412)^2 = 0.208$

सूचकांक का 0.155 से बढ़कर 0.208 होना लगभग 34 प्रतिशत की सापेक्ष वृद्धि को दर्शाता है। Herfindahl सूचकांक का यह बढ़ना कृषि प्रणाली में उच्चतर एकाग्रता (concentration) और निम्नतर विविधता (diversification) का संकेत है।

6.4 परिकल्पनाओं का परीक्षण :

- **H_1**: परम्परागत फसलों के क्षेत्रफल में सांख्यिकीय रूप से गिरावट हुई है – आँकड़े इसे स्पष्ट रूप से पुष्ट करते हैं।
- **H_2**: फसल एकाग्रता सूचकांक में वृद्धि हुई है – Herfindahl मानों की वृद्धि इस परिकल्पना की पुष्टि करती है।

7. निष्कर्ष :

अध्ययन के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि महू तहसील में फसल प्रतिरूप का परिवर्तन केवल क्षेत्रफल के साधारण पुनर्वितरण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह कृषि प्रणाली के चरित्र में एक संरचनात्मक बदलाव को दर्शाता है। सोयाबीन आधारित विशेषीकरण ने किसानों को तुलनात्मक रूप से अधिक नकदी आय और बाजार से प्रत्यक्ष जुड़ाव का अवसर प्रदान किया है। इन्दौर मंडी क्षेत्र की निकटता तथा प्रसंस्करण अवसंरचना ने इस प्रवृत्ति को सुदृढ़ किया है। तथापि, फसल विविधता में कमी दीर्घकाल में पारिस्थितिक असंतुलन, मृदा पोषण ह्रास और भूजल दबाव जैसी चुनौतियाँ उत्पन्न कर सकती है। वर्षा-आश्रित एवं सीमांत क्षेत्रों में परम्परागत फसलों की आंशिक उपस्थिति यह संकेत देती है कि स्थानिक विषमता अब भी विद्यमान है, परंतु समग्र प्रवृत्ति विशेषीकरण की ओर है। ज्वार

एवं बाजरा में उल्लेखनीय गिरावट तथा सोयाबीन की निरंतर वृद्धि यह दर्शाती है कि कृषि प्रणाली विविधता से एकाग्रता की ओर अग्रसर हुई है। यह परिवर्तन सिंचाई विस्तार, बाजार एकीकरण और नीतिगत समर्थन से प्रेरित है। अतः महू तहसील का अनुभव यह इंगित करता है कि कृषि परिवर्तन को केवल आर्थिक उपलब्धि के रूप में नहीं, बल्कि संसाधन-आधारित भौगोलिक पुनर्संरचना के रूप में समझना आवश्यक है, जहाँ दीर्घकालीन स्थिरता हेतु संतुलित फसल विविधीकरण की पुनर्समीक्षा अपेक्षित है।

संदर्भ सूची :

- Bhalla, G. S., & Singh, G. (2009). *Economic liberalisation and Indian agriculture: A statewise analysis*. Economic and Political Weekly, 44(52), 34-44.
- Central Ground Water Board. (2022). *Groundwater yearbook - Madhya Pradesh (2021-22)*. Ministry of Jal Shakti, Government of India.
- India Meteorological Department. (2020). *Climatological tables (1981-2010 normals)*. Ministry of Earth Sciences, Government of India.
- Ministry of Agriculture & Farmers Welfare. (2022). *Agricultural statistics at a glance 2022*. Government of India.
- Ministry of Agriculture & Farmers Welfare. (Various years). *Land use statistics*. Government of India.
- National Bureau of Soil Survey & Land Use Planning (NBSS&LUP). (2018). *Soils of Madhya Pradesh for optimizing land use*. Indian Council of Agricultural Research.
- आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय, मध्य प्रदेश शासन. (विभिन्न वर्ष). *कृषि सांख्यिकी वार्षिकी*. भोपाल: मध्य प्रदेश शासन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 74-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

मधेशी क्षेत्र का भू-राजनीतिक महत्व : भारत नेपाल संबंधों के लिए रणनीतिक निहितार्थ

भव्या राय, शोधार्थी
डॉ. शक्ति जायसवाल, असिस्टेंट प्रोफेसर, शोध निर्देशक,
राजनीति विज्ञान विभाग, बुद्ध विद्यापीठ पीजी कॉलेज
(सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर)

सार :

मधेशी क्षेत्र, जिसे नेपाल के तराई के रूप में जाना जाता है, भारत और नेपाल के बीच एक समृद्ध भू–राजनीतिक सेतु है। 2011 की जनगणना में यह पाया गया कि तराई क्षेत्र में रहने वाली आबादी लगभग 1. 33 करोड़ थी, जो नेपाल की कुल जनसंख्या का आधा से अधिक है। 2021 के आंकड़ों में मधेश प्रदेश की कुल जनसंख्या 61,14,600 दर्ज की गई। यह क्षेत्र इंडो–गंगेटिक मैदान का विस्तार है और नेपाल का "अन्न भंडार" कहलाता है क्योंकि यहां साल में तीन फसलें उगाई जाती हैं, जिसमें चावल, गेहूं, मक्का और सब्जियां प्रमुख हैं। 2015.16 के आंदोलन और सीमा अवरोध ने नेपाल की अर्थव्यवस्था को लगभग 200 अरब नेपाली रुपये का नुकसान पहुंचाया और आठ मिलियन लोग गरीबी के जोखिम में आ गये। मधेश में बुनियादी ढांचे का विकास भारत की भागीदारी से हुआ है। मोतिहारी–अमलेखगंज पाइपलाइन नेपाल की लगभग 70% पेट्रोलियम मांग पूरी करती है। 2025 में बिरगंज में आयोजित आर्थिक साझेदारी सम्मेलन के अनुसार, नेपाल के कुल विदेशी व्यापार का 64.1% हिस्सा भारत के साथ है, और नेपाल की 67.9% निर्यात वस्तुएँ भारत को भेजी जाती हैं। भारत से लगभग 35% विदेशी निवेश आता है और ऊर्जा, रेल, पाइपलाइन व डिजिटल भुगतान परियोजनाओं में सहयोग बढ़ रहा है। खुली सीमा दोनों देशों के लोगों को जोड़ती है, लेकिन यह मानव तस्करी, मादक पदार्थों की तस्करी और अन्य आपराधिक गतिविधियों के लिए भी रास्ता खोलती है। शोध में सीमा पर बायोमेट्रिक प्रणाली, संयुक्त गश्त और स्थानीय क्षमता निर्माण का सुझाव दिया गया है। 2025 में नेपाल ने मानव तस्करी के विरुद्ध नई राष्ट्रीय नीति लागू की है। मधेशी क्षेत्र भारत–नेपाल संबंधों का केन्द्रबिन्दु है, इसकी संतुलित समृद्धि, सामाजिक न्याय और सुरक्षा के लिए दोनों देशों को समन्वित प्रयास करने होंगे।

मुख्य शब्द :

मधेशी क्षेत्र, तराई, नेपाल–भारत सीमा, अन्न भंडार, मोतिहारी–अमलेखगंज पाइपलाइन, जनकपुर–जयनगर रेल, सीमा सुरक्षा, आर्थिक सहयोग आदि।

परिचय :

नेपाल का मधेशी क्षेत्र जिसे तराई अथवा तराइ भी कहा जाता है, देश के दक्षिणी हिस्से में फैला हुआ उपजाऊ समतल भू.भाग है जो भारत के बिहार और उत्तर प्रदेश से सटा है। यह क्षेत्र नेपाल का प्रमुख आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक केंद्र है क्योंकि यहाँ जनसंख्या घनत्व सबसे अधिक है और भारतीय सीमा से जुड़ा खुला यातायात नेटवर्क मौजूद है। 2011 की जनगणना के अनुसार, तराई में रहने वाली आबादी करीब 1.33 करोड़ थी, जो नेपाल की कुल जनसंख्या का 50.27% है। 2021 के आंकड़ों में मधेश प्रदेश की कुल जनसंख्या 61,14,600 बताई गई जिसमें पुरुष 30,65,751 और महिलाएँ 30,48,849 थीं। इतना बड़ा आबादी–आधार, उपजाऊ भूमि और खुली सीमा इसे नेपाल और भारत के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बनाते हैं।

इस अध्ययन में मधेश क्षेत्र के भू.आर्थिक और सामाजिक महत्व, इससे संबंधित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, बुनियादी ढांचा विकास, सुरक्षा चुनौतियाँ तथा भारत–नेपाल संबंधों पर इसके निहितार्थों का विश्लेषण किया गया है।

ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि :

मधेशी समुदाय उन जातीय–भाषाई समूहों को संदर्भित करता है जो नेपाल के तराई में रहते हैं और संस्कृति व भाषा के मामले में भारतीय गंगा–मैदान के लोगों से गहरे जुड़े हुए हैं। नेपाल का सामाजिक–राजनीतिक ढाँचा लंबे समय तक पहाड़ी उच्च जाति समूहों के प्रभुत्व में था, पंचायत व्यवस्था ने इन समुदायों को विशेषाधिकार दिया जबकि मधेशियों को नागरिकता, जमीन स्वामित्व और सरकारी नौकरियों में भेदभाव झेलना पड़ा। इस असमानता के खिलाफ मधेशियों ने कई बार आंदोलन किये। 2007 और 2015 के जनआंदोलनों ने मधेश की राजनीतिक चेतना को संगठित किया, लेकिन 2015 के संविधान लागू होने के बाद भी मधेशी समुदायों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व, प्रदेश सीमांकन और नागरिकता कानून को लेकर असंतोष रहा।

2015–16 के मधेश आंदोलन के दौरान मधेशी और थारू समुदायों ने मुख्य सीमा नाका पर महीनों तक अवरोध रखा। एक शोध के अनुसार, इस अवरोध से नेपाल की अर्थव्यवस्था को 200 अरब नेपाली रुपये का नुकसान हुआ और 8 मिलियन लोगों के गरीबी रेखा से नीचे धकेले जाने का खतरा पैदा हुआ। तराई में स्थित अधिकांश उद्योग बंद हो गये, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि मधेश का अस्थिर होना पूरे देश के लिए कितनी बड़ी आर्थिक कीमत का कारण बन सकता है। यह घटना भारत–नेपाल संबंधों में तनाव का सबसे बड़ा कारक रही क्योंकि नेपाल ने इस अवरोध को भारत के "अनौपचारिक प्रतिबंध" के रूप में देखा जबकि भारत ने इसे नेपाल की आंतरिक राजनीति बताया।

सांस्कृतिक दृष्टि से, मधेश बहुभाषी और बहुजातीय समाज है। यहाँ मैथिली, भोजपुरी, अवधी, बज्जिका और उर्दू समेत कई भाषाएँ बोली जाती हैं। उपाध्याय, यादव और सिंह जैसे समान सरनामों, राम–जानकी विवाह परंपरा और कुश्ती–मेले जैसे सांस्कृतिक तत्वों ने नेपाल के तराई और भारत के मैदानी इलाकों के बीच गहरी सांस्कृतिक निकटता बनाई है। 1950 की शांति एवं मैत्री संधि दोनों देशों के नागरिकों को बिना वीजा के एक–दूसरे की भूमि में काम करने और बसने की अनुमति देती है। इसलिए मधेशी समाज की सामाजिक पहचान भारतीय समाज से अलग न होकर घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है, जो भारत–नेपाल सीमा की संवेदनशीलता को बढ़ा देती है।

आर्थिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक महत्त्व :

मधेश का सबसे बड़ा आकर्षण इसकी उपजाऊ इंडो–गंगेटिक समतल भूमि है जिसे नेपाल का "अन्न भंडार" कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) की एक विशेष रिपोर्ट के अनुसार, तराई नेपाल के भू–भाग का लगभग 14% है और यह इंडो–गंगेटिक मैदान का ही विस्तार है। यहाँ साल में तीन फसलें 'गर्मी में धान, सर्दी में गेहूँ या तेलहन और वसंत में मक्का या सब्जियाँ' उगाई जा सकती हैं। खेती–योग्य भूमि में अनाज फसलें करीब 70% क्षेत्र घेरती हैं लेकिन कृषि सकल घरेलू उत्पाद में उनका हिस्सा 40% है। इससे पता चलता है कि यद्यपि मधेश का कृषि उत्पादन विशाल है, फिर भी यहां कृषि मूल्य वृद्धि की सम्भावना मौजूद है। जनसंख्या घनत्व और साक्षरता भी महत्वपूर्ण कारक हैं। 2021 के आंकड़ों से पता चलता है कि मधेश में प्रति परिवार औसत 5.29 सदस्य हैं और लिंग अनुपात लगभग 100.55 है। साक्षरता दर 72% है लेकिन महिला साक्षरता केवल 55% के आसपास है, जो शिक्षा की लैंगिक असमानता को उजागर करती है। इन सामाजिक मानकों के बावजूद, मधेश आर्थिक रूप से भारत–नेपाल व्यापार का मुख्य केंद्र है और यहाँ से कम लागत पर श्रम उपलब्ध होता है।

सांस्कृतिक स्तर पर, मधेश धार्मिक पर्यटन के लिए भी महत्वपूर्ण है। जनकपुर में स्थित जानकी मंदिर (सीता का जन्म स्थान) हिन्दू श्रद्धालुओं को दोनों देशों से आकर्षित करता है। यहाँ मनाया जाने वाला विवाह पंचमी पर्व एवं अयोध्या–जनकपुर रामायण सर्किट पर्यटन को बढ़ावा देते हैं। फसल कटाई, छठ और ईद जैसे पर्व भी दोनों देशों के लोगों को जोड़ते हैं।

संपर्क और रणनीतिक परियोजनाएँ :

मधेश के भू–राजनीतिक महत्व का बड़ा कारण इसका परिवहन एवं बुनियादी ढाँचा है। भारत और नेपाल ने आपसी समझौते से कई सड़क, रेल और ऊर्जा परियोजनाएँ शुरू की हैं ताकि दोनों देशों के बीच व्यापार और आवागमन सुचारु हो सके। सबसे पहले, जनकपुर–जयनगर–कुर्था–बिजलपुरा रेल परियोजना का उल्लेख जरूरी है। भारत की इर्कॉन इंटरनेशनल द्वारा निर्मित 17 किलोमीटर लंबी इस रेल लाइन का संचालन 2023 में पुनः शुरू हुआ। 2002 की बाढ़ से नष्ट हुई यह लाइन 35 किलोमीटर लंबे जयनगर–जनकपुर–कुर्था सेक्शन के साथ मिलकर नेपाल को भारत के रेल नेटवर्क से जोड़ती है और इसे आगे बारदिबास तक बढ़ाने की योजना है। यह न केवल व्यापारिक माल ढुलाई में सुविधा देता है, बल्कि जनकपुर के धार्मिक पर्यटन को भी बढ़ावा देता है।

दूसरी बड़ी परियोजना काठमांडू–तराई/मधेश फास्ट ट्रैक है। 70.977 किलोमीटर लंबा यह एक्सप्रेसवे नेपाल सेना द्वारा बनाया जा रहा है और अक्टूबर 2025 तक इसकी शारीरिक प्रगति 43.6% तथा वित्तीय प्रगति 44.72% थी। यह राजमार्ग हिमालयी राजधानी काठमांडू को मधेश की समतल भूमि से सीधे जोड़ेगा, जिससे यात्रा समय और सैनिक–रसद ढुलाई में भारी कमी आएगी। हुलाकी सड़क (पोस्टल रोड) और पूर्व–पश्चिम राजमार्ग पहले से ही मधेश को पूर्वी नेपाल, पश्चिमी नेपाल तथा भारत से जोड़ते हैं। इन मार्गों से कृषि उत्पाद और औद्योगिक सामान आसानी से पहुँचते हैं, जिससे तराई का बाजार बिहार, उत्तर प्रदेश एवं बंगाल से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है।

ऊर्जा क्षेत्र में, 2019 में शुरू हुई मोतिहारी–अमलेखगंज बहुउद्देशीय पाइपलाइन नेपाल की ऊर्जा सुरक्षा के

लिए क्रांतिकारी रही है। 69.2 किमी लंबी इस पाइपलाइन से छह वर्षों में 6 करोड़ 34 लाख 92 हजार लीटर ईंधन की आपूर्ति हुई, जिसमें 6 करोड़ 14 लाख लीटर डीजल, 20 लाख 15 हजार लीटर पेट्रोल और 41 हजार लीटर केरोसीन शामिल हैं। यह नेपाल के कुल पेट्रोलियम उपभोग का लगभग 70% पूरा करती है। पाइपलाइन की दैनिक क्षमता 6,000 किलोलीटर है, और अब इसे अमलेखगंज से लोथर (चितवन) तक 62 किमी बढ़ाने का कार्य शुरू हो चुका है, जिसमें 11 हजार किलोलीटर पेट्रोल, 15,500 किलोलीटर डीजल, 800 किलोलीटर केरोसीन और 3,600 किलोलीटर विमान ईंधन भंडारण की व्यवस्था होगी।

विद्युत सेक्टर में 2025 में आयोजित संयुक्त तकनीकी टीम की बैठक में चमेळिया–जौलजीबी 220 केवी, निजगढ़–मोतिहारी 400 केवी और लमही–लखनऊ 400 केवी ट्रांसमिशन लाइनों के निर्माण पर सहमति हुई। इन परियोजनाओं की विस्तृत योजना 2027 तक तैयार करने और बनाने का लक्ष्य है। इसके अलावा धल्केबर–मुजफ्फरपुर लाइनों की पुनर्मूल्यांकन से यह पाया गया कि नेपाल अब 1,500 मेगावाट बिजली भारत को निर्यात और 1,400 मेगावाट आयात कर सकता है, जिससे यह हिमालयी देश क्षेत्रीय ऊर्जा बाजार से जुड़ सकेगा।

दूसरे चरण में अक्टूबर 2025 में इनरुवा–पूर्णिया (400 केवी) और लमकी–दोधरा–बरेली (400 केवी) लाइनों की संयुक्त कंपनी के गठन पर समझौता हुआ। यह कदम नेपाल की जलविद्युत क्षमता को भारत की ग्रिड से जोड़ने और दोनों देशों के बीच दीर्घकालिक विद्युत व्यापार को विस्तार देने के लिए लिया गया है।

भारत–नेपाल आर्थिक साझेदारी सम्मेलन 2025 (बिरगंज) ने दिखाया कि कैसे मधेश में व्यापार और निवेश बढ़ रहा है। सम्मेलन में वाणिज्य दूत देवी सहाय मीना ने भारत–नेपाल आर्थिक एवं व्यापारिक रिश्तों के महत्व पर बल दिया और कहा कि निवेश बढ़ाने से स्थानीय उद्योगों को फायदा होगा। इसी सम्मेलन में जानकारी दी गई कि 150 से अधिक भारतीय कंपनियाँ नेपाल में कार्यरत हैं, और भारत से आने वाला विदेशी निवेश 777 मिलियन डॉलर का लगभग 35% है।

व्यापार के क्षेत्र में मधेश अत्यंत महत्वपूर्ण है, नेपाल के कुल विदेशी व्यापार का 64.1% हिस्सा भारत के साथ है और नेपाल की 67.9% निर्यात वस्तुएँ भारत को जाती हैं। मुख्य आयात वस्तुओं में पेट्रोलियम, लौह व इस्पात, अनाज, वाहन और मशीनरी शामिल हैं। आर्थिक असंतुलन को कम करने के लिए दोनों देशों ने मधेश क्षेत्र में विशेष आर्थिक क्षेत्र, औद्योगिक कॉरिडोर और कृषि प्रसंस्करण पार्क स्थापित करने की चर्चा की है।

डिजिटल क्षेत्र में भी विकास हुआ है। भारत की यूपीआई (Unified Payments Interface) प्रणाली 1 मार्च 2024 से नेपाल में स्वीकार होने लगी। फोनपे (PhonePe) के जरिए भारतीय पर्यटक फोनपे QR कोड स्कैन कर सकने लगे, जो फोनपे भुगतान सेवा और भारत के NPCI International Payments की साझेदारी से संभव हुआ। यह डिजिटल एकीकरण दोनों देशों के उपभोक्ताओं, पर्यटकों और व्यापारियों के बीच नकद रहित लेनदेन को बढ़ावा देता है। इन सड़क, रेल, ऊर्जा और डिजिटल परियोजनाओं ने मधेश को न केवल नेपाल की अर्थव्यवस्था का केंद्र बनाया है बल्कि यह भारत और दक्षिण एशिया के लिए भी सामरिक गलियारा बन गया है।

खुली सीमा और सुरक्षा चुनौतियाँ :

भारत और नेपाल के बीच 1,751 किमी लंबी खुली सीमा है। 1950 की संधि के तहत दोनों देशों के नागरिक बिना वीजा के एक–दूसरे की भूमि में काम, व्यापार और आवास कर सकते हैं। यह नीति ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक–पारिवारिक संपर्क को आसान बनाती है, लेकिन इसके साथ सुरक्षा चुनौतियाँ भी आती हैं।

खुली सीमा से कानून व्यवस्था प्रभावित होती है क्योंकि मानव तस्करी, हथियार तस्करी, नकली मुद्रा, मादक पदार्थ और अन्य अवैध वस्तुओं का प्रवाह अक्सर इस क्षेत्र से होता है। मॉर्डन डिप्लोमेसी का एक लेख बताता है कि खुली सीमा पर अपराधी "नागरिकों की मुक्त आवाजाही" का लाभ उठाकर धन शोधन, मानव तस्करी और हथियार तस्करी करते हैं, और इसलिए भारत और नेपाल को संयुक्त सीमा प्रबंधन प्रणाली स्थापित करनी चाहिए। उसी लेख में सुझाव दिया गया है कि सीमा पर सेंसर, ड्रोन और बेहतर निगरानी तंत्र सहित इंटीग्रेटेड बॉर्डर मैनेजमेंट विकसित किया जाए।

त्रिभुवन विश्वविद्यालय के शोध में बताया गया है कि सीमा की लंबाई और निगरानी संसाधनों की कमी के कारण अपराधी इस क्षेत्र में मानव तस्करी, अवैध हथियारों और मादक पदार्थों के कारोबार को अंजाम देते हैं। शोध में यह सलाह दी गई है कि दोनों देशों को बायोमेट्रिक प्रवेश–निकास प्रणाली, बेहतर सूचना–साझाकरण, विशेष आर्थिक क्षेत्रों का विकास और सीमा पर डिजिटल व्यापार सुविधा को अपनाना चाहिए।

मानव तस्करी की गंभीरता को दर्शाता हुआ एक उदाहरण अक्तूबर 2025 का है, जब 7 से 14 वर्ष के 16 नेपाली बच्चों को भारत (मुंबई, नई दिल्ली और बिहार) से बचाकर उनके परिवारों तक पहुँचाया गया। बचाव कार्य में सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता के अनुसार, तस्कर मधेश के सीमावर्ती गांवों का प्रयोग कर महिलाएँ और बच्चे भारत भेज रहे हैं और हाल के वर्षों में ऐसे मामलों में तेजी आई है। इस तरह के मामलों से खुली सीमा की सुरक्षा चुनौती स्पष्ट होती है।

सरकार ने 2025 में राष्ट्रीय मानव तस्करी विरोधी नीति को मंजूरी दी, जिसमें पलेरमो प्रोटोकॉल के अनुरूप कानून संशोधन, साइबर–अपराध से निपटना, पीड़ित संरक्षण, डेटा संग्रह और NGOs के साथ साझेदारी जैसे उपाय शामिल हैं। हालांकि यह नीति सकारात्मक पहल है, लेकिन वास्तविक चुनौती इसका क्रियान्वयन और सीमावर्ती क्षेत्रों में सामुदायिक सहभागिता बढ़ाना होगा।

सीमा प्रबंधन में भारत के शस्त्र सीमा बल (SSB) और नेपाल के सशस्त्र प्रहरी बल (APF) की महत्वपूर्ण भूमिका है। IMPRI रिपोर्ट के अनुसार, दोनों देशों के बीच राजनीतिक, परिचालन और स्थानीय स्तर पर कई समन्वय तंत्र हैं, संयुक्त सचिव स्तर की वार्षिक बैठकें, सीमा शुल्क वार्ताएँ और कार्य समूहों की बैठकें। फिर भी स्थानीय क्षमताओं की कमी, संसाधनों की अनुपलब्धता और असंगत गुप्तचर साझाकरण जैसी चुनौतियाँ बनी रहती हैं। रिपोर्ट में सुझाव है कि संयुक्त सीमा गश्ती दल, ड्रोन निगरानी, स्थानीय समुदायों की भागीदारी और संयुक्त आपदा प्रबंधन अभ्यास को बढ़ाया जाए।

भारत–नेपाल सम्बन्धों पर प्रभाव और रणनीतिक निहितार्थ :

मधेशी क्षेत्र केवल भौगोलिक या आर्थिक महत्व ही नहीं रखता बल्कि यह भारत और नेपाल के संबंधों का तापमान भी निर्धारित करता है। 2015 के मधेश आंदोलन के दौरान जब नेपाल में संविधान को लेकर असंतोष फैला, तो भारत पर मधेशियों का समर्थन करने और अप्रकट तरीके से सीमा अवरोध लगाने का आरोप लगा। इससे दोनों देशों के रिश्तों में तल्खी आई, नेपाल में राष्ट्रवाद की भावना बढ़ी और चीन ने स्थिति का लाभ उठाकर नेपाल में अपनी आर्थिक मौजूदगी मजबूत की।

आज भारत–नेपाल संबंध बहुआयामी हैं 'इतिहास, संस्कृति, धर्म और अर्थव्यवस्था ने इनका आधार तैयार किया है। आर्थिक मोर्चे पर नेपाल अपनी वस्तुओं का सबसे बड़ा हिस्सा भारत को निर्यात करता है और अपनी

कुल आयात का बड़ा भाग भारत से करता है। पेट्रोलियम और ऊर्जा निर्भरता ने नेपाल को भारत के साथ विशेष रूप से जुड़ा हुआ बनाया है। इसी वजह से मोतिहारी–अमलेखगंज पाइपलाइन और नई बिजली लाइनों के निर्माण से भारत नेपाल का भरोसेमंद ऊर्जा साझेदार बन रहा है।

भारत की पड़ोसी नीति में हाल के वर्षों में परिवर्तन नजर आता है। चीन की बढ़ती मौजूदगी के मद्देनजर भारत ने नेपाल में बुनियादी ढाँचागत परियोजनाओं, जलविद्युत योजनाओं और डिजिटल भुगतान क्षेत्र में तेजी से निवेश बढ़ाया है। फुकट कर्णाली (480 मेगावाट), लोअर अरुण (669 मेगावाट) और अरुण–3 (900 मेगावाट) जैसी परियोजनाओं में भारतीय कंपनियाँ शामिल हैं, इनके पूरा होने पर नेपाल घरेलू उपयोग से अधिक विद्युत पैदा कर भारत और बांग्लादेश को निर्यात कर सकेगा।

राजनीतिक दृष्टि से मधेशी पार्टियों का प्रभाव नेपाल के गठबंधन तंत्र में बढ़ा है। वे संघीय व्यवस्था के ढांचे, नागरिकता कानून और संसाधन वितरण में अपने अधिकारों की मांग करती हैं। यदि भारत मधेशी दलों के साथ संवाद में संतुलन रखता है और नेपाल की संप्रभुता का सम्मान करता है तो यह कदम रिश्तों में विश्वास बढ़ा सकता है।

मधेश में सीमावर्ती जिलों को सामाजिक और आर्थिक अधिकार देने, स्थानीय रोजगार सृजन और सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण से भारत–विरोधी भावना कम हो सकती है। इसके विपरीत, कोई भी उपेक्षा या दखलंदाजी राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया को जन्म दे सकती है और चीन जैसे अन्य शक्तियों के लिए जगह बना सकती है।

निष्कर्ष और सिफारिशें :

मधेशी क्षेत्र नेपाल का आर्थिक इंजन, सामाजिक पिघलन–भट्टा और भारत–नेपाल संबंधों का सेतु है। इसकी उपजाऊ भूमि, विशाल जनसंख्या और सांस्कृतिक समरसता इसे दोनों देशों के लिए आशीर्वाद बनाते हैं। साथ ही यहाँ की राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक पिछड़ापन और सुरक्षा चुनौती बड़ी चिंता भी हैं। 2015 का मधेश आंदोलन दिखाता है कि यदि स्थानीय असंतोष को समय रहते नहीं सुना गया तो यह पूरे क्षेत्रीय व्यापार और कूटनीति को प्रभावित कर सकता है।

नीति निर्माताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे मधेशी समुदाय के इतिहास और आकांक्षाओं को समझते हुए समावेशी उपाय लागू करें। राजनीतिक प्रतिनिधित्व और नागरिकता संबंधी विवादों के निष्पक्ष समाधान से विश्वास बहाल होगा। समृद्धि की दृष्टि से, सड़क, रेल, पाइपलाइन और डिजिटल भुगतान की मौजूदा परियोजनाओं को समय पर पूरा करना, विशेष आर्थिक क्षेत्र विकसित करना और कृषि प्रसंस्करण व मध्यम उद्योगों को बढ़ावा देना जरूरी है। नेपाल को अपने कृषि उत्पादों में मूल्य संवर्धन करना चाहिए ताकि वह भारत पर केवल कच्चे माल के निर्यात तक सीमित न रहे।

सीमा सुरक्षा के लिए बायोमेट्रिक प्रविष्टि.निकास, ड्रोन निगरानी, साझा गश्ती दल और स्थानीय समुदायों की भागीदारी जरूरी है। मानव तस्करी और मादक पदार्थों के कारोबार से निपटने के लिए सामाजिक जागरूकता, मजबूत कानूनी ढांचा और सीमा–पार बचाव नेटवर्क स्थापित किए जाने चाहिए।

अंततः, भारत और नेपाल के लिए यह आवश्यक है कि वे मधेश को साझा अवसर की तरह देखें, न कि विवाद के स्रोत की तरह। यदि दोनों देश संवेदनशीलता, सम्मान और पारदर्शिता के साथ सहयोग करें, तो मधेशी क्षेत्र दक्षिण एशिया के लिए संपर्क, ऊर्जा एवं समृद्धि का केन्द्र बन सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. कुमार, शैलेन्द्र (2020), माधेसीज एंड इंडियाज फॉरेन पॉलिसी विद नेपाल, अलोचना चक्र जर्नल, 9(6), 69–79।
2. राय, निनी रेम रुमदाली (2024), नेपाल–इंडिया ओपन बॉर्डर : एन ओवरव्यू, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज सोशल साइंस एंड मैनेजमेंट, 4(6), 519–526।
3. साहू, निखिल (2025), 75 इयर्स ऑफ द इंडिया–नेपाल फ्रेंडशिप ट्रीटी : ए टाइम–टेस्टेड बॉन्ड ऑर ए रेलिक ऑफ द पास्ट?, नैटस्ट्रैट।
4. झा, हरि बंश (2014), माधेसी प्रॉब्लम इन नेपाल : इम्प्लिकेशन्स फॉर इंडिया, इंस्टीट्यूट फॉर डिफेंस स्टडीज एंड एनालिसिस, नई दिल्ली।
5. रोज, लियो ई. (1971), नेपाल : स्ट्रेटेजी फॉर सर्वाइवल, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
6. कोइराला, युवराज (2008), माधेसी अपराइजिंग एंड द रीस्ट्रक्चरिंग ऑफ द नेपाली स्टेट, मार्टिन चौतारी, काठमांडू।
7. पंत, हर्ष वी. (2012), इंडियाज फॉरेन पॉलिसी इन ए यूनिपोलर वर्ल्ड, रूटलेज।
8. बराल, लोकराज (2012), नेपाल–इंडिया रिलेशन्स : हिस्टोरिकल, कल्चरल एंड पॉलिटिकल पर्सपेक्टिव्स, एड्रॉयट पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
9. बनर्जी, संजय (2010), इंडिया–नेपाल रिलेशन्स : सिक्योरिटी एंड स्ट्रेटेजिक इश्यूज, लांसर पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
10. शर्मा, बी. पी. (2015), जियोपॉलिटिक्स ऑफ नेपालः रीजनल डायनेमिक्स एंड स्ट्रेटेजिक चौलेंजेज, काठमांडू यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. पांडे, निश्चलनाथ (2017), नेपाल–इंडिया ओपन बॉर्डर : प्रॉब्लम्स एंड प्रोस्पेक्ट्स, बी. आर. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली।
12. जोशी, भूवन लाल (2001), नेपाल्स फॉरेन पॉलिसी : शेपिंग द नेशन, हिमालयन बुक्स, काठमांडू।
13. भट्टाराई, बाबूराम (2003), द नेचर ऑफ अंडरडेवलपमेंट एंड रीजनल स्ट्रक्चर ऑफ नेपाल, एड्रॉयट पब्लिशर्स।
14. उप्रेती, बी. सी. (2009), नेपाल इन ट्रांजिशन : फ्रॉम पीपुल्स वॉर टू फ्रैजाइल पीस, एड्रॉयट पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
15. झा, प्रशांत (2014), बैटल्स ऑफ द न्यू रिपब्लिक : ए कंटेम्परारी हिस्ट्री ऑफ नेपाल, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
16. दीक्षित, कनक मणि (2011), नेपाल इन ट्रांजिशन, हिमाल बुक्स, काठमांडू।
17. थापा, दीपक (2012), अंडरस्टैंडिंग द माओवादी मूवमेंट ऑफ नेपाल, रूटलेज।
18. नेपाल सरकार (2021), इकोनॉमिक सर्वे ऑफ नेपाल, मिनिस्ट्री ऑफ फाइनेंस, काठमांडू।
19. भारत सरकार, विदेश मंत्रालय (2023), इंडिया–नेपाल बाइलेटरल रिलेशन्स, मिनिस्ट्री ऑफ एक्सटर्नल अफेयर्स, नई दिल्ली।
20. वर्ल्ड बैंक (2022), नेपाल डेवलपमेंट अपडेट, वर्ल्ड बैंक पब्लिकेशन्स।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 81-89

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

EPISTEMOLOGY OF SANKHYA PHILOSOPHY

Dr. Sakshi

Assistant Prof., B.K. College of Education, Bawani Khera.

Abstract :

Sankhya philosophy, one of the six principal schools of classical Indian philosophy, is traditionally attributed to the sage Kapila, believed to have lived around the 6th century BCE. The term "Sankhya" originates from the Sanskrit word "Sankhya," meaning "number" or "count." This philosophy asserts that the universe comprises two primary entities: purusha (consciousness) and prakriti (matter). Purusha represents the eternal, unchanging consciousness, while prakriti denotes the mutable material world. According to Sankhya, the ultimate goal of human existence is to achieve liberation from the cycle of birth and death by discerning the true nature of purusha and prakriti. This is accomplished through self-realization via yoga, meditation, and the pursuit of knowledge and wisdom. Sankhya has profoundly influenced Indian thought, significantly shaping other philosophical schools such as Yoga and Vedanta. Its principles have also impacted various other fields, including medicine, Ayurveda, and psychology.

Keywords : Purusha, Prakriti, Eternal, Self-realization, Liberation, Schools of Philosophy, Sankhya Philosophy.

Introduction :

Sankhya philosophy is among the most ancient and significant philosophical systems within Hinduism. It is a dualistic school that aims to systematically explain the nature of the universe and the individual soul. The term "Sankhya" derives from the Sanskrit "Samkhya," meaning "enumeration" or "calculation." In Sankhya, the material universe and individual existence are meticulously categorized to understand their fundamental principles.

Wisdom : According to Sankhya philosophy, there are two fundamental realities in the universe :

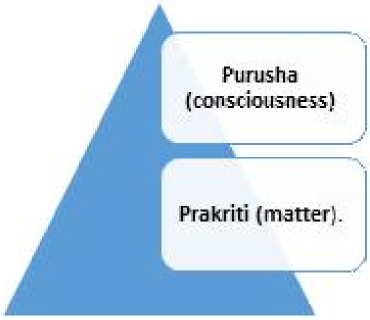

Purusha is understood as pure consciousness or spirit, characterized by its eternal, unchanging nature, and it exists beyond the bounds of sensory experience. In contrast, Prakriti represents the material world, consisting of three fundamental qualities or gunas: Sattva (purity), Rajas (activity), and Tamas (inertia).

Sankhya philosophy explains creation as the interaction between Purusha and Prakriti. When Purusha engages with Prakriti, the material universe comes into being. The individual soul, or Jivatma, mirrors Purusha and becomes linked to Prakriti through its association with the physical body. The primary aim of Sankhya philosophy is to achieve Moksha, or liberation, from the cycle of birth and death by discerning the true nature of Purusha and Prakriti. By cultivating knowledge and practicing discernment, the individual soul can disentangle itself from the material world and align with Purusha, thereby attaining freedom from suffering and achieving lasting peace and happiness.

Epistemologically, Sankhya philosophy is realistic, but metaphysically, it is dualistic. It posits that both spirit and matter are eternal and without cause. Prakriti, or matter, is defined by three inherent qualities :

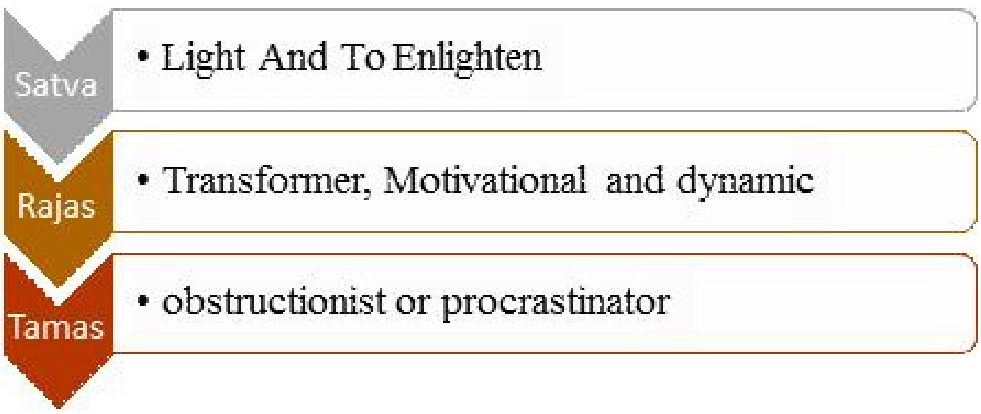

Sankhya : According to Sankhya, the material universe is created when the manifest Prakriti comes into contact with Purusha, and the interaction of these two creates the 25 tattvas. The ultimate goal of Sankhya is to achieve liberation or moksha, which is attained by discriminating between Purusha and Prakriti and realizing the true nature of the self as pure consciousness. In Sankhya, there are 25 tattvas or elements that make up the universe, including :

1. **Prakriti -** The material world, which includes all matter, energy, and physical phenomena.
2. **Ahankara -** The ego or the sense of individuality, which arises from the interaction of the mind and senses.
3. **Manas -** The mind, which is responsible for perception, thought, and emotion.
4. **Buddhi -** The intellect, which is responsible for discrimination and decision-making.
5. **Purusha -** Pure consciousness or spirit, the unchanging and eternal aspect of existence. It is made of Manas and Ahankara.
6. **Five Tanmatras -** Subtle elements of matter that are the basis of the five senses: sound, touch, sight, taste, and smell.
7. **Five Mahabhutas -** Gross elements of matter: earth, water, fire, air, and sky.
8. **Five Karma-Indriyas -** The organs of action: hands, feet, speech, excretion, and procreation.
9. **Five Jnana-Indriyas -** The organs of knowledge: ears, skin, eyes, tongue, and nose.

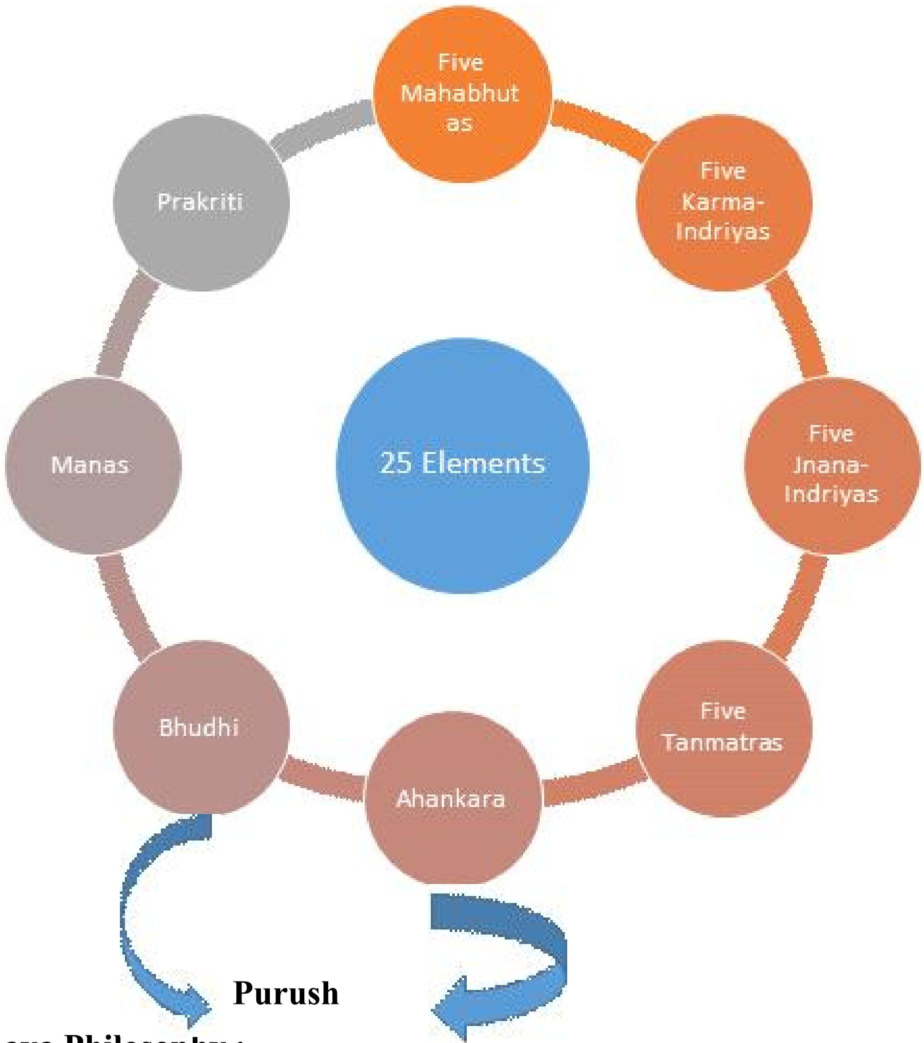

Principle of Sankhaya Philosophy :

The goal of Sankhya darshan is to relieve the sufferings of three parties.

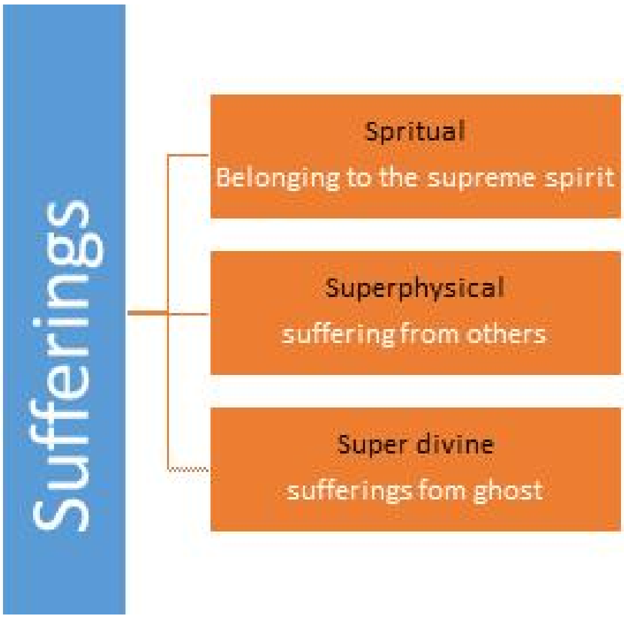

According to Sankhya philosophy, dukha (suffering or pain) is caused by attachment to the material world and identification with the ego or false self. Therefore, to avoid dukha, one must cultivate detachment from the material world and realize the true nature of the self.

Here are some ways to avoid dukha based on Sankhya philosophy :

1. **Practice self-awareness :** Sankhya philosophy emphasizes the importance of self-knowledge (Jnana). By practicing self-awareness, one can understand the true nature of the self and cultivate detachment from the material world.
2. **Cultivate detachment :** By understanding that the material world is impermanent and constantly changing, one can cultivate detachment from it. This detachment can help one avoid attachment to things and people, which can lead to dukha.
3. **Practice meditation :** Meditation can help calm the mind and reduce the influence of the ego or false self. By focusing the mind on the true self or Purusha, one can cultivate detachment and avoid dukha.
4. **Live a simple life :** Sankhya philosophy encourages a simple and balanced lifestyle, with minimal attachment to material possessions and desires. By living a simple life, one can avoid the suffering caused by the pursuit of material wealth and pleasures.
5. **Serve others :** By serving others selflessly, one can cultivate detachment from the ego or false self and develop compassion for others. This can help one avoid dukha caused by selfish desires and attachment to the ego.

Curriculum according to Sankhaya Philosophy :

Sankhya is one of the six classical schools of Indian philosophy, which offers a comprehensive

framework for understanding the nature of reality and the human experience. While Sankhya philosophy provides a specific curriculum for different stages of development according to their ages, it offers insights into the nature of the self, consciousness, and the stages of development that can inform educational practices.Three points should be kept in mind in the formation of curriculum :

- To make students familiar with the ultimate truth and to make them practice to attain it.
- To develop and to make mature the mental abilities of the students.
- To develop the mental and physical abilities for the practical liveliness.

Infancy stage : According to Sankhya philosophy, each individual has a distinct self, known as the purusha, which is eternal, unchanging, and separate from the material world. The material world is made up of three basic elements or gunas: sattva (purity, clarity), rajas (activity, passion), and tamas (inertia, darkness). These gunas are present in varying degrees in all things, including human beings. While there is no specific curriculum for infancy in Sankhya philosophy, the emphasis on holistic development and the cultivation of higher consciousness can inform early childhood education practices. This may include providing a nurturing environment that supports physical, emotional, and cognitive development, as well as opportunities for spiritual growth and the exploration of the self.

Childhhod Stage : In this age group, languages, Math. History, geography, sociology and science subjects should be included in the curriculum which are useful for the adjustment of prakriti and purush. According to Sankhya philosophy, childhood education should focus on the cultivation of the higher koshas, particularly the vijnanamaya kosha and the anandamaya kosha. This involves providing opportunities for intellectual development, self-realization, and spiritual growth. Education should be holistic, supporting physical, emotional, and cognitive development, and include the exploration of the self.

Adolescent Stage : In terms of education and curriculum for adolescents, Sankhya philosophy emphasizes the importance of developing a strong foundation of knowledge and skills that will help individuals achieve their goals in life. This includes not only academic knowledge but also practical skills and moral values. In this age level, students are filled with maturity in thoughts, so descriptive and reasoning based subjects should be taught to children.

According to Sankhya philosophy, the curriculum for adolescents should focus on three areas:

1. **Intellectual development -** This includes the study of various subjects such as mathematics, science, philosophy, and literature. The goal is to develop critical thinking skills and a deep understanding of the nature of reality.
2. **Practical skills -** In addition to academic knowledge, the curriculum should also include training in practical skills such as cooking, carpentry, and other life skills that will help individuals

lead a self-sufficient life.

3. **Moral and spiritual development -** Sankhya philosophy places a strong emphasis on moral and spiritual development. The curriculum should include teachings on ethics, values, and spirituality to help adolescents develop a strong sense of purpose and meaning in life.

Overall, the curriculum for adolescents according to Sankhya philosophy should be designed to provide a holistic education that nurtures the physical, intellectual, and spiritual aspects of the individual.

Role of a Teacher :

According to Sankhya philosophy, a teacher is considered to be a highly respected and important figure in society as they play a crucial role in the education and development of individuals. The teacher is seen as a mentor, guide, and role model who not only imparts knowledge but also helps students develop a strong sense of ethics, values, and character.

In Sankhya philosophy, the teacher is expected to possess certain qualities and characteristics that enable them to fulfill their role effectively. These include :

1. **Knowledge -** The teacher should have a deep understanding of the subject matter they are teaching and should be able to convey it to students in a clear and concise manner.
2. **Wisdom -** In addition to knowledge, the teacher should also possess wisdom and discernment, which enables them to guide students in making wise decisions and discerning the truth.
3. **Empathy -** The teacher should be empathetic and understanding towards their students' needs, concerns, and struggles, and be able to create a supportive and nurturing learning environment.
4. **Moral values -** The teacher should be a model of good moral values and ethical conduct, and inspire students to develop similar values and character traits.
5. **Humility -** The teacher should possess a humble attitude, be willing to learn from their students, and acknowledge their own limitations and shortcomings.

Overall, the teacher in Sankhya philosophy is seen as a vital figure in shaping the development of individuals and society as a whole, and is expected to fulfill their role with integrity, wisdom, and compassion.

Method of Teaching :

The Sankhya philosophy emphasizes a holistic approach to education, which includes the development of intellectual, moral, and spiritual faculties. Therefore, the method of teaching according to Sankhya philosophy is designed to nurture the whole individual, not just their intellectual abilities.

Some of the key principles of teaching according to Sankhya philosophy include :

1. **Personalization :** The teacher should take a personalized approach to teaching, recognizing

that each student has unique abilities, interests, and learning styles. The teacher should tailor their teaching approach to the individual needs of each student.

2. **Interactive learning :** The teacher should encourage interactive learning, which involves students actively engaging with the material and each other. This can include group discussions, debates, and projects that require students to work together to solve problems.

3. **Integration of theory and practice :** The teacher should integrate theory and practice, helping students see the practical applications of what they are learning. This can involve hands-on learning experiences, field trips, and other opportunities for students to apply what they have learned in real-life situations.

4. **Development of moral values :** The teacher should help students develop moral values, including integrity, compassion, and respect for others. This can be done through modeling good behavior, incorporating ethics and values into the curriculum, and encouraging students to practice these values in their daily lives.

5. **Spiritual development :** The teacher should also help students develop their spiritual faculties, recognizing that the pursuit of knowledge and wisdom is closely linked to the pursuit of spiritual growth. This can involve teachings on mindfulness, meditation, and other practices that promote inner peace and well-being.

Overall, the method of teaching according to Sankhya philosophy is focused on nurturing the whole individual, helping students develop their intellectual, moral, and spiritual faculties in a supportive and interactive learning environment.

Students' Discipline :

According to Sankhya philosophy, student discipline is based on the concept of self-discipline, which is seen as a key aspect of personal growth and development. The philosophy recognizes that students need to be disciplined in order to develop the qualities necessary for success, both in academic pursuits and in life. Sankhya philosophy believes in the methods of discipline followed by yoga that are given below :

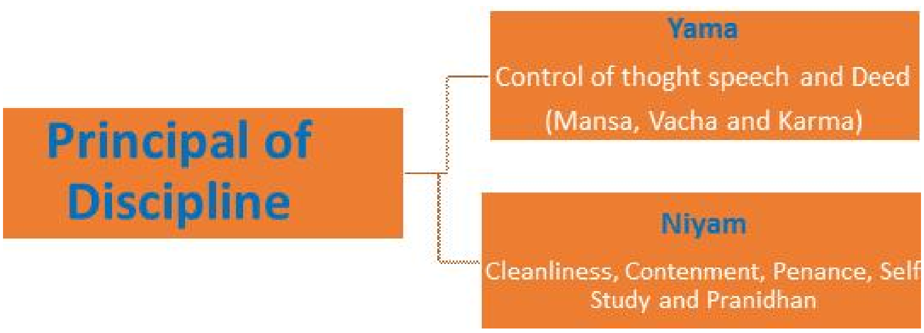

Sankhaya Philosophy believes that without following these rules no one can be pure and healthy in thought, speech and deed.

The School :

According to Sankhya philosophy, the ideal school should be one that focuses on imparting knowledge of the self, which is known as Atma Vidya. The goal of education is to help individuals realize their true nature and achieve liberation from the cycle of birth and death. Therefore, the ideal school in Sankhya philosophy should provide education that emphasizes the study of scriptures and philosophical texts, as well as the practice of meditation and self-reflection. The curriculum should focus on Para Vidya, which pertains to the knowledge of the self and is considered the highest form of knowledge. The school should also create an environment that encourages students to develop virtues such as compassion, self-discipline, and a sense of service to others. These qualities are seen as essential for spiritual development and are considered important for leading a fulfilling life.

Overall, the ideal school in Sankhya philosophy would be one that fosters the spiritual growth and development of its students by imparting knowledge of the self and promoting virtuous behavior and it can be in the form of Gurukul.

Educational Importance :

Sankhya philosophy has significant educational importance as it provides a comprehensive and holistic approach to education. It emphasizes the importance of knowledge of the self, which is essential for spiritual growth and personal development.

The educational importance of Sankhya philosophy can be summarized as follows :

1. **Emphasis on self-knowledge :** Sankhya philosophy recognizes that true knowledge and fulfillment can only be attained through an understanding of the self. Therefore, education should focus on imparting knowledge of the self, which is known as Atma Vidya.
2. **Holistic approach :** Sankhya philosophy recognizes that individuals are made up of both a material body and a spiritual essence. Therefore, education should address both the material and spiritual aspects of human life, promoting the development of the whole person.
3. **Focus on higher knowledge :** Sankhya philosophy distinguishes between Para Vidya, which pertains to the knowledge of the self, and Apara Vidya, which pertains to knowledge related to the material world. Education should prioritize the study and cultivation of Para Vidya, which is considered the highest form of knowledge.
4. **Importance of virtues :** Sankhya philosophy recognizes the importance of developing virtues such as compassion, self-discipline, and a sense of service to others. Education should promote the cultivation of these virtues, which are essential for leading a fulfilling life.
5. **Spiritual liberation :** Sankhya philosophy recognizes that the ultimate goal of human life is spiritual liberation. Education should help individuals achieve this goal by providing the knowledge

and tools necessary for spiritual growth and development.

Conclusion :

Sankhya is one of the six orthodox schools of Hindu philosophy, which proposes a dualistic metaphysical framework to understand the nature of reality Sankhya philosophy provides a comprehensive account of the human condition and offers a systematic analysis of the constituents of the material universe, the nature of consciousness, and the process of liberation from suffering. It presents a scientific approach to the study of the world and the self, emphasizing the importance of objective observation and analysis. Furthermore, Sankhya philosophy has contributed significantly to the development of Indian philosophical thought and has influenced other schools of Hindu philosophy, such as Yoga, Vedanta, and Nyaya.

In conclusion, Sankhya philosophy offers a unique perspective on the nature of reality and the human condition, emphasizing the importance of self-realization and liberation from suffering. Its insights continue to be relevant and valuable for individuals seeking to understand themselves and the world around them. In nutshell we can conclude that Sankhaya Philosophy is very useful philosophy which is also valid in today's scientific era.

References :

1. Ballantyne, J. R. (1885). The Sankhya Aphorisms of Kapila. Trübner & Co.
2. Dasgupta, S. (1922). The Sankhya System: A Critical Study of Its Philosophy and Literature. Motilal Banarsidass.
3. Isvarakrsna. (1996). The Sankhya Karika (G. Jha, Trans.). Cosmo Publications. (Original work published ca. 3rd century CE).
4. Keith, A. B. (1918). The Sankhya Philosophy: A Critical and Comparative Study. Oxford University Press.
5. Larson, G. J. (1969). Sankhya: A Dualist Tradition in Indian Philosophy. Princeton University Press.
6. Singh, S. P. (1987). Sankhya Philosophy: A Comprehensive Study. South Asia Books.
7. Vatsyayan, K. (2001). Sankhya and Science: Applications of Vedic Philosophy to Modern Science. DK Printworld.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 90-94

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

आदिवासी समाज का सांस्कृतिक अध्ययन : बांसवाड़ा क्षेत्र के संदर्भ में

गायत्री निगम
शोध छात्रा, गोविन्द गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा, राजस्थान।

शोध सार –

जनजातीय समाज सरल स्वभाव की श्रेणी में आते हैं। अतः इनमें वे सभी विशेषताएं पायी जाती हैं जो एक सरल समाज में पायी जाती हैं। जनजातीय समाज कम विभेदीकृत होते हैं इनमें परम्परा एवं रूढ़िवादिता का बोल–बाला होता है तथा धर्म की प्रधानता होती है। आकार की दृष्टि में ये छोटे होते हैं जिनमें वैयक्तिक सम्बन्धों की प्रधानता होती है ये समष्टिवादी होते हैं। गतिशीलता का अभाव पाया जाता है तथा भिन्नता के स्थान पर समानताएं अधिक पायी जाती हैं। इनमें प्राथमिक समूह की प्रधानता होती है और सामाजिक नियन्त्रण के लिए अनौपचारिक साधनों जैसे प्रथा परम्परा, जनजाति, नैतिकता तथा धर्म का प्रयोग अधिक प्रचलित है। जनजातीय समाज एक जनजाति एक निश्चित भू–भाग में ही निवास करती है। प्रत्येक जनजाति का कोई नाम अवश्य होता है जिसके द्वारा वह पहचानी जाती है। उसके सदस्य अपना परिचय जनजाति के नाम के आधार पर ही देते हैं। एक जनजाति अपनी सभी आर्थिक आवश्यकताओं को स्वंय ही पूरा कर लेने में सक्षम होती है। शिकार, फल–फूल एकत्रित करने, पशुचारण, कृषि एवं गृह उद्योग, आदि के द्वारा अपनी आवश्यकता की वस्तुएं जनजाति के सदस्य स्वयं ही जुटा लेते है। यद्यपि कभी–कभी वह अपने पड़ोसी समाजों से भी विनिमय करते हैं।

बीज शब्द – भील, जनजाति, संस्कृति, बांसवाड़ा, आदिवासी, रीति–रिवाज।

प्रस्तावना –

भारतीय जनजातियों के सन्दर्भ में हमें स्पष्टतः समझ लेना चाहिए कि इनसे सम्बन्धित लोग शेष भारतीयों से किसी भी रूप में अलग नहीं हैं। ये भारत के अन्य लोगों से पृथक नहीं माने जा सकते। ये भारतीय समाज के ही अभिन्न अंग हैं। अन्तर केवल इतना है कि भौगोलिक पृथककरण और सामाजिक पिछड़ेपन के कारण ये लोग शेष भारतीयों की तुलना में कम विकसित रह गए। भारतीय जनजातीय लोग अन्य भारतीयों के साथ हजारों वर्षों से भारत में एक साथ रह रहे हैं। यहां हमें इस बात को भी भली–भांति समझ लेना चाहिए कि भारतीय जनजातियों में यहां के मुख्य धर्म (हिन्दू धर्म) का प्रारम्भिक रूप ही प्रचलित रहा है। इसके अतिरिक्त भारत की उतर, दक्षिण, पूर्वोतर क्षेत्र की हिन्दू तथा जनजातीय प्रजातियां एक ही हैं। उनमें किसी प्रकार का कोई प्राजातीय अन्तर नहीं है। अंग्रेजों के शासनकाल में जनजातीय लोगों को हिन्दू और मुसलमान जनसंख्या से अलग दर्शाने

की कोशिश की गई। इसके पीछे मूल कारण यह था कि कुछ विदेशी विद्वान भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखने में रूचि नहीं रखते थे। महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और जवाहरलाल नेहरू ने तो स्पष्ट शब्दों में कई बार कहा है कि अंग्रेज अपनी सोची समझी नीति के तहत भारतीय जनजातियों को अलग–थलग रखने का पूरा प्रयास करते रहे हैं ताकि स्वतन्त्रता की चेतना या ज्योति उन तक नहीं पहुंच पाए। दक्षिणी अरावली प्रदेश में स्थिति बांसवाड़ा जिला है। ''बांसवाड़ा के उत्तर में प्रतापगढ़, पूर्व में रतलाम है। पश्चिम में डूंगरपुर तथा दक्षिण में झालोद है।''[1] यहाँ आने के लिए यातायात के साधन के तौर पर बसें है। ट्रेन का मार्ग अभी तक नहीं हुआ है। आदिवासी समाज की संस्कृति एवं धार्मिक मान्यताएँ केवल उनके जीवन के नियमित आयोजनों या परम्परागत रीति–रिवाजों तक सीमित नहीं है, यह उनके जीवन मूल्य के साथ जुड़े है।

'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग–पूर्वक 'कृ' धातु से निष्पन्न होता है। यह परिष्कृत अथवा परिमार्जित करने के भाव का सूचक है। 'संस्कृति' शब्द मनुष्य की सहज प्रवृतियों, नैसर्गिक शक्तियों तथा उनके परिष्कार का द्योतक है। व्यक्ति की मानसिक तथा बौद्धिक गतिविधियों, समाज के आचार–विचार, उन्नति–अवनति, रीति–रिवाज, धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक अवस्थाओं और परंपराओं का परिचायक है।[2]

बांसवाड़ा के आदिवासी परिवार के विभिन्न कार्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण सार्वभौमिक इकाई है। वर्तमान में वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं अन्य परिवर्तनकारी शक्तियों के संयुक्त प्रभाव के कारण परिवार के कार्यों में बहुत परिवर्तन हुआ है। अनेक ऐसी संस्थाएं एवं समितियां बन गयी हैं जो परिवार के कार्यों को छीन रही हैं। डेबिस का मत है कि परिवार द्वारा चार कार्य प्रमुख रूप से किये जाते हैं जो अन्य समितियों द्वारा नहीं किये जाते हैं। ये कार्य हैं प्रजनन, व्यक्ति का समाज में स्थान निर्धारण करना, समाजीकरण करना एवं शिक्षा प्रदान करना। कुछ विद्वानों ने स्थान निर्धारण के स्थान पर आर्थिक कार्यों को महत्वपूर्ण माना है।

आदिवासी लोगों की संस्कृति भारतीय लोक संस्कृति का ही अभिन्न अंग है। इसके अन्तर्गत उन सभी परम्पराओं, शिल्पों को लिया जाना चाहिए जो अनुकरण से सीखे जाते है। आदिवासी संस्कृति की परिधि के अन्तर्गत आदिवासी मिथक एवं लोककथायें, गीत, संगीत नृत्य, धार्मिक विश्वास, उत्सव अलंकरण एवं सौन्दर्याभिव्यक्ति सभी शामिल किये जाते है। डॉ. शिव कुमार तिवारी लिखते है कि– ''आदिवासियों में धार्मिक विश्वास, अर्थव्यवस्था, सामाजिक आचार एवं सांस्कृतिक अभिव्यंजना की विभाजन रेखायें खींचना कठिन है। उनके जीवन में सभी तत्व आपस में घुले मिले रहते है।''[3]

आदिवासी समाज में सोलह संस्कारों में से निम्न संस्कारों की अनुपालना की जाती है। सीमन्नतोन्यन संस्कार, जातकर्म संस्कार, नामकरण संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार चूड़ाकर्म संस्कार, कर्ण भेद संस्कार, विवाह संस्कार एवं अन्त्येष्टि संस्कार। संस्कारों के दो प्रयोजन माने जाते हैं एक अन्धविश्वास को दूर करना और दूसरा है सुसंस्कारों का जीवन में प्रभाव डालना। भील जनजाति एवं पटेल समाज में गर्भवती महिला के गर्भ धारण करने के बाद सातवें मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार किया जाता है इसमें गर्भवती महिला को नवीन पोशाक घाघरा, चुनरी आदि दिये जाते है। आभूषण पहनाये जाते हैं, उसे सजाया संवारा जाता है बाजे बजाये एवं गीत गाये जाते हैं। गीतों में गर्भवती स्त्री को शिक्षा दी जाती है। भीलों के सांस्कृतिक जीवन में उत्सव, हाट, मेले और त्यौहारों से सम्बन्धित गीतों में आदिवासी संस्कृति की बांकी झांकी देखने को मिलती है। इससे यह प्रतीत होता है कि

यह अपनी संस्कृति के प्रति कितने दृढ़ संकल्पित है। यहाँ की अन्य जातियों और धर्मों के लोगों में भी गीतों का प्रचलन है जो समय–समय पर गाये जाते है। भीलों की जाति में कई गोत्र होते है, जिसमें मुख्यतया डामोर, कटारा, कलासुआ, बामणिया, पारगी, भगोरा, वढेरा, दायमा, डिंडोर, रोत, मकवाना, पाण्डोर, डॉबी, परमार, खडियां हरमोर, बारियां, आमलिया, खराडी बराण्डा, भाभोर, डांगी, निनामा, अहारी, मईडा, बरजोड, बुझ, गुदा, मसार, डोडियार, गरासिया, सिघांडा, रावत, चरपोटा आदि शामिल है।

भील मीणा के अलावा वागड़ में ब्राह्मण, जैन, पंचाल, लबाना, स्वर्णकार, चौहान, दर्जी, नाई, भोई, यादव, मुसलमान, ब्राह्मण, सिक्ख, ईसाई जाति के लोग भी वर्षो से यहाँ बसे हुए हैं।

आवास व्यवस्था –

वागड़ के शहरी एवं नगरीय क्षेत्र में प्राचीन काल से महल हवेली देखने को मिलते हैं। वर्तमान में भी नवीन तकनीकी के अनुसार मकान बनाये जा रहे है। लेकिन यहाँ के ग्रामीण क्षेत्र में जंगलों से प्राप्त लकड़ी और मिट्टी से बने मकान देखने को मिलते हैं। वागड़वासी लोग अधिकतर कच्चे मकानों में रहते है, इन्हें वागडी में **'टापरा'**[4] कहते है। ''बहुधा इनकी बस्तियाँ पहाड़ी ढालों पर बिखरी होती हैं। मकान कच्चे होते है। घर के चारों ओर कॉटों की बाड़ बना लेते है जो मुख्यता रक्षा के लिए बनाई जाती है। आठ दस मकान का समूह फला कहलाता है और चार छह फले मिलकर पाल कहलाते है।''[5]

भाषा –

एक जनजाति के लोग अपने विचारों का आदान प्रदान करने के लिए एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते है। बांसवाड़ा क्षेत्र में वागड़ी भाषा बोली जाती है। जनजाति के लोग भाषा के माध्यम से वह अपनी संस्कृति का हस्तान्तरण कर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को करते है। किन्तु आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क के आने के कारण ये जनजाति द्विभाषी हो गयी हैं।

मनोरंजन के साधन –

आदमी अपने काम के साथ भी गाता गुनगुनाता आया है। कुम्हार यदि अधन से मटके को बजाता है तो धोबी कपड़े धोने की आवाज पर गाता है। साधु यदि चिमटे को बजाते हैं तो भिखारी लकड़ी की टिपरियों पर ही गाकर अपना काम चला लेते हैं। स्त्रियाँ यदि चक्की के स्वर पर गाती हैं तो दही पिलोने वाली दही के साथ कुछ गीत की कड़ियां भी बिलौती आई है। जब कोई गाड़ीवान निर्जन एकान्त में घिर जाता है तो यह बैलों के गले से बँधी घण्टियों के स्वर के साथ ही अपने मन के स्वर साधता आता है।''[6] बाँसवाड़ा जनजातियों में बजाये जाने वाले प्रमुख वाद्य यन्त्र– 'तम्बूरा, एक तारा, डूचका, केनरा, अलगोजा, शहनाई, सिंगी, बीन, शंख, ढोल, नगाड़ा, तासे, कौड़ी, धण्टा, डूचका, थाली, करताल, झांझ, चिमटा, करगज'[7] आदि प्रमुख है। आज के आधुनिक परिवेश में बढ़ती चकाचौध ने इनको भी प्रभावित किया हैं। आजकल ये लोग मॉल में फिल्में देखना, मोबाइल पर फिल्में देखना गाना सुनने के साथ–साथ सामूहिक कार्यक्रमों में डीजे की आवाज पर नृत्य करते हैं। अब नृत्य की बात आई है तो बांसवाड़ा जनजाति में प्रचलित नृत्यों की भी बात कर लेते हैं।

नृत्य कला –

बांसवाड़ा आदिवासी भील समुदाय के नृत्य भी अन्य नृत्यों से भिन्न है। यहाँ पर सार्वजनिक कार्यक्रमों में निम्न नृत्य किये जाते है– गैर, बोहरा–बोहरी, हीड नाच, घूमरा, लूर घूमरा, गैर घूमरा, सखी घूमरा, राड रमना

एवं साद।''[8]

शगुन–अपशगुन –

भारतीय सामाजिक जीवन में शगुन अपशगुन का महत्वपूर्ण स्थान है। बिना महूर्त तो कोई काम होता ही नहीं है। जनजातिय समाज में भी शगुन और अपशगुन के बारे में देखने को मिलता है।

बांसबाड़ा में रहने वाली जनजातियों में शगुन को बहुत मानते है। जैसे कौअे का बोलना, भरा हुआ मटका सामने से लाते हुए दिखना, कुंवारी लड़की को घर से निकलते समय देख लेना, मोर एवं कोयल का बोलना आदि को अच्छा शगुन मानते है। वहीं गौरेया का धूल में स्नान करना वर्षा का सूचना मानते है।[9]

अपशगुन – बांसवाड़ा जनजातिय समाज में अपशगुन भी बहुत माना जाता है। बिल्ली का रास्ता काटना, चांद की आभा, विधवा स्त्री का मिलना, खाली मटका सामने आना, उल्लू का बोलना, हवा का रूख, लकड़ी का गट्ठर अशुभ मानते है।

त्यौहार – भारतीय समाज में त्यौहारों का विशिष्ट स्थान है। सम्पूर्ण भारत में अनेक त्यौहार मनाये जाते हैं। होली, दिवाली, दशहरा, रक्षाबन्धन, नवरात्रि, शिवरात्रि, कृष्ण जन्माष्टमी के साथ–साथ बांसवाड़ा के आदिवासी समाज में पितृ पूजा भी की जाती है।

वेश–भूषा – कोई भी समाज हो उसका पहनावा ही उसकी पहचान होती है। भारत में अनेक धर्म के लोग रहते है। जिनकी वेश–भूषा अलग–अलग है। यह वेशभूषा ही उसे सांस्कृतिक पहचान देता है। **पहनावा** – किसी भी समाज या समुदाय का सांस्कृतिक हिस्सा उसका पहनावा भी होता है। बांसवाड़ा जिले में आदिवासी समुदाय का पहनावा भी महत्वपूर्व है।

बांसवाड़ा जनजाति के लोग अनेक प्रकार के परिधानों का प्रयोग करते हैं। आजादी के बाद यहाँ के लोग लंगोट धारण करते ओर खुला बदन रखते थे। धोती, कुर्ता, कमीज अगोछा गमछा एवं साफा पगड़ी पहनते थे। लेकिन आधुनिक जीवन शैली को अपनाकर इन्होंने भी धोती कुर्ता, पैन्ट शर्ट, शेरवानी आदि पहनना प्रारम्भ कर दिया है। वहीं महिलाएं लंहगा और ओढ़नी पहनती थी। किन्तु बदलते आर्थिक परिवेश ने और आधुनिकीकरण के प्रभाव ने इन्हें भी प्रभावित किया। आज ये महिलाएं, साड़ी ब्लाउच, घाघरा, और कुछ युवतियाँ पैट शर्ट एवं जीन्स टॉप भी पहनने लगी है। आधुनिकता की पहचान बन चुके ब्यूटीपार्लर में भी अब ये लोग जाने से नहीं कतराते है। शादी में मंहगे लंहगे, आभूषण खरीदना अब रिवाज सा बन गया है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि जनजाति समाज की सांस्कृतिक पहचान अलग है। रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार अन्य लोगों से भिन्न है। जिसके कारण इनकी पहचान होती है से प्रकृति की पूजा करने वाले होते है। इनका स्वभाव भी सरल एवं विनम्र होता है।

संदर्भ :–

1. डॉ. समीर कुमार व्यास, वागड़ के स्वतंत्रता सेनानी व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं0 2017, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, पृ0 6
2. डॉ. शिव कुमार तिवारी, मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति, सं0 2005, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,

भोपाल, पृ0 11

3. डॉ. शिव कुमार तिवारी, मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति, सं0 2005, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ0 1
4. रामचन्द्र पलात, राजस्थान की वन विहारी जातियाँ, सं0 2015, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ॰ 1
5. डॉ. हरिमोहन सक्सेना, राजस्थान का भूगोल, सं0 2025, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ0 268
6. रामनारायण उपाध्याय, निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, सं0 1980, पृ0 60
7. मालिनी काले, बांसवाड़ा (वागड़) की कला और सांस्कृतिक विरासत, हिमांशु पब्लिकेशन्स, सं0 2017, 69 से 71 तक
8. मालिनी काले, बांसवाड़ा (वागड़) की कला और सांस्कृतिक विरासत, हिमांशु पब्लिकेशन्स, सं0 2017, 65 से 67 तक
9. मालिनी काले, बांसवाड़ा (वागड़) की कला और सांस्कृतिक विरासत, हिमांशु पब्लिकेशन्स, सं0 2017, पृ0 42

सम्पर्क :– मनोज निगम, साईं बाबा मन्दिर के पास, श्रीराम कालोनी, दाहोद रोड़, बांसवाड़ा, 327001

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
March 2026

ISSN : 2395-7115
Page No. : 95-101

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

मनोज रूपड़ा के उपन्यास 'काले अध्याय' में भूमंडलीकरण और आदिवासी चिन्तन

जितेन्द्र, शोधार्थी,

डॉ. अंजन कुमार, शोध–निर्देशक (सहायक प्राध्यापक),

हिन्दी विभाग, कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाई नगर (छ.ग.)

शोध सार –

मनोज रूपड़ा समकालीन हिंदी कथा साहित्य के महत्वपूर्ण रचनाकारों में से एक हैं। उनका उपन्यास 'काले अध्याय' वर्तमान भूमंडलीकरण एवं पूँजीवाद के परिप्रेक्ष्य में आदिवासी जीवन संघर्ष, विभाजन, विस्थापन, क्रूर शोषण के यथार्थ को अभिव्यक्त करता है। पूँजीवाद और सत्ता का गठजोड़ किस तरह आदिवासियों के जल–जंगल–जमीन को हड़पने के लिए विकास का षड्यंत्र रचता है और उनके वन सम्पदा को लूट कर उन्हें विस्थापित होने के लिए विवश कर देता है इसका व्यापक चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। मनोज रूपड़ा का यह उपन्यास आदिवासी समाज के जीवंत अनुभवों, विडंबनाओं और सरोकारों से भरा हुआ एक संपूर्ण जीवन–वृत्त है। इस उपन्यास में आदिवासी चेतना का मूल केंद्र जल–जंगल–जमीन से जुड़े अस्तित्व की लड़ाई है जो भूमंडलीकरण के बाद से अधिक बढ़ी है। इस लड़ाई में पुलिस–प्रशासन और पूंजीवादी तंत्र के बीच आदिवासी समुदाय अपनी पहचान को बचाए रखने के लिए संघर्षरत दिखता है। मनोज रूपड़ा विकास के नाम पर होने वाले विस्थापन, खनन और औद्योगिकीकरण की क्रूर प्रक्रियाओं से आदिवासियों की टूटी जीवन–धारा को उघाड़ते हैं। मनोज रूपड़ा के इस उपन्यास में आदिवासी चेतना प्रतिरोध और आत्मसम्मान की चेतना है। यह संघर्ष केवल बाहरी उत्पीड़न के विरुद्ध नहीं, बल्कि अपनी सांस्कृतिक जड़ों की रक्षा का भी संघर्ष है। इस उपन्यास में आदिवासी जीवन का यथार्थ और उसके भीतर धड़कती मानवीय संवेदना पूरी गहनता से दिखाई देती है। इस उपन्यास के माध्यम से मनोज रूपड़ा आदिवासियों की वर्तमान दशा पर चिंतन करते हुए उसे सशक्त रूप से अभिव्यक्त करते हैं।

बीज शब्द – भूमंडलीकरण, पूँजीवाद, आदिवासी चिन्तन, आदिवासी की दशा, नक्सलवाद, शोषण, विस्थापन, विकास की छद्मता, जंगल का विनाश, हिंसा।

मूल आलेख –

मनोज रूपड़ा ने अपने उपन्यास 'काले अध्याय' में आदिवासियों की समस्याओं, संघर्ष एवं चुनौतियों को अभिव्यक्त किया है। यह उपन्यास दो भागों में विभाजित है। भाग–एक मुख्यतः बस्तर अंचल एवं आदिवासियों की

दशा पर केन्द्रित है वहीं भाग–दो वैश्विक घटनाओं एवं स्थितियों के साथ आदिवासी की स्थिति को दर्शाता है। यह उपन्यास बस्तर अंचल में व्याप्त नक्सलवाद के संदर्भ में आदिवासियों की दशा को अभिव्यक्ति करती है। नक्सलवाद के नाम पर आदिवासियों को उजाड़, विस्थापन, शोषण, हिंसा, अन्याय एवं अत्याचार आदि क्रूर एवं अमानवीय स्थितियों से गुजरना पड़ता है। जबकि नक्सली कमांडर के सशस्त्र प्रतिरोध में अपने जल–जंगल–जमीन की रक्षा का उद्देश्य निहित है।

विश्व में बस्तर अंचल मुख्य रूप से दो चीजों के लिए अधिक विख्यात है। पहला विशेष आदिवासी कला एवं संस्कृति की समृद्धता के लिए और दूसरा नक्सलवाद के लिए। देश की अन्य आदिवासी क्षेत्रों की तरह बस्तर भी नक्सलवाद का प्रमुख केन्द्र है। नक्सल संगठन का उद्देश्य बाहरी हस्तक्षेप, दुरूपयोग एवं दोहन से अपनी जल–जंगल–जमीन की रक्षा करना है लेकिन राज्य एवं केंद्र सरकार इसे राष्ट्र की आंतरिक सुरक्षा के लिए खतरा मानते हुए बरसों से इसे विभिन्न ऑपरेशन एवं अभियान के जरिए खत्म करने का प्रयास करती रही है। नक्सलवाद मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित है जो आदिवासियों के हक, अधिकार, शोषण के विरूद्ध एवं आदिवासी के जल–जंगल–जमीन के संरक्षण के उद्देश्य को लेकर काम करती है। हालाँकि नक्सल संगठन की अपनी सीमाएँ हैं जो उपन्यास में बहुत देखने को नहीं मिलती। नक्सल संगठन में शामिल अधिकतर नक्सली आदिवासी होते हैं। सरकार का मुख्य उद्देश्य बस्तर से नक्सलवाद को जड़ से खत्म करना है जिसके कारण जंगल में लगातार नक्सली कमांडर और सरकारी सेना के मध्य संघर्ष होते रहता है और इसी संघर्ष में आदिवासियों की दशा बिगड़ती चली जाती है। सरकारी सेना जंगल में घुसने के लिए आदिवासियों के विकास के नाम पर सड़कों का निर्माण करती है लेकिन नक्सली उस निर्माण कार्य में बाधा डालते हैं उसे पूरा नहीं होने देते क्योंकि उनका मानना है कि विकास के नाम पर बनाये जा रहे ये सड़क असल में जंगल में बाहरी लोगों के हस्तक्षेप को बढ़ा देगी। उनके जंगल को विकास एवं लौह अयस्क आदि खनिजों के खनन के लिए उजाड़ दिया जायेगा।

विकास और विनाश के इस द्वन्द्व पर विचार करते हुए नायक कहता है –"मुझे नहीं मालूम वह कौवा क्यों विकास और विकास के उजाड़ के बीच काँव–काँव कर रहा है उसे शायद यह समझ में नहीं आ रहा है कि इस घने जंगल में इतने आधुनिक यन्त्रों से लैस होकर लोग क्यों आ रहे हैं। सड़क क्यों बनायी जा रही है और बनी बनायी सड़कों को क्यों उजाड़ा जा रहा है। उसे शायद यह भी समझ में नहीं आ रहा था कि अपने तीर–कमान, पंख और कुल्हाड़ी के साथ लँगोटी पहनकर एक हाथ में मुर्गा और दूसरे हाथ में सल्फी या महुआ से भरा तुम्बा लटकाए घूमने वाला आदमी अब कहाँ चला गया है, उसकी आँखें सिर पर झौआ और बगल में बच्चे लेकर घूमने वाली औरतों को देखने की अभ्यस्त थीं। वह अपने आस–पास फैले पेड़–पौधों, नदियों, पशु–पक्षियों और मनुष्य के आपसी सम्बन्ध को देखता आ रहा था और अब इन नये परिवर्तनों को देखकर बौरा गया था।"[1] आदिवासियों को विकास से कोई गुरेज नहीं है। लेकिन विकास के नाम पर आदिवासियों को विस्थापित करने देने के पीछे छिपे विनाश के विरूद्ध उनका सशस्त्र प्रतिरोध है। इस उपन्यास में यहाँ पर विकास के पीछे छिपे विनाश को कौआ के कांव–कांव के जरिए नाटकीय रूप से व्याख्यायित किया गया है।

नक्सल संगठन का उद्देश्य जहाँ अपने जल–जंगल–जमीन को बचाना है वहीं सरकार अपना लक्ष्य नक्सलवाद को खत्म करने के साथ विकास को दुर्गम आदिवासी क्षेत्र तक पहुँचाना मानती है ताकि आदिवासियों

का विकास किया जा सके। उन्हें मुख्यधारा से जोड़ा जा सके लेकिन क्या यह सरकार का वास्तविक मंतव्य है? क्या सरकार वास्तव में आदिवासियों का विकास करना चाहती है? या विकास के ऊपरी खोल के नीचे कोई और उद्देश्य की पूर्ति करने में जुटी हुई है? विकास और विनाश अपने आपमें दो विपरीत और भिन्न अर्थ के द्योतक है लेकिन कभी–कभी विकास विनाश का रूप धारण कर लेती हैं या विनाश को ही विकास के आवरण में प्रस्तुत किया जाता है। विकास और विनाश के इस अंतर पर कथाकार बार–बार प्रश्न करते हैं। जिसे लक्षित करते हुए विनोद विश्वकर्मा इस उपन्यास की समीक्षा में लिखते हैं– "हम विकास, 'विकास के लिए करते हैं या फिर मानव विनाश के लिए। जो आज की नवपूंजीवादी, उत्तर उपनिवेशवादी, समाजशास्त्रीय अवधारणा का ज्वलन्त प्रश्न है।"[2] विनोद विश्वकर्मा इस कथन के माध्यम से वर्तमान विश्व की भूमंडलीय व्यवस्था में निहित विकास के अंदर छुपे विनाश पर विचार करते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में सरकार या सेना के घुसपैठ का क्या निहितार्थ है? नक्सलवाद को खत्म करना या नक्सलवाद के नाम पर आदिवासियों को खत्म करना ताकि वहाँ उपलब्ध बहुमूल्य खनिजों का खनन और व्यापार किया जा सके। नक्सली मुक्त बस्तर अभियान के एवज में आदिवासियों के उजाड़, विस्थापन और उनकी हत्या के रूप में चले रहे पूँजीवादी विनाश के पूरे खेल को नायक इथोपिया के बंजर बना दी गयी जमीन के विनाश की तरह ही देखते हैं जिसके बारे में कैप्टन दत्त उसे जहाज यात्रा के दौरान बताते हैं। उस संस्मरणात्मक घटना को सुनने के बाद नायक कहता है– "मैं खिड़की से बाहर फैले समुद्र की शान्त सतह को देख रहा था और उसी सतह पर मुझे इथोपिया की बंजर बना दी गयी जमीन दिखाई देने लगी, फिर हजारों–लाखों अकाल पीड़ित बच्चे दिखाई दिये। फिर उसी बंजर जमीन की जगह मुझे बस्तर का जंगल और अपना विस्थापित जन–समुदाय दिखाई दिया। फिर मुझे बैलाडिला की वो पहाड़ियाँ दिखाई दीं जहाँ विदेशी कम्पनियों द्वारा बड़े पैमाने पर खनन किया जा रहा था और कई तरह के खनिजों और लौह अयस्क को रेल मार्ग से विशाखापट्टनम के बन्दरगाह तक ले जाया जा रहा था और जहाजों में लादकर उन देशों में भेजा जा रहा था। जिन देशों की कम्पनियों ने इन खदानों को लीज पर लिया था।"[3]

विकास के नाम पर आदिवासियों का उनके जंगल से विस्थापन कर देना उनके विनाश का सूचक है। आदिवासी गाँव को नक्सली गतिविधियों के कारण सेना द्वारा उजाड़कर विस्थापित कर दिया जाता है और सड़कों के किनारे बने हुए राहत शिविरों में ठूँस दिया जाता है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि जब किसी एक विशेष गाँव का कोई व्यक्ति माओवादी संगठन में शामिल होता है तो उसके पीछे उसके परिवार के साथ गाँव के लोगों को क्या–क्या मुश्किलें और यातना झेलनी पड़ती है। सरकारी सेना पूरे गाँव को उजाड़कर उन्हें दूसरी जगहों में विस्थापित कर देती है। आदिवासियों को अपने घर, गाँव के साथ खेत–खलिहान छोड़कर जाना पड़ता है जो उनके जीविका का एकमात्र साधन होता है। नायक की बड़ी बहन मादवी इरमा जब नक्सली संगठन में शामिल होने चली जाती है तो उसके पीछे उसके गाँव को ऊजाड़ दिया जाता है। और वहाँ के आदिवासियों को विस्थापित कर दिया जाता है। नायक मुम्बई से वापस अपने गाँव आता है तब वहाँ के स्थिति को देखकर हतप्रभ रह जाता है। "सड़क के दोनों तरफ के खेत बिल्कुल सूने–सपाट पड़े थे। उन खेतों में इतने खरपतवार और कंटीले पौधे उग आये थे जैसे वर्षों से खेतों की जुताई न हुई हो। खेतों को पार करने के बाद मैं गाँव के तालाब तक पहुँचा वहाँ भी तालाब किनारे नहाती–धोती औरतों का वैसा भरपूर दृश्य दिखाई नहीं दिया, जैसा आमतौर पर दिखाई देता था। बरगद के नीचे गोल चबूतरे पर और कुएँ की जगत पर बैठकर बीड़ी फूंकते

निठल्लों का जमघट भी नदारद था। और सबसे ज्यादा आश्चर्य तो मुझे तब हुआ जब मैंने देखा कि अधिकांश घरों के किवाड़ या तो टूट–फूट गये थे या उनमें ताले लगे थे।"[4]

भले ही संविधान में आदिवासियों को विशेष अधिकार और सुरक्षा प्रदान की गयी हो। हमेशा उनके अधिकार, सुरक्षा, संरक्षण और विकास की बात कही जाती रही हो लेकिन जमीनी यथार्थ उससे बहुत भिन्न है। उनके लिए बनाये संविधान और कानून मानो दस्तावेज में सिमटकर रह गये हैं। बस्तर में नक्सलवाद को खत्म करने के नाम पर आदिवासियों के साथ हो रहे वीभत्स, क्रूर एवं अमानवीय शोषण उस कानून के कार्यान्वयन की जमीनी यथार्थ को प्रशनांकित करता है।

एक तरफ आदिवासियों को उनके गाँव से विस्थापित कर राहत शिविरों में रखा जाता है जहाँ उनको तरह–तरह की यातनाओं से गुजरना पड़ता है। उनका शोषण किया जाता है। दूसरी तरफ नक्सली गतिविधियों के बहाने पुलिस वालों के द्वारा आदिवासियों को आदिवासियों के सामने खड़ा कर दिया जाता है अर्थात् नायक के गाँव के ऐसे बहुत सारे लड़के जो किसी भी तरह से सेना में शामिल होने के योग्य नहीं होते लेकिन फिर भी उन्हें सेना में शामिल कर दिया जाता है ताकि आदिवासी अपने में लड़–मरकर खत्म हो जाये। इस विडम्बनापूर्ण यथार्थ का वर्णन हुए करते नायक कहता है "जब मैं केबिन के करीब से गुजरते हुए बेरियर क्रास कर रहा था तब मैंने हल्की, उड़ती–उड़ती सी नजर से उसे देखा। मुझे वह चेहरा जाना–पहचाना–सा लगा। मैंने एक बार मुड़कर उसे गौर से देखा। हाँ! ये वही है–रोनहू, जो प्राइमरी स्कूल तक मेरे साथ पढ़ता था। जिसे हम जान–बूझकर तंग किया करते थे और बात–बात पर उसके रूआँसे हो जाने वाले चेहरे के कारण कक्षा के बच्चों ने उसे श्रोनहूश् नाम दे रखा था। मुझे याद है, बाद में वयस्क हो जाने के बावजूद वह उतना ही दब्बू और डरपोक था और उसका रोनहापन भी सोलह–सत्रह साल की उम्र तक जारी था।३मुझे आश्चर्य हुआ कि उस फिसड्डी लड़के को सशस्त्र पुलिस बल में नौकरी कैसे मिल गयी?"[5]

एक दब्बू डरपोक लड़के को भी सेना में शामिल कर सिपाही बना देना। पुलिस की उस कूटनीति को दर्शाता है जिसके द्वारा आदिवासी समाज को विखंडित किया जाता है। आदिवासी के परस्पर दो विरोधी गुटों में विभाजित हो जाने को इस उपन्यास में बखूबी चित्रित किया गया है। उपन्यास का नायक अपनी पढ़ाई पूरी करके चार साल बाद जब अपने गाँव लौटता है तब वह पाता है कि उसके गाँव एवं आसपास के क्षेत्र का पूरा परिवेश बदल चुका है। उस बदलाव में जो सबसे महत्वपूर्ण बदलाव होता है वह यह कि उसके अपने सगे–संबंधी एवं गाँव के लोग दो गुटों में बंट गये हैं। जब उसे शिनाख्त के लिए पुलिस स्टेशन ले जाया जाता है। तब वहाँ का पुलिस अधिकारी भी उन्हीं में से एक आदिवासी होता है। वहाँ पुलिस स्टेशन में उसके बैग के समानों को उलटकर उसकी तलाशी ली जाती है। जिसमें उसके निजी समानों के साथ एक सामान्य–सा पत्थर मिलता है उस पत्थर को पुलिस अधिकारी को दिखाते हुए नायक कहता है– "जरा गौर से देखो। अगर तुम सचमुच एक आदिवासी हो और तुम्हारा सरकारीकरण नहीं हुआ है तो तुम्हें भी इस पत्थर में कोई विजन दिखाई देगा। तुम्हें एक घना जंगल दिखाई देगा। और पहले उसमें टँगिया, हँसिया, तीर–कमान, कुल्हाड़ा और मछली मारने वाला भाला हाथ में लिए घूमते तुम्हारे सगे–सम्बन्धी दिखाई देंगे, फिर तुम्हें तुम्हारा पूरा समुदाय दिखाई देगा, जो दो भागों में बँट चुका है। आधे लोगों ने चितकबरी वर्दी पहन ली है और आधे लोगों ने तुम्हारी तरह खाकी वर्दी पहन ली है और दोनों अपने पारम्परिक औजारों को छोड़कर बन्दूक हाथ में थामे एक–दूसरे के

खिलाफ खड़े हैं।"[6]

इन दो परस्पर विरोधी गुटों में बंटकर आदिवासी समुदाय विखंडित हो चुका है। यह विखंडन उन्हें दुश्मन के रूप में परस्पर एक–दूसरे के सामने लाकर खड़ा कर देता है। इस तरह उन्हें एक–दूसरे को खत्म करने की प्रक्रिया में शामिल कर दिया जाता है। नायक जब अपने घर के पास पहुँचता तब बहुत से पुलिस वाले संदेह के आधार पर उसे गिरफ्तार करने के लिए आ जाते हैं उन सिपाहियों में बहुत से लोग उसके रिश्तेदार होते हैं जो अब सरकारी सेना में भर्ती हो चुके हैं। उन्हें पुलिस की वर्दी में देखकर नायक को आश्चर्य होता है। उनको पहचानते हुए नायक अपने आप से कहता है "मेरा मौसेरा भाई सुखदेव पुलिस की वर्दी पहने सबसे आगे खड़ा था। मैंने एक नजर अन्य चेहरों पर डाली, उस दल में आधे से ज्यादा जवान मेरे ही गाँव के थे। सबके हाथों में बन्दूक थी और कन्धे पर लगी पट्टी में एस. पी. ओ. लिखा हुआ था।"[7]

इस तरह नक्सली और सेना के युध्द में अगर कोई मरता है तो वह आदिवासी ही होता है क्योंकि नक्सली भी आदिवासी है और नक्सली के सामने लड़ने के लिए खड़े कर दिए सेना के सिपाही भी आदिवासी है। नक्सली और सेना के सशस्त्र युध्द में मृत्यु को प्राप्त हुए आदिवासी लोगों की स्मृति में बनाये गये स्मारक या मूर्ति में यह विडम्बना देखने को मिलती है। जिसमें एक ही परिवार के लोग या सगे रिश्तेदार दोनों तरफ के शहादत में दिखाई देते हैं। आदिवासियों के साथ हो रहे इस हिंसक विडम्बना को वर्णित करते हुए नायक कहता है "मुझे एक बार फिर रूक जाना पड़ा। इन समाधियों के नीचे भी शहीदों के नाम लिखे थे। पहली समाधि रूकनी नरवाँ की थी, जो मेरे पडोसी सोयम गंगा की बेटी और एस. पी. ओ. के रूप में शहीद हुए सोयम नरवाँ की बहन थी। दूसरी समाधि सन्नू बुदरैय्या की थी, जो मेरे चाचा का छोटा लड़का था और 'शहीद' एस. पी. ओ. मड़कम बुदरैय्या का भाई था। तीसरी समाधि वँजम अडमा की थी जो मेरे मामा पोडियम अडमा के छोटे भाई का बेटा और सोड़ी अडमा का चचेरा भाई था।"[8]

आदिवासियों पर हमला चौतरफा है। एक तरफ उन्हें नक्सलवाद के नाम पर उनके जंगल–जमीन से विस्थापित किया जा रहा है। दूसरी ओर जंगल–जमीन को बचाने के लिए कुछ लोग नक्सल संगठन में शामिल हो जाते हैं और कुछ लोगों को सेना में भर्ती कर दिया जाता है जिसके कारण वे परस्पर एक–दूसरे को खत्म करने के हिंसक युद्ध में शामिल हो जाते हैं। इस उपन्यास में मनोज रूपड़ा बस्तर में नक्सलवाद के नाम पर आदिवासियों के साथ हो रहे अन्याय, अत्याचार और हिंसा के कारण के पीछे वर्तमान पूँजीवाद को देखते हैं। पूँजीवाद की उन्नत अवस्था नवपूँजीवाद, जिसे आज भूमंडलीकरण का नाम दिया गया है। यह भूमंडलीकरण पूँजीवाद के विस्तार के साथ पूँजीपतियों का विस्तार करती है और समाज के निम्न वर्ग या गरीब तबका के विकास नाम पर अधिकतर उनका शोषण करती है जिसमें आदिवासी समाज भी शामिल है। इस भूमंडलीकरण में आज दुनिया की हर जड़ या चेतन पदार्थ उपभोग का एक वस्तु है जिसके दायरे में जीव–जन्तु से लेकर मनुष्य तक शामिल है। इस व्यवस्था में मनुष्य या तो उपभोक्ता है या उपभोग की वस्तु। भूमंडलीकरण के घोर पूँजीवादी प्रभाव से आज दुनिया का कोई भी व्यक्ति या वस्तु बचा नहीं है। महानगरों से नगर कस्बों–गाँव यहाँ तक की सुदूर दुर्गम जंगलों तक यह पहुँच चुका है। बस्तर के आदिवासी क्षेत्रों में होने वाले नक्सलवाद के खत्म का अभियान और विकास के नाम पर सड़कों आदि का निर्माण वास्तव में वहाँ के खनिजों को निकालने एवं उद्योगपति या विदेशों को निर्यात करने के लिए रास्ता साफ करना है। भूमंडलीय व्यवस्था के संरक्षण में पल बढ़

रहे औद्योगिक उपक्रम के छद्म भरे हिंसक रूप और उसकी सहायता करने वाले सरकार की भूमिका पर विचार करते हुए नायक कहता है। "आधुनिक बलिदान एक विशाल औद्योगिक उपक्रम है। औद्योगिक कार्टेल अब सबसे बड़ा बलिदाता है और उसका अदृश्य बलिदानी वर्कशाप दिन–रात काम कर रहा है। इस औद्योगिक बलिदाता को किसी तरह की कर्मकांडिय पोशाक पहनने की जरूरत नहीं है। यन्त्रणा देने या मौत के घाट उतार देने के लिए उसे किसी पारम्पारिक शस्त्र की जरूरत नहीं है क्योंकि बलिदानी उपक्रियाओं का काम अब राजसत्ता के हाथों में है और राजसत्ताएँ किसके हाथों में हैं यह बात अब उस चूहे को भी मालूम है, जो बिल में छुपा बैठा है।"[9]

कथा नायक जिस कार्गोशीप कंपनी में काम करता है उस कंपनी की अगली ट्रिप में अन्य मालों के साथ बस्तर के लौह अयस्क को भी विशाखापट्टनम बंदरगाह से जापान भेजा जाना है। जब यह बात कथा नायक को पता चलती है तो वह नक्सली कैडर से पूछता है कि क्या वह भी अनजाने ही नक्सलियों या आदिवासियों के उद्देश्य के विरूद्ध काम कर रहा है। इस पर नक्सली कैडर नायक को समझाता है – "दरअसल इन सब चीजों को एक बड़े फ्रेम में देखने की जरुरत है। अगर हम उस तरह से सोचेंगे तो उन हजारों खनन कर्मियों के बारे में भी यही कहा जा सकता है कि वे हमारे उद्देश्यों के खिलाफ हैं। और तब उसी तर्ज पर सड़क–निर्माण में लगे मजदूर भी हमारे दुश्मन कहलाएँगे क्योंकि जो सड़कें अब बनाई जा रही हैं। ये सड़कें खनिज भंडारों को सीधे रेलमार्ग से जोड़ती हैं। हम इन कर्मचारियों और मजदूरों के खिलाफ नहीं हैं। हमारी असली लड़ाई उन नीतियों से है जो इन कम्पनियों के लिए मुफ्त के भाव में लीज के पट्टे दिला रही हैं। हमारी लड़ाई उनसे है जो इन कम्पनियों के लिए रास्ता साफ करने के लिए गाँवों को खाली कर रहे हैं और उन्हें सड़क किनारे केम्पों में ले जा रहे हैं।"[10]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मनोज रूपड़ा ने अपने उपन्यास 'काले अध्याय' में नक्सलवाद के संदर्भ में बस्तर के आदिवासी समुदाय पर औद्योगिकीकरण एवं उदारीकरण की विभीषिका के परिणामस्वरूप उनके जीवन में पड़ने वाले दुष्प्रभाव को बहुत सूक्ष्म और मार्मिक रूप से अभिव्यक्त किया है। उदारीकरण के तहत भारत में भूमंडलीकरण का जो प्रवेश हुआ उसके बाद बड़े–बड़े अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों ने यहाँ के बाजार पर कब्जा जमाना शुरू किया, साथ ही यहाँ के संसाधनों का भी तेजी से प्रयोग एवं दोहन करने लगे। बस्तर के लौह अयस्क आदि खनिज संसाधन को बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों को बेचने के लिए सरकारी सेना नक्सलवाद के नाम पर यहाँ के आदिवासियों को परेशान करना, उनकी हत्या करना एवं उन्हें विस्थापित करने का काम करने लगी जिसके जवाब में नक्सल संगठन और उग्र होता गया जिसके कारण हिंसक घटनाएँ और तेजी से बढ़ने लगी। इस तरह इस उपन्यास में नक्सली और सेना के द्वन्द्व युध्द में पीसते आदिवासी का चित्रण है। विकास के नाम पर उजड़ते जंगल और अपने घर–गाँव से विस्थापित हो कैम्पों में यातनापूर्ण जीवन जीने को विवश आदिवासी की दशा को लेकर चिंतन है।

संदर्भ :–

1. रूपड़ा, मनोज. काले अध्याय. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. संस्करण 2015, पृष्ठ 88.
2. विश्वकर्मा, विनोद। उत्तर समय में वैश्विक परिदृश्य का पुनर्पाठ। जनतांत्रिक, मार्च 29, 2019,

https://jantantraajtak.blogspot.com/2019/03/blog&post.html (06/12/25, 8:54am)

3. रूपड़ा, मनोज. काले अध्याय. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. संस्करण 2015, पृष्ठ 155.
4. रूपड़ा, मनोज. काले अध्याय. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. संस्करण 2015, पृष्ठ 59.
5. रूपड़ा, मनोज. काले अध्याय. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. संस्करण 2015, पृष्ठ 65.
6. रूपड़ा, मनोज. काले अध्याय. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. संस्करण 2015, पृष्ठ 64.
7. रूपड़ा, मनोज. काले अध्याय. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. संस्करण 2015, पृष्ठ 60.
8. रूपड़ा, मनोज. काले अध्याय. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. संस्करण 2015, पृष्ठ 70.
9. रूपड़ा, मनोज. काले अध्याय. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. संस्करण 2015, पृष्ठ 175.
10. रूपड़ा, मनोज. काले अध्याय. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. संस्करण 2015, पृष्ठ 104—105.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 102-114

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

Digital Screen Engagement and Child Behavioral Adjustment : Examining the Moderating Role of Parenting Style

Dr. Shama Parveen

Head & Assistant Professor, Department of Home Science
M. R. M. College, L. N. Mithila University, Darbhanga, Bihar.

Abstract :

Digital technology has grown extremely fast, and, therefore, children have become more screen-exposed via their smartphones, tablets, televisions, and online learning platforms. Although digital media has educational and recreational benefits, screen time has played a major role concerning the impact of screen time on the behavioral and emotional growth of children. In this study, the researcher focuses on the connection between digital screen activities and behavioral adaptation in children with a special emphasis on the mediating parenting style. Emotional regulation, attention control, social interaction, and problem behaviors are some of the aspects of behavioral adjustment in childhood. The way parents are characteristically authoritative, authoritarian, permissive, or neglectful determines how children use media and their levels of self-regulation and development. The research question the study addresses is the effects of various parenting styles and whether positive supportive parental guidance would help to mitigate the possible harmful consequences of excessive screen time on children. The study, based on a conceptual and analytical framework, emphasizes that parenting, like screen time monitoring, encouraging more balanced activities, and open communication, can mediate the correlation between screen time and behavioral outcomes. The results indicate that responsive and organized parenting can contribute to children gaining more healthy digital habits and improved adaptation in behavior. The research study helps in comprehending the multifaceted interaction between child development, family setups, and the use of technology in the modern digital communities.

Keywords : Digital Screen Engagement, Child Behavioral Adjustment, Parenting Style, Authoritative Parenting, Authoritarian Parenting, Permissive Parenting, Child Development, Emotional Regulation,

Screen Time Management, Digital Media Use in Children

Introduction :

The accelerated development of digital technology has changed the daily lives of children all over the world. Smartphones, tablets, computers, televisions, and gaming consoles have become a part of the learning, entertainment, and social interaction of children. The digital screens are not only utilized in leisure in most homes; they are also applied in learning, communication, and information access. As much as these technologies have a number of advantages, such as learning and creativity, there have also been fears on the impact of higher screen time on the behavioral and emotional growth of children. Throughout the years, with more and more time spent by the children using digital media, researchers and educators have started to explore how the change in lifestyle can affect behavioral adaptation in the early stages of their development.

Fig. 1 : Digital Screen Engagement and Child Behavioral Adjustment

Behavioral adjustment is the capacity of the child to control his or her emotions, keep attention, socialize with others, and properly respond to various circumstances in the environment. Good health behavior change promotes academic achievement, good relationships with peers, and emotional stability. Nonetheless, too much, or unmonitored screen time can be linked to problems in the form of decreased attention span, problems in controlling emotions, high levels of irritability, and decreased rates of social interactions. The effects of screen use are not universal among children, and the effects of the use of digital media in children depend on many environmental and family influences in children.

Parenting style is also one of the most significant contextual factors affecting the behavior of children. Parenting style is an expression of the overall style that the parents adopt in mentoring, punishing, and assisting their children. Four main parenting styles have been discussed by scholars as authoritative, authoritarian, permissive, and neglectful. Authoritative parenting is also said to be usually

warm and responsive and has direct instructions; on the contrary, authoritarian parenting is largely focused on discipline and control. Permissive parenting has been known to have fewer rules and more freedom for children, whereas neglectful parenting is characterized by less involvement or supervision. These alternative parenting strategies influence the behavior, feelings, and coping mechanisms of children, such as their utilization and the regulation of digital technology.

Fig. 2 : Digital Screens and Parenting Style

The parenting style thus can have a mediating role in the correlation between interactions on digital screens and behavioral outcomes in children. When parents are actively involved and observed to have a hands-on approach in guiding and monitoring the media consumption of their kids, the parents have a chance of instilling in their kids the ability to have balanced habits, critical minds, and self-regulation. On the contrary, supervision deficiency or too restrictive methods can contribute either to overdependence on screens or to opposition to parental control. The family environment in this way is an important issue in defining whether digital technology facilitated healthy development or caused behavioral problems.

Since technology is still defining childhood experiences in modern society, it would be pivotal to understanding how digital screen engagement and parenting style relate to each other. Investigating the impact of parenting practices on the outcomes of screen use in behavioral adjustment, researchers and policymakers will be able to devise measures that promote the healthy adoption of digital media in addition to supporting the emotional and social development of children. This paper will thus attempt to examine the connection between the time that children spend on digital screens and the modification of behavior as well as make specific choices on how the association between digital screens and behavioral change can be mediated by different parenting styles.

Table 1 : Types of Digital Screen Devices Used by Children

Digital Device	Common Usage by Children	Possible Impact
Smartphones	Games, social media, videos	Increased screen dependency
Tablets	Educational apps, games	Mixed educational and entertainment effects
Television	Cartoons, movies	Passive screen consumption
Computers/Laptops	Online learning, gaming	Extended screen exposure

Theoretical Framework and Literature Review :

The increasing involvement of digital media in the everyday lives of children has made researchers explore how digital media may affect behavior development. Digital screen engagement involves the duration that children spend using electronic devices in the form of smartphones, tablets, televisions, and computers for such purposes as entertainment, learning, and communication. Although digital technologies offer chances to enrich education and interact socially, overuse or uncontrolled screen time has been associated with a number of behavioral and psychological issues. The theoretical background of this research relies on the interplay of three main factors, namely, the interaction of digital screen engagement (independent variable), child behavioral adjustment (dependent variable), and parenting style (moderating variable).

The concept of behavioral adjustment in childhood involves the capacity to control emotional states, sustain attention, and exercise self-control, as well as generally get along well with other children and adults. It has been found that screen time could have an effect on the following areas of development. Stiglic and Viner (2019), in their systematic review, analyzed several observational studies and identified a relationship between an increased number of hours spent on screens and the following negative consequences among youths and children: behavioral disorders, diminished psychological well-being, and lack of physical activity. On the same note, Twenge and Campbell (2018) found out that the more time adolescents spent on the screen in the United States, the poorer their psychological well-being was, and the higher their emotional distress was. These results indicate that long-time screen exposure can be a factor that affects emotional control and social patterns of children.

But screen exposure is not the primary factor that defines the relationship between digital

media use and behavioral outcome. The family setting, especially parenting, is significant in determining the interactions of the children with technology. Parenting style affects self-regulation skills, media preferences, and coping styles of children. The classical work done by Baumrind (1967) on parenting styles recognized authoritative, authoritarian, and permissive parenting styles, with an addition by Maccoby and Martin (1983), who identified the style of neglectful parenting. Coupled with suitable control, authoritative parenting, which is warm, has consistently been linked to such positive developmental outcomes as improved emotional regulation, social competence, and academic performance.

Studies show that the methods of parenting influence the digital media behavior of children as well. Nathanson (2001) emphasized the notion of parental mediation that can be viewed as the approach used by parents to influence the media consumption by children. Active mediation, that is, parents talking about media content and establishing reasonable limits, has been shown to have negative media impacts reduced and healthier viewing behaviors established. Equally, research included in the summary conducted by the American Academy of Pediatrics (2016) highlights the importance of monitoring screen time and establishing balanced media environments as the means of improving the health of the developing behavior in children.

The theoretical framework of this research is that parenting style mediates the association between screen time and behavioral adaptation. Exposed children who are subjected to excessively high amounts of screen time can have varying effects on their behavior in line with the level of parental guidance that such children are exposed to. As an illustration, authoritative parenting, which promotes the balanced use of technology and open communication, can help to prevent the effects of negative behavior. Conversely, a negligent or permissive parenting style can result in excessive screen exposure without any supervision that can predispose children to behavioral problems.

Therefore, according to the current literature, the contribution of digital screen engagement to the behavioral adaptation of children may be a significant factor, although the family context, in particular, the parenting style, defines the nature and degree of the impact. This interaction can be studied to understand the digital behavior of children in a holistic context in every regard of family life and developmental psychology.

Research Objectives :

The present study aims to examine the relationship between digital screen engagement and behavioral adjustment among children, with particular emphasis on the moderating role of parenting style. The specific objectives of the study are as follows :

- To analyze the extent to which digital screen engagement influences the behavioral adjustment of children.

- To examine the relationship between children's screen time and aspects of behavioral development such as emotional regulation, attention control, and social interaction.
- To explore the role of different parenting styles—authoritative, authoritarian, permissive, and neglectful—in shaping children’s digital media use.
- To investigate how parenting style moderates the relationship between digital screen engagement and children's behavioral outcomes.
- To identify how supportive parental guidance and monitoring can help reduce the potential negative effects of excessive screen exposure.
- To suggest practical recommendations for parents and educators to promote balanced digital media use and healthy behavioral development among children.

Methodology :

This study adopts a conceptual and analytical research design to examine the relationship between digital screen engagement and behavioral adjustment among children, with parenting style considered as a moderating factor. The research primarily relies on secondary sources of information, including academic journals, books, research reports, and policy documents related to child development, digital media use, and parenting practices.

The study follows a qualitative and descriptive approach, aiming to analyze existing theoretical frameworks and empirical findings that explore how screen exposure influences children's behavioral outcomes such as emotional regulation, attention control, and social interaction. Relevant scholarly works from developmental psychology, media studies, and family studies were systematically reviewed to identify key patterns and relationships among the variables.

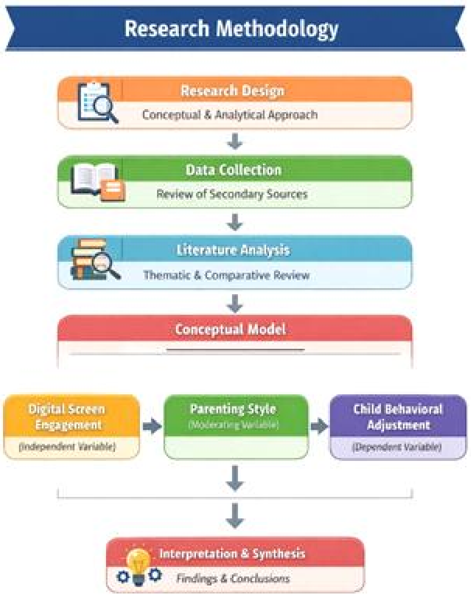

Fig. 3 : Research Methodology

The conceptual model of the study consists of three main components: digital screen engagement as the independent variable, child behavioral adjustment as the dependent variable, and parenting style as the moderating variable. Different parenting styles—authoritative, authoritarian, permissive, and neglectful—are examined in relation to their influence on children's media usage habits and behavioral responses.

In analyzing the literature, emphasis was placed on studies that investigated the impact of screen time on children's psychological well-being, social development, and behavioral regulation, as well as research that highlighted the role of parental guidance in managing children's digital activities. Through comparative analysis of these studies, the research identifies patterns that demonstrate how supportive parenting practices can mitigate the potential negative effects of excessive screen exposure. The findings of the study are therefore based on theoretical synthesis and analytical interpretation of existing research, which allows for a comprehensive understanding of how digital technology, family environment, and parenting practices interact in shaping children's behavioral development in the digital age.

Parenting Style as a Moderator :

Parenting style is an important factor that determines the behavioral development of children and the way they interact with digital technology. With the growing integration of digital devices in everyday life, parents act as the key guides in shaping how children engage and react to the media presented through the screens. Parenting style can be described as the regularity of attitude, practices, and emotional interactions that parents have towards their children as they raise them. These trends influence the habits of children, their emotional control and social behavior. Parenting style can serve as a variable mediator in the relationship between screen use and the occurrence of either a positive learning experience or a behavioral problem in the context of digital media use.

Developmental psychologists usually distinguish four major styles of parenting, i.e., authoritarian, permissive, and neglectful. All these methods are similar indicators of the degree of parental warmth, communication, and behavioral control. Authoritative parenting is typified by positive communication as well as by explicit directions and guidelines. The parents of this strategy also tend to create a regular time schedule, create nominal screen time, and balance the activities of physical play, social interaction, and academic activity. This has a chance to make the children who grow up in such environments more likely to develop skills of self-regulation and responsible use of the media that can eliminate the possibility of the negative impacts that excessive screen exposure can pose.

Authoritarian parenting, on the other hand, has high levels of control and strict rules and limited emotional responsiveness. In families where this style is predominant, the parents can enforce strong

limitations on screen time without explanation or dialogue. Although these limitations could reduce the amount of time spent on the screen in the short run, there is also a possibility of the kids developing their version of resistance or the desire to access digital media without supervision. This interaction can restrict the chances of children gaining self-control and critical interpretation of digital material.

Table 2 : Types of Parenting Styles and Their Influence on Digital Media Use

Parenting Style	Characteristics	Impact on Children's Screen Behavior
Authoritative	Balanced control and warmth	Healthy screen habits and self-regulation
Authoritarian	Strict rules, low communication	Resistance or secret media use
Permissive	High freedom, few limits	Excessive screen time
Neglectful	Low supervision	High risk of screen addiction

In permissive parenting, the amount of warmth is high and the number of rules or boundaries is low. Adoptive parents can give children a lot of freedom in their selection of media and the amount of time they spend watching the television. Even though such a style might help establish a free-and-easy environment in the family, a lack of regular observation can result in overindulgent screen time. In the absence of a guide, children might have an imbalanced relationship with digital devices that may affect their sleep habits, attention, and feelings.

Parental negligence, including the low degree of control as well as the low emotional engagement, can prove to be the most dangerous when it comes to exposure to digital media. Children in such places can be overly dependent on the use of electronic tools to entertain them or for comfort. The absence of parental involvement can lead to decreased chances of having positive social interaction and behavioral guidance and can lead to higher risks of behavioral adjustment problems.

Monitoring screen use, talking about online experiences, and promoting other activities can also play an important role in shaping digital behavior among children through practices such as parenting. Active parental participation will make the children realize how to use the media and how to control their screen time. Children have greater chances of developing healthier behavior patterns when parents establish formal routines that allow the balancing of digital devices with physical play, studying, and bonding with family.

Therefore, parenting style is a potential moderate variable in the correlation between child behavioral outcomes and digital screen time. Instead of screen exposure alone defining behavioral

adjustment, parental guidance and regulation of the use of technology influence the children using digital media. Positive and attentive parenting may assist the children to gain the advantages of digital technologies with a low risk of behavioral problems that may arise when the children spend a lot of time on the screen.

Issues and Problems of Child Development :

The rising use of digital technology in the lives of children poses a number of threats to healthy child development. Although digital devices provide the means of access to information, learning tools, and a means of communication, over- or uncontrolled screen time can cause developmental issues. The major issue is the inability to balance a routine, consisting of proper physical activity, socializing, and thinking outside the digital space. By spending long hours playing on screens, children may lose some of the time that would have been spent outdoors, creating or even face-to-face interaction with their peers and family members. These imbalances may affect the development of behavior and emotions at the important stages of childhood.

Table 3 : Average Daily Screen Time by Age Group

Age Group	Average Screen Time
0–5 years	2 hours
6–12 years	4 hours
13–18 years	7 hours

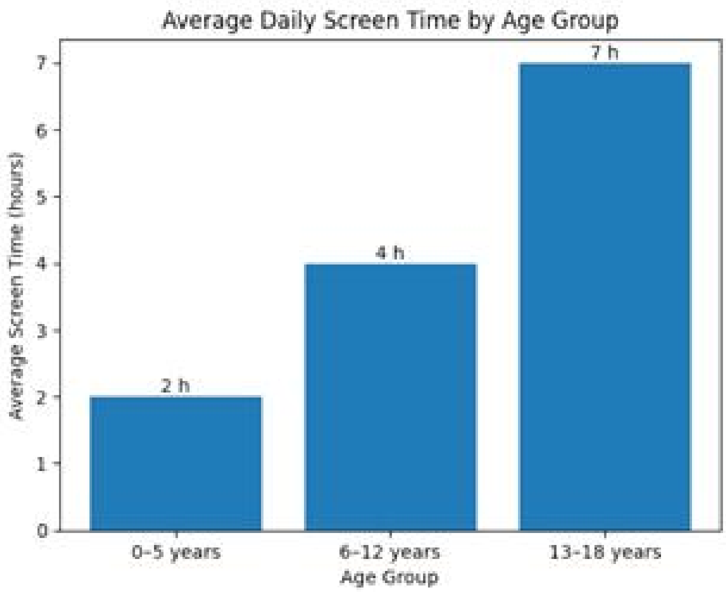

Fig. 4 : Average Daily Screen Time by Age Group

The other challenge is connected to the capability of the children to control their emotions and attention in a technology-filled environment. Numerous online platforms are created to draw

attention with the help of rapid visual images, notifications, and interactive capabilities. Constant exposure to stimuli of this nature can affect the concentration pattern and impulse control of children. There are also those children who might not find it easy to get off the screens, thus experiencing frustration, irritability or failing to switch to other activities like homework or family interactions. These trends can influence behavior change and social performance over time.

Another valuable issue related to excessive screen time is sleep disruption. Digital devices, and especially those used before going to sleep, can disrupt sleep patterns because of the stimulating content and blue light emitted by gadgets. Sleep patterns may be inadequate or irregular; this may affect mood, learning ability and behavior control. The children who lack sleep can exhibit fatigue, lack of concentration at school and emotional sensitivity.

Another effect of digital interaction on social development can occur when face-to-face communication is substituted by the digital one. Personal contact with peers and family members will offer the children a chance to learn to practice empathy, cooperation, and conflict-resolution skills. These opportunities of social learning can be restricted when digital interaction becomes the dominant part of the life of children. Consequently, there is a risk that some children will struggle to interpret social behavior or have a healthy interpersonal relationship.

In spite of this, when properly utilized, digital technology is a source of potential benefits as well. Cognitive development and acquisition of skills could be supported with the help of educational programmes, interactive learning platforms, and age-targeted digital resources. The most important question that families and teachers should resolve is how to lead the child to a balanced and meaningful use of digital space as opposed to unlimited screen time. Development of routines, offline activities, and parental engagement should be a key measure toward healthy development in the digital era.

These consequences of child development point to the necessity of the cooperation of parents, teachers, healthcare providers, and policymakers. Families ought to be assisted in producing realistic mechanisms of managing the hours of screen time of children and encouraging healthy digital lifestyles. Digital literacy programmes can be incorporated in schools and instruct children about responsible use of technology and skills in critical thinking and self-regulation. On a larger scale, policies and guidelines that would encourage child-friendly media can be used to ensure that digital technology has a positive impact on the overall growth of children. These challenges and implications, therefore, are critical to developing balanced growth and behavioral well-being in a fast-changing digital society.

Parents' and educators' recommendations :

The rampant introduction of digital technology in the lives of children needs careful advice on behalf of parents and teachers to make sure that screen time does not adversely affect their development

but instead promotes behavioral concerns. The optimal strategies must target equal application of technology, orderly supervision, and encouragement of good behaviors. Through a joint collective effort of families and educational institutions, children can be taught responsible digital behavior without emotional and social suffering.

Clear and consistent guidelines on screen use are one of the recommendations that would be important. The appropriate time limits in using digital devices should be specified by the parents and educators depending on the age of the child and his daily schedule. Scheduled time spent on physical activities, academic learning, creative games, and time with their parents may help avoid spending too much time on screens. Predictable routines will make children stick to the habit of leading balanced lives and not being dependent on digital gadgets to get entertained.

Active parental participation is the other important aspect in shaping the digital life of children. Parents are supposed to have a check on the nature of the digital content that their children are viewing, and that content must be of the right kind depending on their level of development. Discussing the content on the Internet and prompting the child to ask questions and clarify the possible dangers of spending a lot of time on the screen can make the children learn to think critically and be responsible in the way they use the media. Digital co-viewing or inviting a child to join in digital activities together may also enhance communication between parents and children and open learning opportunities.

Teachers also have a significant contribution to making technology usage in classrooms responsible. Digital tools should be incorporated in schools so that they can strengthen learning and not make interactions with others and real-world experiences meaningless. One of the ways a teacher can ensure that the students utilize technology to conduct research, innovation, and collaboration is also to stress the significance of offline tasks like reading, collaborative discussion, and body movement. Digital literacy education can also contribute to the education of children to know how to manoeuvre online settings safely and responsibly.

The other notable recommendation is promoting other types of activities that promote social and emotional growth. The activities that are encouraged by parents and educators should include outdoor play, sports, art, and interpersonal communication. The experiences also enable children to develop social competencies, emotional stability, and physical well-being, which lead to balanced behavioral development. Children who have the opportunity to use a variety of activities will not be inclined to overuse digital devices to be stimulated or relaxed.

Lastly, regular underage communication between parents and educators can reinforce the management of the digital habits of children. Even schools can arrange workshops or informational programmes that offer information on how to use the technology healthily, whereas parents can discuss

with the school the media behavior of their children at home. Joint approaches are used to make sure that the children get the same messages regarding responsible digital interaction at home and at school.

On the whole, the management of the use of digital screens must be responsible by means of balanced techniques comprising supervision, education, and supportive communication. With planned guidance and encouragement of various forms of development among children by parents and teachers, children may develop normal relationships with digital technology and adapt positively to behavioral changes.

Conclusion :

The digital technology has already become an asset of the modern world of childhood, and it affects the way children study, communicate, and relax. The growing access to smartphones, tablets, and other digital devices has created more opportunities to acquire education and entertainment but has brought the question of what may happen to behavioral development of children because of such excessive screen use. This paper indicates that screen time activity is highly correlated with all the factors that affect child behavioral outcomes such as emotional control, attention regulation, and social interaction. Although moderated and intentional use of digital media can aid learning and creativity, uncontrolled and high exposure to the screens can cause behavioral difficulties like short attention span, irritability, and less face to face interaction with other people.

The results also underline that the effect of digital screen interaction cannot be interpreted independently of the family. Parenting style is an important moderating factor that influences the interaction of children with technology and their behavioral response to digital experiences. Parenting strategies that are supportive and responsive but based on the integration of guidance, monitoring, and open communication may assist children in building better digital practices and self-regulation skills. Conversely, lack of adequacy in supervision or inconsistent regulation can lead to the tendency of over-screening and other associated behavioral issues.

In general, the association between screen time activities and child behavioral adaptation is a complicated phenomenon that depends on various factors such as the quality of media content, exposure time, and parental intervention. Balanced digital habits should thus be encouraged by making parents more informed in their practices of digital parenting as well as receiving educational advice. Through responsible use of technology and promoting various developmental interactions, families and educators can make sure that digital technology turns out to be a positive force that helps children to develop well and maintain good behavior.

Future Research Directions :

Future research can expand this study by conducting empirical investigations involving parents, teachers, and children to better understand real-world digital media practices. Longitudinal studies could also examine how early exposure to digital screens affects behavioral adjustment over time. Furthermore, comparative research across different cultural and socio-economic settings may provide deeper insights into how family environments influence children's digital engagement and behavioral development.

REFERENCES :

- American Academy of Pediatrics. (2016). Media and young minds. Pediatrics, 138(5), e20162591. https://doi.org/10.1542/peds.2016-2591
- Baumrind, D. (1967). Childcare practices anteceding three patterns of preschool behavior. Genetic Psychology Monographs, 75, 43–88.
- Maccoby, E. E., & Martin, J. A. (1983). Socialization in the context of the family: Parent–child interaction. In E. M. Hetherington (Ed.), Handbook of Child Psychology: Vol. 4. Socialization, personality, and social development (pp. 1–101). New York: Wiley.
- Nathanson, A. I. (2001). Parents versus peers: Exploring the significance of peer mediation of antisocial television. Communication Research, 28(3), 251–274. https://doi.org/10.1177/009365001028003001
- Stiglic, N., & Viner, R. M. (2019). Effects of screentime on the health and well-being of children and adolescents: A systematic review of reviews. BMJ Open, 9(1), e023191. https://doi.org/10.1136/bmjopen-2018-023191
- Twenge, J. M., & Campbell, W. K. (2018). Associations between screen time and lower psychological well-being among children and adolescents: Evidence from a population-based study. Preventive Medicine Reports, 12, 271–283. https://doi.org/10.1016/j.pmedr.2018.10.003

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 115-125

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

दोहरी परिधीयता (Double Marginality) : थारू जनजातीय महिलाओं का सामाजिक समावेशन

संतोष कुमार
सहायक प्रोफेसर (समाजशास्त्र)
वीर बहादुर सिंह राजकीय महाविद्यालय, कैम्पियरगंज, गोरखपुर–273158 (उत्तर प्रदेश)

सार :

भारत में जनजातीय समुदायों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति लंबे समय से शोध का विषय रही है, किंतु जनजातीय महिलाओं की विशिष्ट परिस्थितियों पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है। विशेष रूप से थारू जनजातीय महिलाएँ "दोहरी परिधीयता" (Double Marginality) की स्थिति का सामना करती हैं, जहाँ वे एक ओर जनजातीय समुदाय से जुड़े सामाजिक–आर्थिक हाशियाकरण से प्रभावित होती हैं और दूसरी ओर लैंगिक असमानताओं के कारण अतिरिक्त चुनौतियों का अनुभव करती हैं। यह शोध थारू जनजातीय महिलाओं के सामाजिक समावेशन की वर्तमान स्थिति, उनके सामने आने वाली संरचनात्मक बाधाओं तथा उनके सशक्तिकरण की संभावनाओं का विश्लेषण करने का प्रयास करता है। अध्ययन में सामाजिक समावेशन के विभिन्न आयामों 'जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच, आर्थिक भागीदारी, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सांस्कृतिक पहचान' का विश्लेषण किया गया है। अनुसंधान के लिए गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों प्रकार की विधियों का उपयोग किया गया है, जिनमें क्षेत्रीय सर्वेक्षण, साक्षात्कार, तथा उपलब्ध सरकारी और शैक्षणिक स्रोतों का विश्लेषण शामिल है।

प्रारंभिक निष्कर्ष दर्शाते हैं कि शिक्षा की सीमित उपलब्धता, आर्थिक संसाधनों की कमी, पारंपरिक सामाजिक संरचनाएँ और प्रशासनिक उपेक्षा थारू महिलाओं के सामाजिक समावेशन को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। इसके बावजूद, स्वयं सहायता समूहों, सरकारी योजनाओं तथा सामुदायिक संगठनों के माध्यम से उनके सशक्तिकरण के नए अवसर भी उभरते हुए दिखाई देते हैं। यह अध्ययन इस बात पर बल देता है कि थारू जनजातीय महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए "दोहरी परिधीयता" की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रभावी सामाजिक समावेशन के लिए ऐसी नीतियों और कार्यक्रमों की आवश्यकता है जो जनजातीय पहचान और लैंगिक समानता दोनों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा, आर्थिक अवसरों और सामाजिक सुरक्षा को सुदृढ़ करें। इस प्रकार यह शोध न केवल थारू महिलाओं की सामाजिक वास्तविकताओं को उजागर करता है, बल्कि उनके समावेशी विकास के लिए नीतिगत सुझाव भी प्रस्तुत करता है।

संकेत शब्द : थारू जनजाति, दोहरी परिधीयता, जनजातीय महिलाएँ, सामाजिक समावेशन, लैंगिक असमानता, जनजातीय सशक्तिकरण, ग्रामीण विकास, सामाजिक न्याय।

परिचय :

भारतीय समाज विविधताओं से परिपूर्ण है, जहाँ अनेक जातीय, सांस्कृतिक और भाषाई समुदाय अपनी विशिष्ट पहचान के साथ निवास करते हैं। इन समुदायों में जनजातीय समाज का एक महत्वपूर्ण स्थान है, जो अपनी परंपराओं, जीवन शैली और सांस्कृतिक विरासत के लिए जाना जाता है। यद्यपि भारतीय संविधान ने अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास के लिए अनेक प्रावधान किए हैं, फिर भी अनेक जनजातीय समुदाय आज भी विकास की मुख्यधारा से पूर्ण रूप से नहीं जुड़ पाए हैं। विशेष रूप से जनजातीय महिलाओं की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक जटिल और चुनौतीपूर्ण बनी हुई है।

थारू जनजाति भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में से एक है, जो मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और नेपाल के तराई क्षेत्र में निवास करती है। थारू समाज की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराएँ, सामाजिक संरचनाएँ और जीवन–निर्वाह की प्रणालियाँ हैं। पारंपरिक रूप से यह समुदाय कृषि, वन आधारित गतिविधियों और स्थानीय संसाधनों पर निर्भर रहा है। हालांकि आधुनिक विकास प्रक्रियाओं, भूमि स्वामित्व में परिवर्तन, वन नीतियों और सामाजिक संरचनाओं के प्रभाव ने इस समुदाय के जीवन में कई प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। इन परिवर्तनों का प्रभाव विशेष रूप से थारू महिलाओं के जीवन पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

जनजातीय महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए "दोहरी परिधीयता" (Double Marginality) की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि जनजातीय महिलाएँ दो स्तरों पर हाशियाकरण का सामना करती हैं – पहला, जनजातीय समुदाय से संबंधित होने के कारण सामाजिक और आर्थिक विकास की मुख्यधारा से दूरी और दूसरा, महिला होने के कारण लैंगिक असमानताओं का सामना। इस प्रकार वे सामाजिक संरचना में दोहरी चुनौतियों के बीच अपनी पहचान और अधिकारों के लिए संघर्ष करती हैं।

स्रोत : https://www.bhaskar.com/local/uttar-pradesh/bahraich/news/women-of-tharu-tribe-showed-a-new-path-135828814.html

थारू जनजातीय महिलाओं के संदर्भ में यह स्थिति और अधिक जटिल हो जाती है। एक ओर वे पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रभाव में रहती हैं, वहीं दूसरी ओर आधुनिक विकास प्रक्रियाओं में उनकी भागीदारी सीमित रहती है। शिक्षा की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच, आर्थिक अवसरों की कमी और निर्णय प्रक्रिया में कम भागीदारी जैसे अनेक कारक उनके सामाजिक समावेशन को प्रभावित करते हैं। हालांकि इसके साथ ही यह भी देखा गया है कि कई स्थानों पर थारू महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों, स्थानीय संगठनों और सरकारी योजनाओं के माध्यम से अपने सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो रही हैं।

सामाजिक समावेशन का अर्थ केवल समाज की मुख्यधारा में शामिल होना नहीं है, बल्कि इसका आशय यह भी है कि समाज के प्रत्येक वर्ग को समान अवसर, संसाधनों तक पहुँच और निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी प्राप्त हो। जब जनजातीय महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में समान अवसर मिलते हैं, तब ही वास्तविक सामाजिक समावेशन संभव हो पाता है। इसलिए थारू जनजातीय महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करना न केवल एक सामाजिक आवश्यकता है, बल्कि यह समावेशी विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम भी है।

वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य थारू जनजातीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनके सामने आने वाली चुनौतियों तथा सामाजिक समावेशन की संभावनाओं का विश्लेषण करना है। साथ ही यह शोध यह समझने का प्रयास करता है कि "दोहरी परिधीयता" की स्थिति किस प्रकार उनके जीवन, अवसरों और सामाजिक सहभागिता को प्रभावित करती है। इस अध्ययन के माध्यम से यह अपेक्षा की जाती है कि थारू जनजातीय महिलाओं के सशक्तिकरण और समावेशी विकास के लिए अधिक प्रभावी नीतियों और कार्यक्रमों की दिशा में महत्वपूर्ण संकेत प्राप्त हो सकेंगे।

स्रोत : https://www.indiatimes.com/news/india/know-all-about-tharu-tribe-where-new-bride-offers-food-to-groom-with-her-feet/articleshow/122473998.html

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि :

किसी भी सामाजिक अध्ययन को समझने के लिए उसके पीछे कार्य करने वाले सिद्धांतों और अवधारणाओं का विश्लेषण आवश्यक होता है। थारू जनजातीय महिलाओं के सामाजिक समावेशन के अध्ययन में "दोहरी परिधीयता" (Double Marginality), सामाजिक बहिष्करण (Social Exclusion), लैंगिक असमानता

(Gender Inequality) और सशक्तिकरण (Empowerment) जैसे सिद्धांत महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं। ये सिद्धांत यह स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार सामाजिक संरचनाएँ, आर्थिक संसाधनों का वितरण और सांस्कृतिक मान्यताएँ किसी विशेष समुदाय या वर्ग की स्थिति को प्रभावित करती हैं।

सबसे पहले, दोहरी परिधीयता की अवधारणा इस अध्ययन की केंद्रीय सैद्धांतिक आधारशिला है। इस अवधारणा के अनुसार समाज के कुछ समूह ऐसे होते हैं जो एक से अधिक कारणों से हाशिए पर स्थित होते हैं। जनजातीय महिलाएँ इसी स्थिति का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं, क्योंकि वे एक ओर जनजातीय समुदाय से संबंधित होने के कारण सामाजिक–आर्थिक विकास की मुख्यधारा से दूर रहती हैं और दूसरी ओर महिला होने के कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था से उत्पन्न असमानताओं का सामना करती हैं। इस प्रकार उनकी स्थिति दो स्तरों पर सीमित अवसरों और संसाधनों से जुड़ी होती है, जिसे दोहरी परिधीयता कहा जाता है।

स्रोत : https://gender.cgiar.org/news/breaking-barriers-how-women-led-farmer-producer-companies-are-changing-agriculture-odisha

दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत सामाजिक बहिष्करण (Social Exclusion) से संबंधित है। सामाजिक बहिष्करण का अर्थ है कि समाज के कुछ वर्गों को शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक अवसरों, राजनीतिक भागीदारी और सामाजिक संसाधनों से व्यवस्थित रूप से दूर रखा जाना। जनजातीय समुदायों के संदर्भ में यह स्थिति अक्सर ऐतिहासिक, भौगोलिक और आर्थिक कारणों से उत्पन्न होती है। थारू जनजातीय महिलाओं के मामले में यह बहिष्करण और अधिक स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि उन्हें सामाजिक संरचना में सीमित अवसर प्राप्त होते हैं और कई बार उनकी आवाज निर्णय प्रक्रिया में पर्याप्त रूप से शामिल नहीं होती।

तीसरा महत्वपूर्ण सैद्धांतिक दृष्टिकोण लैंगिक असमानता (Gender Inequality) का है। अधिकांश समाजों में पुरुष और महिलाओं के बीच अधिकारों, संसाधनों और अवसरों के वितरण में असमानता देखी जाती है। जनजातीय समाजों में कई बार महिलाओं की आर्थिक भूमिका महत्वपूर्ण होने के बावजूद उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में पर्याप्त स्थान नहीं मिलता। यह असमानता शिक्षा, स्वास्थ्य, संपत्ति के अधिकार और सामाजिक सम्मान जैसे अनेक क्षेत्रों में दिखाई देती है। इसलिए जनजातीय महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण करते समय लैंगिक दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है।

इसके साथ ही सशक्तिकरण (Empowerment) का सिद्धांत भी इस अध्ययन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण

है। सशक्तिकरण का आशय यह है कि व्यक्ति या समुदाय को ऐसे अवसर और संसाधन प्रदान किए जाएँ जिनके माध्यम से वे अपने जीवन से संबंधित निर्णय स्वयं ले सकें और सामाजिक–आर्थिक प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी कर सकें। जब महिलाओं को शिक्षा, आर्थिक अवसर, संगठनात्मक सहयोग और कानूनी अधिकार प्राप्त होते हैं, तब उनका आत्मविश्वास बढ़ता है और वे समाज में अधिक प्रभावी भूमिका निभाने लगती हैं। थारू जनजातीय महिलाओं के संदर्भ में स्वयं सहायता समूह, सरकारी योजनाएँ और सामुदायिक संगठन उनके सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

अंततः सामाजिक समावेशन (Social Inclusion) की अवधारणा इन सभी सिद्धांतों को एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करती है। सामाजिक समावेशन का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर, सम्मान और संसाधनों तक पहुँच प्राप्त हो। इसका अर्थ केवल आर्थिक विकास नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और सहभागिता को भी बढ़ावा देना है। जब जनजातीय महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी के क्षेत्र में समान अवसर मिलते हैं, तब ही वास्तविक समावेशन संभव हो पाता है।

इस प्रकार दोहरी परिधीयता, सामाजिक बहिष्करण, लैंगिक असमानता और सशक्तिकरण जैसे सैद्धांतिक दृष्टिकोण थारू जनजातीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति को समझने के लिए एक व्यापक ढाँचा प्रदान करते हैं। इन सिद्धांतों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि उनकी सामाजिक चुनौतियाँ केवल व्यक्तिगत स्तर की नहीं हैं, बल्कि वे व्यापक सामाजिक संरचनाओं और नीतिगत व्यवस्थाओं से भी जुड़ी हुई हैं। इसलिए उनके समावेशी विकास के लिए ऐसे उपायों की आवश्यकता है जो सामाजिक, आर्थिक और लैंगिक समानता को एक साथ ध्यान में रखें।

थारू जनजातीय महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति :

थारू जनजाति भारत के प्रमुख आदिवासी समुदायों में से एक है, जो मुख्यतः उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड तथा नेपाल के तराई क्षेत्र में निवास करती है। इस समुदाय की सामाजिक और आर्थिक संरचना प्राकृतिक संसाधनों, कृषि और पारंपरिक जीवन शैली पर आधारित रही है। थारू समाज में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वे परिवार और समुदाय दोनों के स्तर पर कई प्रकार की जिम्मेदारियों का निर्वहन करती हैं। इसके बावजूद उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति कई चुनौतियों से प्रभावित दिखाई देती है।

सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो थारू महिलाएँ पारिवारिक और सामुदायिक जीवन का अभिन्न हिस्सा होती हैं। वे घरेलू कार्यों के साथ–साथ कृषि गतिविधियों, पशुपालन, खाद्य संग्रहण और स्थानीय हस्तशिल्प जैसे कार्यों में सक्रिय भागीदारी निभाती हैं। कई स्थानों पर यह भी देखा गया है कि महिलाएँ खेतों में श्रम, बीज रोपण, फसल कटाई और खाद्य प्रसंस्करण जैसे कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार उनकी श्रम भागीदारी परिवार की आजीविका को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। हालांकि सामाजिक निर्णयों और सामुदायिक नेतृत्व में उनकी भागीदारी सीमित होती है, जिससे उनकी भूमिका कई बार अदृश्य रह जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में भी थारू जनजातीय महिलाओं की स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर पाई जाती है। ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में रहने के कारण शिक्षा तक पहुँच सीमित होती है। कई परिवारों में आर्थिक कठिनाइयों और पारंपरिक सोच के कारण बालिकाओं की शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दी जाती। परिणामस्वरूप महिलाओं में साक्षरता का स्तर कम

रहता है, जिससे उनके लिए रोजगार, स्वास्थ्य जागरूकता और सामाजिक अधिकारों की जानकारी प्राप्त करना कठिन हो जाता है। हालांकि हाल के वर्षों में सरकारी योजनाओं और सामाजिक संगठनों के प्रयासों से शिक्षा के प्रति जागरूकता धीरे–धीरे बढ़ रही है।

आर्थिक दृष्टि से थारू महिलाएँ मुख्यतः कृषि, मजदूरी, वन उत्पादों के संग्रहण और छोटे–मोटे घरेलू उद्योगों पर निर्भर रहती हैं। उनकी आय अक्सर अनौपचारिक और अस्थायी होती है, जिसके कारण आर्थिक स्थिरता प्राप्त करना कठिन होता है। कई बार भूमि स्वामित्व पुरुषों के नाम पर होने के कारण महिलाओं को आर्थिक निर्णयों में सीमित अधिकार प्राप्त होते हैं। इसके बावजूद स्वयं सहायता समूहों और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के माध्यम से कई थारू महिलाएँ छोटे–छोटे उद्यमों, बचत गतिविधियों और सामूहिक आर्थिक पहलों में भाग लेने लगी हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में कुछ सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिल रहा है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी कई प्रकार की चुनौतियाँ मौजूद हैं। दूरस्थ क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, पोषण संबंधी समस्याएँ और स्वास्थ्य जागरूकता का अभाव महिलाओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। गर्भावस्था और मातृत्व से संबंधित सेवाओं तक पर्याप्त पहुँच न होने के कारण कई बार महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी जोखिमों का सामना करना पड़ता है। हालांकि सरकार द्वारा संचालित स्वास्थ्य योजनाओं और आंगनवाड़ी सेवाओं के माध्यम से इन समस्याओं को कम करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराएँ भी महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करती हैं। कई बार परंपरागत मान्यताएँ और सामाजिक संरचनाएँ महिलाओं की स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता को सीमित कर देती हैं। फिर भी यह भी देखा गया है कि थारू समाज में महिलाओं की श्रम भागीदारी और सामुदायिक सहयोग की भावना मजबूत होती है, जो उनके सामाजिक सशक्तिकरण के लिए आधार प्रदान करती है।

समग्र रूप से देखा जाए तो थारू जनजातीय महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत करती है। एक ओर वे परिवार और समाज के आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, वहीं दूसरी ओर शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक अवसरों और निर्णय प्रक्रिया में सीमित भागीदारी जैसी समस्याओं का सामना करती हैं। इसलिए उनके समग्र विकास के लिए ऐसी नीतियों और कार्यक्रमों की आवश्यकता है जो शिक्षा, आर्थिक सशक्तिकरण और सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा दें, ताकि वे समाज की मुख्यधारा में अधिक प्रभावी रूप से शामिल हो सकें।

दोहरी परिधीयता के आयाम :

दोहरी परिधीयता (Double Marginality) की अवधारणा उन सामाजिक परिस्थितियों को स्पष्ट करती है, जहाँ किसी व्यक्ति या समुदाय को एक साथ दो या अधिक स्तरों पर हाशिए की स्थिति का सामना करना पड़ता है। जनजातीय महिलाओं के संदर्भ में यह स्थिति विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे एक ओर जनजातीय पहचान के कारण सामाजिक–आर्थिक विकास की मुख्यधारा से दूर रहती हैं और दूसरी ओर लैंगिक असमानताओं के कारण समाज में सीमित अवसर प्राप्त करती हैं। थारू जनजातीय महिलाओं के जीवन में दोहरी परिधीयता कई आयामों में दिखाई देती है, जिनका प्रभाव उनके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पर पड़ता है।

1. सामाजिक आयाम :

दोहरी परिधीयता का पहला आयाम सामाजिक संरचना से जुड़ा हुआ है। थारू जनजातीय महिलाएँ एक

ओर मुख्यधारा के समाज से अलग रहने वाले जनजातीय समुदाय का हिस्सा होती हैं और दूसरी ओर अपने समुदाय के भीतर भी पारंपरिक सामाजिक व्यवस्थाओं के कारण सीमित भूमिका निभाती हैं। कई बार सामाजिक मान्यताएँ और परंपराएँ महिलाओं की स्वतंत्रता, शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में भागीदारी को सीमित कर देती हैं। इसके कारण वे सामाजिक निर्णयों और नेतृत्व की प्रक्रियाओं में अपेक्षाकृत कम दिखाई देती हैं।

2. आर्थिक आयाम :

आर्थिक क्षेत्र में भी दोहरी परिधीयता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। थारू महिलाएँ कृषि कार्य, मजदूरी, वन उत्पादों के संग्रहण और घरेलू उद्योगों में सक्रिय रूप से योगदान देती हैं, लेकिन उनके श्रम को अक्सर औपचारिक मान्यता नहीं मिलती। भूमि और संसाधनों पर स्वामित्व अधिकांशतः पुरुषों के नाम पर होता है, जिसके कारण आर्थिक निर्णयों में महिलाओं की भूमिका सीमित रहती है। इस स्थिति के कारण उनके पास आर्थिक स्वतंत्रता और स्थिर आय के अवसर कम होते हैं।

3. शैक्षिक आयाम :

शिक्षा भी दोहरी परिधीयता का एक महत्वपूर्ण आयाम है। जनजातीय क्षेत्रों में शैक्षिक संसाधनों की कमी, विद्यालयों की दूरी और आर्थिक सीमाएँ बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त कई परिवारों में पारंपरिक सोच के कारण लड़कियों की शिक्षा को प्राथमिकता नहीं दी जाती। परिणामस्वरूप महिलाओं में साक्षरता का स्तर कम रहता है, जिससे वे सामाजिक अधिकारों, सरकारी योजनाओं और रोजगार के अवसरों से पूर्ण रूप से लाभ नहीं उठा पातीं।

4. स्वास्थ्य और पोषण का आयाम :

स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी थारू जनजातीय महिलाओं को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। दूरस्थ क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की सीमित उपलब्धता, पोषण संबंधी समस्याएँ और स्वास्थ्य जागरूकता की कमी उनके जीवन को प्रभावित करती हैं। गर्भावस्था और मातृत्व से जुड़ी सेवाओं तक पर्याप्त पहुँच न होने के कारण कई बार स्वास्थ्य संबंधी जोखिम बढ़ जाते हैं। यह स्थिति सामाजिक और आर्थिक दोनों प्रकार की सीमाओं से जुड़ी होती है।

5. सांस्कृतिक और राजनीतिक आयाम :

सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तर पर भी दोहरी परिधीयता दिखाई देती है। जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक पहचान कई बार मुख्यधारा के सामाजिक और राजनीतिक ढाँचों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त कर पाती। इसके साथ ही महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी भी सीमित रहती है। स्थानीय संस्थाओं और पंचायतों में महिलाओं की उपस्थिति बढ़ने के बावजूद निर्णय प्रक्रिया में उनका प्रभाव अभी भी कई स्थानों पर सीमित देखा जाता है।

इस प्रकार थारू जनजातीय महिलाओं के जीवन में दोहरी परिधीयता सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक सभी स्तरों पर दिखाई देती है। यह केवल व्यक्तिगत परिस्थितियों का परिणाम नहीं है, बल्कि व्यापक सामाजिक संरचनाओं और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं से जुड़ी हुई स्थिति है। इसलिए इस समस्या के समाधान के लिए ऐसी नीतियों और कार्यक्रमों की आवश्यकता है जो जनजातीय समुदायों के विकास के साथ–साथ महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक सशक्तिकरण और सामाजिक भागीदारी को भी समान रूप से बढ़ावा दें।

सामाजिक समावेशन की चुनौतियाँ और संभावनाएँ :

सामाजिक समावेशन का अर्थ यह है कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर, सम्मान और संसाधनों तक पहुँच प्राप्त हो, ताकि वे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग ले सकें। जनजातीय समुदायों के संदर्भ में सामाजिक समावेशन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक कारणों से कई जनजातीय समूह लंबे समय तक विकास की मुख्यधारा से दूर रहे हैं। थारू जनजातीय महिलाओं के संदर्भ में यह विषय और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि वे दोहरी परिधीयता की स्थिति का सामना करती हैं। इसलिए उनके सामाजिक समावेशन की प्रक्रिया में कई प्रकार की चुनौतियाँ और संभावनाएँ दोनों दिखाई देती हैं।

सामाजिक समावेशन की प्रमुख चुनौतियाँ :

सबसे पहली चुनौती शिक्षा की सीमित उपलब्धता से जुड़ी हुई है। कई थारू जनजातीय क्षेत्र ग्रामीण और दूरस्थ इलाकों में स्थित हैं, जहाँ शिक्षा की सुविधाएँ पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हैं। विद्यालयों की दूरी, आर्थिक सीमाएँ और सामाजिक सोच के कारण कई बार बालिकाएँ नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त नहीं कर पातीं। शिक्षा की कमी के कारण महिलाओं को रोजगार, स्वास्थ्य जागरूकता और सरकारी योजनाओं की जानकारी प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

दूसरी महत्वपूर्ण चुनौती आर्थिक संसाधनों की कमी है। थारू जनजातीय महिलाएँ मुख्यतः कृषि कार्य, मजदूरी और वन आधारित गतिविधियों पर निर्भर रहती हैं। इन कार्यों से मिलने वाली आय अक्सर अस्थिर और सीमित होती है। भूमि और संपत्ति पर स्वामित्व अधिकतर पुरुषों के पास होने के कारण महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता भी सीमित रहती है। इससे वे आर्थिक निर्णयों में सक्रिय भूमिका निभाने में सक्षम नहीं हो पातीं।

तीसरी चुनौती स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच से संबंधित है। कई जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाएँ पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं होतीं। स्वास्थ्य जागरूकता की कमी, पोषण संबंधी समस्याएँ और चिकित्सा सेवाओं की दूरी महिलाओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। विशेष रूप से मातृत्व और बाल स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएँ कई बार गंभीर रूप ले लेती हैं।

चौथी चुनौती सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं से जुड़ी हुई है। पारंपरिक सामाजिक मान्यताएँ और पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण कई बार महिलाओं की स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता को सीमित कर देते हैं। इसके कारण वे सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं में कम भागीदारी कर पाती हैं। हालांकि थारू समाज में महिलाओं की श्रम भागीदारी महत्वपूर्ण होती है, फिर भी सामाजिक नेतृत्व के स्तर पर उनकी उपस्थिति अपेक्षाकृत कम दिखाई देती है।

सामाजिक समावेशन की संभावनाएँ :

इन चुनौतियों के बावजूद थारू जनजातीय महिलाओं के सामाजिक समावेशन के लिए कई सकारात्मक संभावनाएँ भी मौजूद हैं। सबसे महत्वपूर्ण संभावना शिक्षा और जागरूकता के विस्तार से जुड़ी हुई है। हाल के वर्षों में सरकारी योजनाओं, गैर–सरकारी संगठनों और सामुदायिक पहल के माध्यम से शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है। इससे धीरे–धीरे बालिकाओं की शिक्षा में वृद्धि हो रही है और महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग हो रही हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण संभावना आर्थिक सशक्तिकरण के माध्यम से दिखाई देती है। स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups), ग्रामीण विकास कार्यक्रम और छोटे उद्यमों के माध्यम से कई महिलाएँ आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने लगी हैं। इससे उन्हें बचत, ऋण और छोटे व्यवसायों के अवसर प्राप्त हो रहे हैं, जो उनकी आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ाने में सहायक हैं।

तीसरी संभावना सरकारी नीतियों और योजनाओं से जुड़ी हुई है। सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाएँ 'जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और महिला सशक्तिकरण से संबंधित कार्यक्रम' जनजातीय महिलाओं के जीवन स्तर को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यदि इन योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए, तो सामाजिक समावेशन की प्रक्रिया अधिक मजबूत हो सकती है।

इसके अतिरिक्त स्थानीय नेतृत्व और सामुदायिक सहभागिता भी एक महत्वपूर्ण संभावना के रूप में उभर रही है। पंचायतों और स्थानीय संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी बढ़ने से उन्हें निर्णय प्रक्रिया में अपनी भूमिका निभाने का अवसर मिल रहा है। इससे सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सकारात्मक प्रभाव दिखाई देने लगा है। इस प्रकार थारू जनजातीय महिलाओं के सामाजिक समावेशन की प्रक्रिया में कई चुनौतियाँ मौजूद हैं, लेकिन साथ ही अनेक संभावनाएँ भी दिखाई देती हैं। यदि शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक अवसर और सामाजिक जागरूकता को एक साथ बढ़ावा दिया जाए, तो यह प्रक्रिया अधिक प्रभावी हो सकती है। इसलिए आवश्यक है कि नीतियाँ और कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए जाएँ जो जनजातीय महिलाओं की वास्तविक आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उनके समावेशी और सशक्त विकास को सुनिश्चित करें।

निष्कर्ष :

थारू जनजातीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि वे समाज में दोहरी परिधीयता की स्थिति का सामना करती हैं। एक ओर वे जनजातीय समुदाय से संबंधित होने के कारण सामाजिक और आर्थिक विकास की मुख्यधारा से अपेक्षाकृत दूर रहती हैं, वहीं दूसरी ओर लैंगिक असमानताओं के कारण उन्हें अतिरिक्त चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस दोहरी स्थिति के कारण उनके जीवन के विभिन्न क्षेत्रों 'जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक अवसर और सामाजिक भागीदारी' पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि थारू महिलाएँ परिवार और समुदाय के आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। वे कृषि, मजदूरी, वन उत्पादों के संग्रहण और घरेलू कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। इसके बावजूद उनके श्रम को अक्सर औपचारिक मान्यता नहीं मिलती और आर्थिक निर्णयों में उनकी भूमिका सीमित रहती है। शिक्षा की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच, आर्थिक संसाधनों की कमी और पारंपरिक सामाजिक संरचनाएँ उनके सामाजिक समावेशन में प्रमुख बाधाएँ उत्पन्न करती हैं।

हालाँकि इन चुनौतियों के बावजूद सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया धीरे–धीरे दिखाई देने लगी है। शिक्षा के प्रसार, स्वयं सहायता समूहों की सक्रियता, सरकारी योजनाओं और सामुदायिक संगठनों के प्रयासों के माध्यम से थारू महिलाओं में जागरूकता और आत्मविश्वास बढ़ रहा है। यह परिवर्तन संकेत देता है कि यदि उपयुक्त अवसर और संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ, तो थारू जनजातीय महिलाएँ सामाजिक और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

सुझाव :

थारू जनजातीय महिलाओं के समावेशी विकास को सुनिश्चित करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं :

1. **शिक्षा को प्राथमिकता देना :** जनजातीय क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए विद्यालयों की उपलब्धता बढ़ाई जानी चाहिए। साथ ही छात्रवृत्ति, आवासीय विद्यालय और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षा के प्रति सकारात्मक वातावरण बनाया जाना आवश्यक है।
2. **आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देना :** महिलाओं को स्वरोजगार, कौशल विकास और छोटे उद्यमों से जोड़ने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जाने चाहिए। स्वयं सहायता समूहों और सूक्ष्म वित्त योजनाओं को मजबूत बनाकर महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ाया जा सकता है।
3. **स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार :** जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है। विशेष रूप से मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य से संबंधित सेवाओं को सुदृढ़ करने के लिए स्वास्थ्य केंद्रों, पोषण कार्यक्रमों और स्वास्थ्य जागरूकता अभियानों को प्रभावी रूप से लागू किया जाना चाहिए।
4. **सामाजिक जागरूकता और लैंगिक समानता :** समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए जागरूकता कार्यक्रमों की आवश्यकता है। इससे महिलाओं के अधिकारों, शिक्षा और सामाजिक भागीदारी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है।
5. **स्थानीय नेतृत्व और भागीदारी को प्रोत्साहन :** पंचायत और स्थानीय संस्थाओं में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। इससे वे निर्णय प्रक्रिया में अपनी भूमिका निभा सकेंगी और सामुदायिक विकास में योगदान दे सकेंगी।

समग्र रूप से देखा जाए तो थारू जनजातीय महिलाओं का सामाजिक समावेशन केवल एक सामाजिक आवश्यकता ही नहीं, बल्कि समावेशी और संतुलित विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यदि शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक अवसर और सामाजिक समानता को समन्वित रूप से बढ़ावा दिया जाए, तो दोहरी परिधीयता की स्थिति को धीरे–धीरे कम किया जा सकता है। इससे थारू जनजातीय महिलाएँ समाज की मुख्यधारा में अधिक सशक्त और सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकेंगी।

संदर्भ :

- Bhandari, R. (2013). Socio-Economic Status of Women in Tharu Community. Tribhuvan University, Nepal.
  Available at : https://elibrary.tucl.edu.np/bitstreams/3d422876-6f08-472e-8846-cee2273aea3d/download
- Bam, N. K. (2023). Decision-Making Process of Tharu Women in Their Households. Sudurpashchim Journal.
  Available at: https://www.nepjol.info/index.php/sudurpaschim/article/view/63396
- Puri, S. (2022). Education and Empowerment of Women in Tharu Tribe. Journal of New

Dimensions (Meerut).
Available at: https://jndmeerut.org/wp-content/uploads/2022/01/Vol.-30-No.-4-October-December9.pdf

- Kumari, J., Dubey, R. P., Bose, D. K., & Gupta, V. (2018). A Study on Socio-Economic Condition of Tharu Tribes in Bahraich District of Uttar Pradesh. Journal of Applied and Natural Science, 10(3), 939-944.
- Srivastava, V. K. (2007). The Tharu: Their Arts and Crafts. Anthropological Survey of India, Government of India.
- Chaudhary, S. (2018). Economic Reforms and Social Exclusion: Impact on Marginalized Groups in India. Sage Publications.
- Shukla, P. B. (2016). Status of Adolescent Girls in Tharu Tribe of Lakhimpur Kheri. Anthropological Bulletin, 6(1).
  Available at: https://www.anthropologicalbulletin.in/journals/vol6-2016/Pramod%206%20%281%29%202016.pdf
- Sharma, P. (2012). Changing Scenario of Socio-Economic Status among Tharu Tribe of Uttar Pradesh: A Geographical Analysis.
- Verma, S. C. (2010). Amazing Tharu Women: Empowered and in Control. Intersections: Gender and Sexuality in Asia and the Pacific.
  Available at: https://intersections.anu.edu.au/issue22/verma.htm
- Prasad, M. (2018). Problems of Tharu Tribe in Contemporary India: A Social Scientific Study with Special Reference to Uttar Pradesh.
  Available at: https://rsisinternational.org/journals/ijriss/articles/problems-of-tharu-tribe-in-contemporary-india-a-social-scientific-study-with-special-reference-to-uttar-pradesh/

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 126-143

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

Indigenous Knowledge Systems in Tribal Development : Sustainability, Livelihood Security, and Cultural Preservation

Dr. Krishna Kishor Srivastava

Assistant Professor, Department of Sociology

Patna University, Patna, Bihar.

Abstract :

The Indigenous Knowledge Systems (IKS) constitute a rich reserve of conventional knowledge, practices, and cultural values that have been grown by the tribal communities over the years through their close contact with the natural environment. Such knowledge systems include sustainable technologies of farming, forest management, medicine, water management and community governance, which have in the past served the survival and health of indigenous communities. However, within the last few decades, due to fast modernization, degradation of the environment and socio-economic marginalization, the preservation and transmission of this knowledge have been at risk. Because of the significance of Indigenous knowledge in the modern development discourse, the paper will explore how Indigenous knowledge systems can be used to enhance tribal development with the main emphasis to be made on sustainability, livelihood security, and cultural preservation. The study examines the role of traditional ecological knowledge in sustainable management of resources and resilience of communities in tribal areas. It emphasizes the role of indigenous farming methods, biodiversity management practices and local medicine in the provision of food security and the environment. In addition to this, the paper examines the way in which the livelihoods of natives, like forest jobs, artisanship and traditional agriculture, offer economic security without causing harm to the environment. Simultaneously, the study highlights the cultural aspect of the Indigenous knowledge systems and shows how the rituals, oral traditions, language, and customary institutions contribute significantly to maintaining the tribal identity and social cohesion. The paper also determines the predicaments of the tribal population in maintaining their knowledge systems, such as the loss of

indigenous land rights, the migration, the commercialization of the natural resources, and the lack of support of the indigenous practices in the official development policies. It states that the incorporation of Indigenous knowledge systems into the modern development strategy can establish more inclusive and sustainable tribal development models. Governments and development institutions can contribute to ecological sustainability and socio-cultural continuity by recognizing the worth of indigenous knowledge and including community in policy organizations. The results are that protecting Indigenous knowledge systems can not only empower the tribal populations but also help establish environmentally responsible and culturally aware developmental channels.

Keywords : Indigenous Knowledge Systems, Tribal Development, Sustainable Livelihoods, Cultural Preservation, Traditional Ecological Knowledge, Tribal Communities, Environmental Sustainability, Community-Based Resource Management.

Introduction :

People in the world who are indigenous have an enormous resource of traditional knowledge that has been created and handed down through generations through experience and through interaction with nature. This body of knowledge is also known as Indigenous Knowledge Systems (IKS), which contains traditional practices with regard to agriculture, forest conservation, water management, herbal medicine, food systems and community governance. In contrast to the modern scientific knowledge that is usually documented and institutionalized, indigenous knowledge is most often kept in the forms of oral traditions, cultural activities, and the personal community memory. To tribal societies, such knowledge is not just a useful survival tool but also a fundamental element of their culture and worldview.

Fig. 1 : Source : https://www.undp.org/india/stories/bio-cultural-treasure

In several parts of the world, the Indigenous knowledge systems have traditionally helped the communities to remain in balance with the natural environment. Conventional agricultural practices,

such as, in most cases, are based on crop diversity, intercrop rotations, and natural soil control practices which contribute to ecological sustainability. Equally, the native forest management systems are known to avert loss of biodiversity even as they offer much-needed resources like food and fuel as well as medicinal plants. These practices reveal the long-term adoption of sustainable practices on how tribal communities utilize their resources without degrading the ecology. These knowledge systems are increasingly being viewed as an important alternative towards sustainable development in the backdrop of modern environmental issues like climate change, deforestation and biodiversity loss.

Although of importance, the systems of indigenous knowledge have been sidelined in development policies in most cases. The systems of colonial administration, modernization and development models based on centralization often ignored the importance of the traditional way of doing things and imposed the external mechanisms which were not relevant to ecological context or cultural reality. Consequently, lots of tribal communities were dislocated, deprived of livelihood opportunities, and suffered erosion of traditional knowledge. The erosion of native languages, outmigration of younger generations and the increased role of market-driven economies have only increased the slow extinction of these knowledge systems.

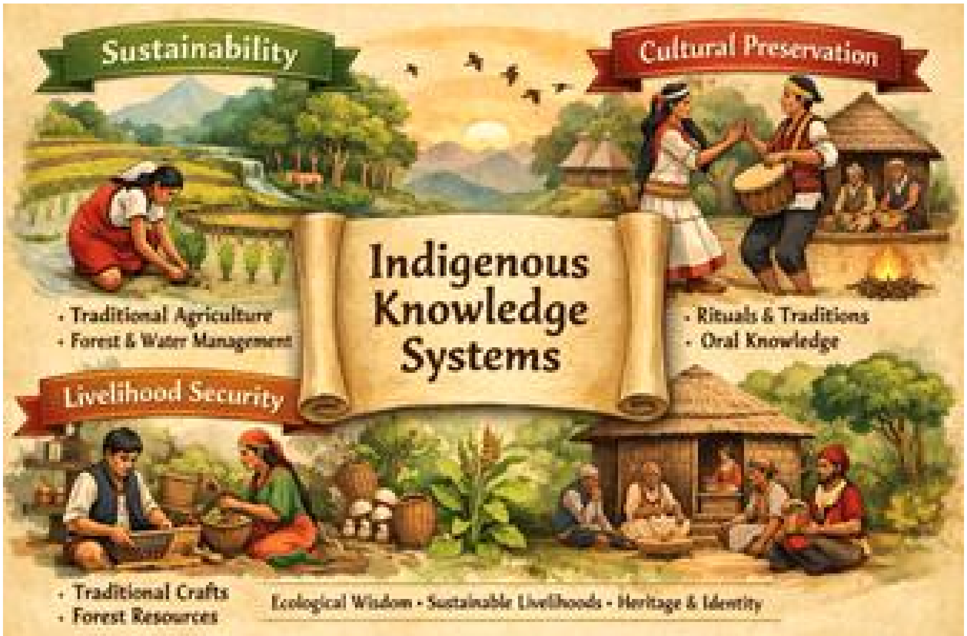

Fig. 2 : Indigenous Knowledge Systems

The development efforts on tribal development in most countries have been conventionally Centered on economic development, development of infrastructure and integration into the mainstream economy. Although the motives behind these measures are to enhance the standards of living, they are usually unaware of the significance of cultural preservation and the use of knowledge that is community-based. A sustainable development in tribal societies should be based on strategies that

should not ignore local culture, empower the communities of indigenous people, and combine the local knowledge with scientific discoveries. This is because the acknowledgement of Indigenous knowledge systems as a source of knowledge that is legitimate will aid in the development of strategies that are environmentally sustainable and culturally sensitive as well.

The other relevant aspect of the Indigenous knowledge systems is that they guarantee livelihood security. Most of the tribal societies rely on forests, rivers, and farmlands to sustain their livelihood and economy. The old trades, like the practice of shifting cultivation, harvesting of non-timber forest products, handcraft, and preparation of herbal medicine, offer livelihood opportunities and ensure that the ecology is not disrupted. These subsistence activities are highly embedded in the indigenous knowledge and are strongly related to the cultural traditions and the social institutions of the community. The preservation of these knowledge systems thus makes it not only economically resilient but also helps preserve the tribal heritage.

Preservation of culture is also a related concept to Indigenous knowledge systems. The tribal customs, rituals, festivals, and traditional forms of governance structure are those that embrace the collective knowledge and values of the community. Such cultural manifestations strengthen the social solidarity, and they offer a system of sharing resources, resolving conflicts, and environmental conservation. In cases where native knowledge is disregarded or threatened by foreign systems, the culture tends to dry up, and people in tribes may lose their identity.

Fig. 3 : Source: https://striveindia.in/indigenous-knowledge/

Over the past few years, policymakers, scholars and development practitioners have started appreciating the value of Indigenous knowledge systems in realizing inclusive and sustainable development. The international systems and the domestic policies are drawing more and more attention to the necessity of safeguarding the rights of the indigenous community, encouraging community

involvement, and providing traditional knowledge of ecology in the development programmes. Through the appreciation and conservation of Indigenous knowledge systems, one can develop development models that enhance environmental sustainability and increase the livelihood of the tribal communities, as well as enhance the cultural heritage of the communities.

Table 1 : Components of Indigenous Knowledge Systems

Indigenous Knowledge Area	**Traditional Practices**	**Development Contribution**
Agriculture	Mixed cropping, crop rotation, organic manure	Soil fertility, food security
Forest Management	Sacred groves, seasonal harvesting	Biodiversity conservation
Water Management	Rainwater harvesting, traditional irrigation	Sustainable water use
Traditional Medicine	Herbal remedies, plant-based treatments	Community healthcare
Community Governance	Customary laws, collective decision making	Social cohesion

Research Objectives :

The present study aims to examine the role of Indigenous Knowledge Systems in promoting sustainable tribal development. The specific objectives of the study are :

- To analyse the significance of Indigenous Knowledge Systems in sustainable resource management among tribal communities.
- To examine the role of traditional knowledge in ensuring livelihood security for tribal populations.
- To explore how Indigenous Knowledge Systems contribute to the preservation of tribal culture and identity.
- To identify the challenges faced by tribal communities in maintaining and transmitting indigenous knowledge.
- To suggest policy measures for integrating Indigenous Knowledge Systems into modern development strategies.

Research Questions :

The study attempts to address the following research questions :

- What role do Indigenous Knowledge Systems play in sustainable tribal development?
- How do traditional ecological practices contribute to environmental sustainability?
- In what ways do indigenous livelihoods ensure economic security for tribal communities?
- How do Indigenous Knowledge Systems help in preserving tribal culture and identity?
- What policy interventions are needed to protect and promote Indigenous Knowledge Systems?

Conceptual Framework and Literature Review :

The term 'Indigenous Knowledge Systems' (IKS) can be described as the knowledge, skills and practices that have been developed by indigenous and tribal communities as a result of a long-term interaction with their environment. This is engrained in the cultural practices, social institutions, and local ecological knowledge. It is passed on through words, observation and involvement in the community. In the context of tribal development, Indigenous knowledge systems are swiftly accepted as a valuable resource towards ensuring sustainable living, environmental sustainability and cultural survival.

In theory, Indigenous knowledge systems can be closely associated with the idea of sustainable development and traditional ecological knowledge (TEK). Traditional ecological knowledge can be defined as the collective knowledge of the ecological relationships which have been acquired by the indigenous people over a period of centuries of experience in the art of managing the natural resources. The knowledge leads to practices in agriculture, forest management, and biodiversity conservation as well as water use. According to Berkes (2012), traditional ecological knowledge is a dynamic knowledge and practice system that changes in response to changes in the environmental conditions. This kind of knowledge tends to be holistic, bringing community life's social, cultural and ecological aspects.

Livelihood security is another significant part of the conceptual framework. Tribal populations are often dependent on forest cover, farming and local biodiversity to survive and earn a living. Indigenous knowledge assists the people to recognize edible vegetation, herbal remedies, plant agricultural seasons and methods of harvesting that are sustainable. These practices help in enabling food security and helping to generate income as well as ensuring the balance of the ecology. Research has revealed that indigenous resource management is usually beneficial in the conservation of biodiversity and sustainable land utilization in communities that rely on forests.

The Indigenous Knowledge Systems literature shows that it is applicable in development policy and environmental management. According to Warren (1991), indigenous knowledge offers precious

information on rural development, especially in locations where modern technologies might not be very appropriate in the ecological setting. On the same note, Agrawal (1995) suggested that indigenous knowledge need not be seen as a lesser theory in comparison to scientific knowledge but as a complementary mechanism that could be utilized in the developmental strategies through proper integration with modern science.

Scholars have also reported in the Indian context that biodiversity conservation and sustainable management of resources are highly valued by the tribes. Gadgil, Berkes and Folke (1993) talked of the role played by indigenous ecological knowledge in biodiversity conservation through the community-based management of natural resources. These analyses believe that ecological sustainability and community well-being depend on conventional traditions like sacred groves, seasonal harvesting, and mixed agriculture.

Nevertheless, the literature also denotes a number of challenges that influence the existence of Indigenous knowledge systems. Modernization, displacement by developmental projects, deforestation and cultural assimilation are some processes that have undermined the transmission of traditional knowledge. The young people tend to abandon the traditional modes of livelihood, and as a result the indigenous lifestyles are slowly dwindling.

The conceptual framework of this research considers the Indigenous knowledge systems as a system of interconnections, which enhances sustainable resource management, security of livelihood and preservation of culture. By acknowledging and incorporating indigenous knowledge into development policies, it is possible to come up with more inclusive and sustainable patterns of tribal development.

Table 2 : Key Studies on Indigenous Knowledge Systems

Author	Year	Key Focus	Contribution
Warren	1991	Indigenous knowledge in development	Importance in rural development
Agrawal	1995	Indigenous vs scientific knowledge	Integration with modern science
Gadgil, Berkes & Folke	1993	Biodiversity conservation	Community-based resource management
Berkes	2012	Traditional ecological knowledge	Dynamic ecological knowledge system
Pretty	2011	Social-ecological systems	Sustainable development approaches

Methodology :

This study adopts a qualitative and conceptual research design to examine the role of Indigenous Knowledge Systems (IKS) in promoting tribal development, particularly in relation to sustainability, livelihood security, and cultural preservation. The research is primarily based on secondary sources of data, including scholarly books, peer-reviewed journal articles, research reports, government publications, and documents from international organizations related to indigenous communities, environmental sustainability, and development studies.

The study follows a descriptive and analytical approach to understand how indigenous knowledge contributes to sustainable resource management and socio-economic well-being among tribal communities. Relevant literature from fields such as sociology, anthropology, environmental studies, and rural development was systematically reviewed to identify key themes and perspectives concerning Indigenous Knowledge Systems and their relevance in contemporary development discourse.

The conceptual framework of the study focuses on Indigenous Knowledge Systems as the central element influencing three major dimensions of tribal development: environmental sustainability, livelihood security, and cultural preservation. Indigenous practices in agriculture, forest management, water conservation, traditional medicine, and community governance are examined to understand how they contribute to ecological balance and economic resilience. At the same time, the study also explores how cultural practices such as oral traditions, rituals, festivals, and indigenous languages help preserve tribal identity and social cohesion.

A thematic analysis of the reviewed literature was conducted to identify patterns regarding the role of Indigenous Knowledge Systems in sustainable development. Particular attention was given to studies highlighting the integration of traditional ecological knowledge with modern development policies and the challenges faced by tribal communities in maintaining their knowledge systems in the context of modernization, environmental degradation, and socio-economic marginalization.

Through the synthesis and analytical interpretation of existing research, the study provides a comprehensive understanding of how Indigenous Knowledge Systems contribute to sustainable tribal development. The findings highlight the importance of recognizing and incorporating indigenous knowledge into development planning, policy frameworks, and community-based resource management strategies to promote inclusive and environmentally responsible development.

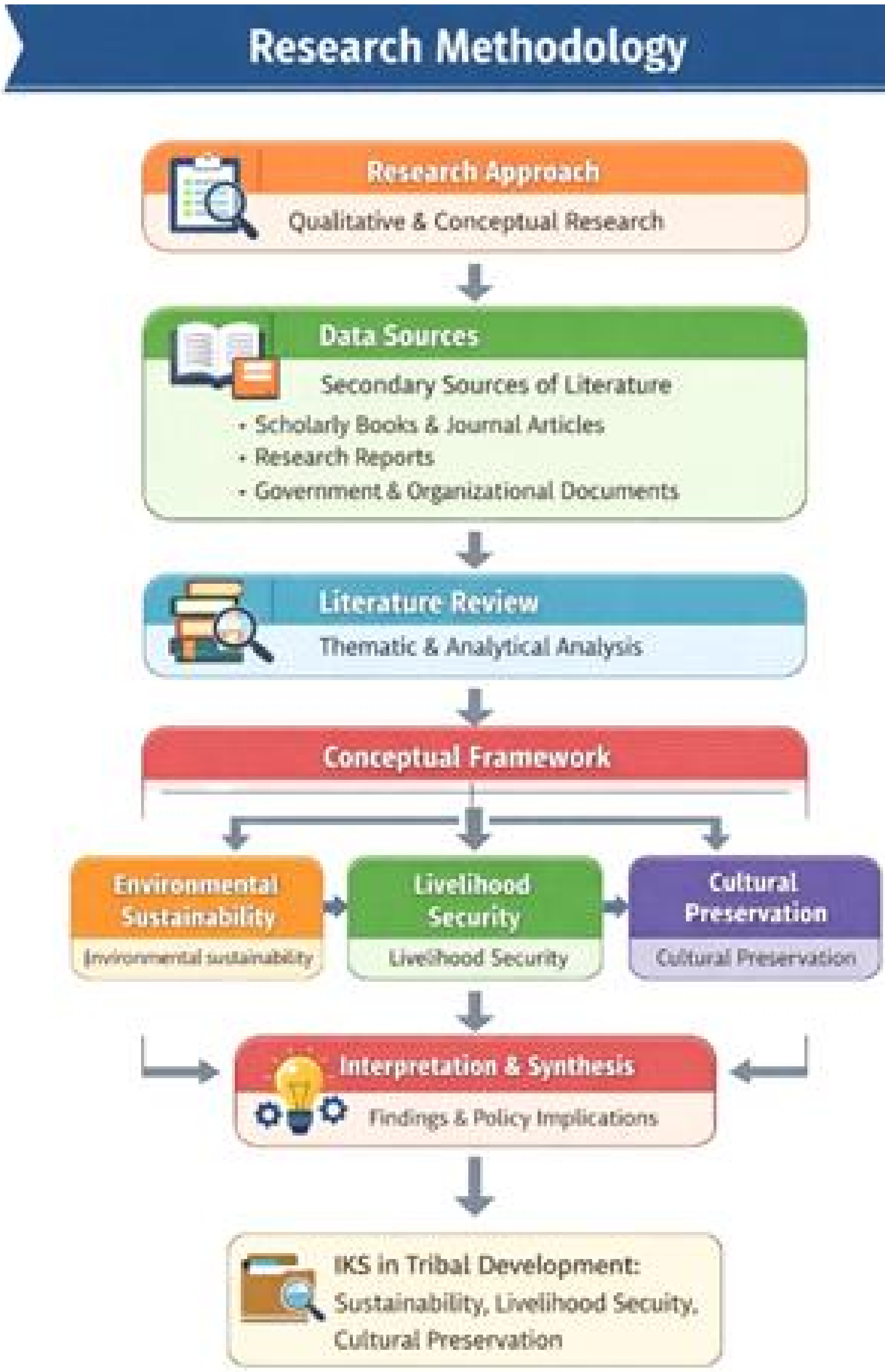

Fig. 3 : Research Methodology

The Use of Indigenous Knowledge in Sustainability of Resources :

Indigenous knowledge systems are beneficial in the sustainable management of resources, especially in tribes and indigenous communities that have strong interdependence with the natural environment. This is learned knowledge that has occurred over centuries through observations, experience and adapting to the ecological conditions in the area. It gives pragmatic solutions on land, forest, water, and biodiversity management towards providing long-term sustainability and, at the

same time, fulfilling the livelihood needs of the people living in the area. In contrast to most of the current management methods of resources, where technological interventions play a major role, indigenous practices are usually focused on the concepts of balance, conservation, and respect for natural ecosystems.

Agriculture is one of the critical fields where aboriginal knowledge can be applied in the management of resources to ensure sustainability. Most of the tribal societies have traditional agricultural practices that are healthy for soil and biodiversity. Mixed cropping, crop rotation, and application of organic manure are some of the techniques that help to sustain the fertility of the soil as well as minimize reliance on chemicals. The indigenous farmers tend to produce types of crops that are distributed to local climatic and environmental factors which boost the resistance to droughts, pests and diseases. The practices do not only safeguard the environment but also provide food security and sustainability of agricultural activities in the long run.

Table 3 : Indigenous Practices for Sustainable Resource Management

Resource Area	Indigenous Practice	Environmental Benefit
Agriculture	Crop rotation, mixed farming	Soil fertility
Forests	Sacred groves, regulated harvesting	Biodiversity protection
Water	Traditional irrigation systems	Water conservation
Biodiversity	Herbal medicine and plant conservation	Ecosystem balance

Another significant area in which the indigenous knowledge proves to be effective is forest conservation. Forest communities around forests have come up with traditional regulations and social organization governing utilisation of forest resources. Sometimes these regulations involve seasonal limitations upon the harvesting of forest products, communal observance of the utilization of resources, and the preservation of sacred groves or culturally sensitive forest zones. Especially sacred groves are used as natural conservation areas where biodiversity is conserved because of cultural and religious beliefs. This is a traditional conservation practice that the scholars have been appreciating as an added value towards the protection of biodiversity and ecological sustainability.

Indigenous knowledge also plays an important role in the management of water resources. In

most tribal areas, there has been an emergence of traditional mechanisms of water collection, storage and distribution in communities. These comprise small earthen dams, the traditional irrigation channels and rainwater harvesting structures built based on the local geographical and climatic conditions. Such systems are usually ecofriendly and economical so that communities can be able to put water resources into perspective even in the areas experiencing water scarcity. Using locally available resources and common involvement of communities, these traditional systems promote sustainable water consumption and adaptation to reduced climate variation.

Medicinal flora and biodiversity conservation are also another key area of indigenous resource management. Tribal communities have a fine understanding of native plant species and their medicinal qualities. This knowledge is used by the traditional healers to cure diverse diseases through the use of herbs which are found in the forests. Medical plants have been harvested and carefully cultivated to ensure that they are not exhausted. This will help to preserve biodiversity and sustain an ecological equilibrium of forest ecosystems.

Irrespective of the importance of indigenous knowledge to sustainable management of the resources, these systems are facing the growing threats of modernization, deforestation and the growth of market-driven developmental undertakings. The traditional lands have been lost and the cultural institutions weakened, and this has decreased the transfer of the indigenous knowledge to the younger generations. The consideration of the significance of these knowledge systems and their implementation into the modern environmental policies can help to improve the sustainable development efforts.

Finally, Indigenous knowledge systems offer useful and culturally based solutions to the sustainable management of natural resources. They are very relevant to the current environmental issues because of their focus on ecological balance, community involvement, and long-term sustainability of resources. The maintenance and fortification of indigenous knowledge can thus be an important step towards enhancing sustainable utilization of resources as well as the general growth of tribal societies.

Traditional Knowledge and Livelihood Safety of the Indian Tribes :

The ISKs of the indigenous people are critical to the livelihood security of the tribal communities. Traditional knowledge has been the sustaining factor of the day-to-day lives of tribal societies who have lived across generations, relying on their traditional forms of knowledge to manage the natural resources and to adjust to the environmental fluctuations. This information is closely tied to the local ecologies and offers feasible solutions to food production, healthcare and sources of income. With the use of indigenous knowledge, the tribal communities can continue living lifestyles

that are closely tied to ecological sustainability and cultural practices.

Livelihood Source	Percentage of Tribal Households
Agriculture	45%
Forest products (NTFPs)	30%
Wage labour	15%
Handicrafts	10%

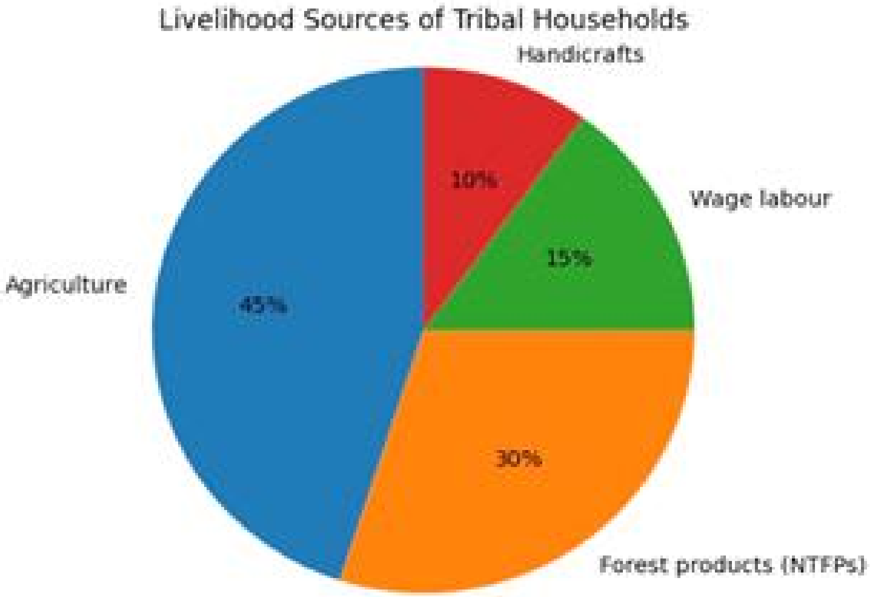

Fig. 4 : Percentage of Tribal Households

Among the most significant approaches where indigenous knowledge is applicable in securing livelihood is traditional agriculture. The tribe's farmers have sometimes been dependent on the locally adapted varieties of crops and farming techniques adapted to their climatic and soil conditions. The following practices, including mixed farming, shifting farming in specific regions, and organic farming practices, contribute to sustaining the fertility of the soil and minimizing the use of expensive chemical fertilizers. Such agricultural systems are able to supply food to households as well as ensure that agricultural resources are sustainable. The tribal communities have the knowledge of the seasonal cycle, rain patterns and soils and are able to plan their agricultural activities effectively.

Most of the tribal populations also rely on forests as a primary source of livelihood. Through indigenous knowledge, communities recognize and harvest non-timber forest products (NTFPs), including fruits, honey, medicinal plants, resins, bamboo and leaves to make handicraft items. These

forest resources are usually sources of subsistence and income. Indicatively, tribal families can gather forest produce to use in their homes and sell the excess products in the local markets. The knowledge of the indigenous people will make sure that the resources are extracted in a manner that can promote their natural regeneration, hence sustaining livelihood over the long term.

Traditional craftsmanship and cultural industries are another key aspect of livelihood security. The various tribal groups have a pool of professional skills in weaving, pottery, wood carving, metalwork and bamboo arts. These traditional skills are grounded on the knowledge that has been carried across generations, and they are directly related to the local cultural traditions. Through such crafts, economic opportunities are offered, which, in addition, enhance the identity and cultural heritage of the community. Through the appropriate encouragement of the markets and development programmes, these traditional crafts will be a valuable source of sustainable income to the tribal households.

Livelihood security is also through traditional healthcare systems which are led by indigenous knowledge. Medicinal plants and herbs are commonly used by tribal communities in the treatment of common diseases. The traditional healers also have rich information regarding the medicinal value of different plants that are located in the forest and other nearby terrains. Such knowledge ensures that people do not rely on costly medical services and instead provide communities with healthcare solutions that can be found locally.

This role played by indigenous knowledge in supporting livelihoods is being put under pressure, although it is fundamental. Varying socio-economic conditions, deforestation, displacement, acquisition of land and development projects have altered the traditional livelihood systems. Moreover, young people can move out of the traditional jobs because of the low level of economic prospects or because of modernization.

Hence, the Indigenous knowledge systems have to be reinforced in order to secure the livelihood of the tribal communities. Development policies must be able to appreciate the importance of traditional knowledge and promote community-based resource management, capacity building and access to the market of tribal products. Indigenous knowledge can be used to implement sustainable livelihoods through the incorporation of modern development programmes without affecting the cultural and ecological background of the tribal communities.

The Preservation of Culture Using Indigenous Knowledge Systems :

Knowledge systems of the indigenous people are crucial in helping to maintain the culture and heritage of the tribal people. These bodies of knowledge are deeply entrenched in traditions, beliefs, rituals, and practices that are social and have been inherited and preserved over generations. For the tribal society of many, knowledge is not only a survival device but also a part of their cultural

world. It defines the way communities perceive nature, arrange their social lives, and pass on values to the new generations. The tribal communities can continue to exercise their cultural practices through Indigenous knowledge systems and also have a close relationship with the ancestral territories and nature.

Oral traditions and storytelling are one of the most significant roles of indigenous knowledge by which native culture could be preserved. In most of the tribal societies, the elders transmit the knowledge to the young people through stories, songs, folklore, and the conduct of the community members. These verbal stories usually hold essential data regarding the history of society, ethical principles, conventional ecological wisdom and cultural beliefs. Storytelling is a channel through which cultural identity and collective memory are preserved. Through these stories, the young ones in the society get to know about their backgrounds and the roles involved in the preservation of the same.

The cultural knowledge that is entrenched in tribal societies is also indicated in traditional rituals and festivals. Various tribal rituals are tightly connected with the agricultural seasons, forest cover and seasons. Such practices usually show appreciation to nature and reiterate the connection of the community to the environment. As a case in point, the harvest festivals or the festival of forest gods emphasizes the spiritual and ecological relationship that the tribe communities have with the environment. These cultural practices help to enhance the solidarity of the community and make sure that people do not forget their traditional values.

The use of indigenous knowledge is also a way of preserving culture in terms of the traditional governance and social institutions. A lot of tribal societies possess traditional leadership and decision-making mechanisms in the community that inform the way they manage resources and solve disputes. Such systems lie in group involvement and consideration of community standards. These institutions are full of knowledge that could be described as a profound realization of social harmony, cooperation and environmental stewardship. The traditional systems of governance enable tribal societies to retain their social structure and cultural independence.

Language and symbolic knowledge are another significant aspect of culture preservation. Tribal tongues usually have phrases and ideas that are intimately interconnected with ecological understanding, cultural ideas and customary ways. A lot of knowledge related to the indigenous languages is lost when they fade or die when they are not used. Thus, in the context of protecting Indigenous knowledge systems, it is necessary to defend tribal languages and support their usage among different communities. Nevertheless, there are a number of challenges to cultural preservation by way of indigenous knowledge. The transmission of traditional knowledge has been undermined by rapid modernization, migration,

formal systems of education which teach dominant languages and the exposure of these peoples to the effects of external cultures. There will be a gradual loss of interest among the younger generation in traditional practices in case they feel that they do not fit well in their contemporary lives.

In order to overcome these issues, Indigenous knowledge systems should be identified and recorded as well as community members attracted to cultural preservation programmes. Education programmes, community-based documentation projects, and cultural festivals may also be built to make sure that the traditional knowledge remains to be appreciated and passed on. In ensuring that Indigenous knowledge systems are safeguarded, societies can not only help in preserving the cultural heritage of the tribal communities but also the human knowledge and heritage.

Issues and Policy Implications :

Although the importance of the Indigenous knowledge systems in ensuring sustainable development, livelihood security and cultural preservation is great, various challenges confront the tribal community, making the survival and passing of the knowledge fragile. Among the key issues is modernization and globalization; its acceleration has changed the traditional ways of life and diminished the passing of native knowledge across generations. The youth of the tribal communities tend to move to cities to access education and job opportunities, leaving them less involved in the traditional activities that include farming, forest management, and local crafts.

Loss of land and natural resources is also another serious problem. Forests, rivers and farmlands are the means of livelihood of many tribal communities. Large-scale developmental projects, mining operations, industrialization, and development of infrastructure have, however, commonly resulted in displacement and limited access to the traditional resource regions. The fact that communities lose access to their ancestral territories makes the practical implementation of the indigenous knowledge connected with agriculture, biodiversity conservation and forest use more challenging.

Marginalization of indigenous knowledge is also contributed to by the fact that indigenous knowledge has not been formally recognized and documented. Modern scientific knowledge and formal education tend to be more favoured with development policies and systems of education without taking into consideration the worth of the traditional practices. Consequently, Indigenous knowledge systems are not always viewed as a contemporary and valid means of managing local ecosystems, despite the fact that they have been successful in controlling local ecosystems over centuries. Moreover, natural resources and traditional products are commercially exploited in some instances without adequate benefits to the society that initially provided the basis of this knowledge. To deal with these issues, it is important to have considered and participatory policy interventions.

Governments and development institutions should acknowledge Indigenous knowledge systems as a source of knowledge that supplements the current scientific methods. There should be policies that encourage the community to be involved in the management and decision-making of natural resources. There is also a need to strengthen the legal frameworks that safeguard tribal land rights and access to forests so that they can be in a position to practice and pass on their traditional knowledge.

Educational programmes may also be significant in the process of conserving indigenous knowledge. When the local knowledge is included in the school programmes in the tribal areas, it may bring about the younger generations to value even the provision of traditional practices. Moreover, Indigenous knowledge systems can be reinforced by strengthening the economic basis through fostering tribal entrepreneurship, handicrafts, and sustainable forest-based livelihoods.

Limitations of the Study :

The study is conceptual in nature and relies primarily on secondary data sources. Therefore, it does not include empirical fieldwork or primary data collection from tribal communities. As a result, the conclusions are based on theoretical interpretation and existing research literature. Future studies may conduct field-based research involving surveys, interviews, or case studies to provide deeper empirical insights into the role of Indigenous Knowledge Systems in tribal development.

Conclusion :

The Indian knowledge systems are a good source of information on sustainable ways of living among the tribe. This knowledge is a result of interaction with the natural environment over the course of generations; it includes traditional methods of agriculture, forestry, water preservation, health, and social structure. These activities show that the relationship between the tribal societies and nature in the past was well balanced and at the same time maintained the survival and health of members in these societies. The importance of Indigenous knowledge systems has gained more and more importance as the issues of environmental sustainability as well as cultural diversity keep evolving and growing worldwide.

In this study, it is emphasized that indigenous knowledge is providing not just sustainable management of resources but also livelihood security and maintenance of culture among the tribal communities. Conventional agriculture practices, forest-based livelihoods and biodiversity knowledge promote economic stability and also conserve the ecological systems. Meanwhile, oral narratives, traditions, rituals, and indigenous languages are also useful tools to pass knowledge and values across generations because of their high cultural significance. These components combined create a unified system that links environmental sustainability, economic strength, and cultural identity.

But modernization, environmental degradation, displacement and poor recognition by the

formal development policies are remarkably threatening the survival of the Indigenous knowledge systems. Unless these learning experiences are properly defended, a lot of this knowledge will go down the drain. Thus, policymakers, researchers, and development institutions need to note the significance of indigenous knowledge and incorporate it in development planning.

Sustaining community involvement, securing land rights of the tribes, and enhancing education that appreciates traditional knowledge can help in ensuring the continuity of the same. The recognition and maintenance of Indigenous knowledge systems allow societies to foster more equal and sustainable development schemes within the context of protecting the cultural heritage and environmental wisdom of tribal people.

Future Research Directions :

Future research can focus on empirical studies that examine Indigenous Knowledge Systems in specific tribal regions. Comparative studies across different tribal communities can provide insights into diverse knowledge practices and development challenges. Additionally, interdisciplinary research combining sociology, environmental science, and policy studies can help develop practical models for integrating indigenous knowledge with modern scientific approaches for sustainable development.

REFERENCES :

- Agrawal, A. (1995). Dismantling the divide between indigenous and scientific knowledge. Development and Change, 26(3), 413–439. https://doi.org/10.1111/j.1467-7660.1995.tb00560.x
- Berkes, F. (2012). Sacred Ecology (3rd ed.). New York: Routledge. https://doi.org/10.4324/9780203123843
- Gadgil, M., Berkes, F., & Folke, C. (1993). Indigenous knowledge for biodiversity conservation. Ambio, 22(2–3), 151–156. https://www.jstor.org/stable/4314060
- Warren, D. M. (1991). Using Indigenous Knowledge in Agricultural Development. World Bank Discussion Paper No. 127. Washington, DC: World Bank.
- Briggs, J. (2005). The use of indigenous knowledge in development: Problems and challenges. Progress in Development Studies, 5(2), 99–114. https://doi.org/10.1191/1464993405ps105oa
- Sillitoe, P. (1998). The development of indigenous knowledge: A new applied anthropology. Current Anthropology, 39(2), 223–252. https://doi.org/10.1086/204722
- Grenier, L. (1998). Working with Indigenous Knowledge: A Guide for Researchers. Ottawa: International Development Research Centre (IDRC).
- Posey, D. A. (1999). Cultural and Spiritual Values of Biodiversity. Nairobi: United Nations Environment Programme (UNEP).

- Berkes, F., Colding, J., & Folke, C. (2000). Rediscovery of traditional ecological knowledge as adaptive management. Ecological Applications, 10(5), 1251–1262. https://doi.org/10.1890/1051-0761(2000)010[1251:ROTEKA]2.0.CO;2
- Pretty, J. (2011). Interdisciplinary progress in approaches to address social-ecological and ecocultural systems. Environmental Conservation, 38(2), 127–139. https://doi.org/10.1017/S0376892911000037
- United Nations. (2009). State of the World's Indigenous Peoples. New York: United Nations Department of Economic and Social Affairs. https://www.un.org/development/desa/indigenouspeoples/publications/state-of-the-worlds-indigenous-peoples.html
- FAO. (2019). Indigenous Peoples' Food Systems: Insights on Sustainability and Resilience. Rome: Food and Agriculture Organization of the United Nations. https://www.fao.org/3/ca5497en/ca5497en.pdf

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 144-150

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

अनुभव की प्रामाणिकता और प्रतिरोध की भाषा : 'शिकंजे का दर्द' में दलित स्त्री चेतना

प्रिंस गुप्ता
पी.एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सारांश :

यह शोधपत्र दलित स्त्री अनुभव की प्रामाणिकता और प्रतिरोध की भाषिक चेतना को केंद्र में रखते हुए 'शिकंजे का दर्द' में अभिव्यक्त दलित स्त्री जीवन के बहुआयामी संघर्षों का विश्लेषण करता है। सुशीला टाकभौरे की यह आत्मकथा केवल व्यक्तिगत जीवनवृत्त नहीं, बल्कि जाति, वर्ग और जेंडर आधारित दमन की संरचनाओं का साक्ष्य प्रस्तुत करने वाला सामाजिक दस्तावेज है। इसमें दलित स्त्री के जीवन में उपस्थित सामाजिक बहिष्कार, शैक्षिक अवरोध, आर्थिक अभाव, पारिवारिक हिंसा तथा आत्मसम्मान की खोज को अत्यंत यथार्थपूर्ण और निर्भीक भाषा में अभिव्यक्त किया गया है। शोधपत्र यह भी प्रतिपादित करता है कि इस कृति में अनुभव की प्रामाणिकता लेखन को विश्वसनीयता प्रदान करती है, जबकि भाषा प्रतिरोध के सक्रिय माध्यम के रूप में उभरती है। आत्मकथा में प्रयुक्त सरल, सीधी और आंचलिकता से युक्त भाषा सामाजिक अन्याय, जातिगत पूर्वाग्रह और पितृसत्तात्मक मानसिकता के विरुद्ध वैचारिक हस्तक्षेप करती है। इस प्रकार लेखिका का आत्मकथात्मक लेखन व्यक्तिगत पीड़ा की अभिव्यक्ति से आगे बढ़कर दलित स्त्री अस्मिता, आत्मसम्मान और सामाजिक परिवर्तन की चेतना को स्वर देता है। यह कहा जा सकता है कि शिकंजे का दर्द दलित स्त्री अनुभवों के दस्तावेजीकरण के साथ–साथ प्रतिरोध की सशक्त भाषिक परंपरा का भी प्रतिनिधित्व करता है, जो हिंदी दलित साहित्य को नई वैचारिक दृष्टि और संवेदनात्मक गहराई प्रदान करता है।

बीज शब्द – दलित स्त्री चेतना, अनुभव की प्रामाणिकता, प्रतिरोध की भाषा, आत्मकथा साहित्य, दलित अस्मिता, सामाजिक यथार्थ, पितृसत्ता और प्रतिरोध।

शोध पत्र –

हिंदी दलित साहित्य ने बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जिस तीव्रता और वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज की, उसने साहित्य की पारंपरिक, संवेदनात्मक और सौंदर्यपरक अवधारणाओं को चुनौती दी। इस साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है– 'अनुभव की प्रामाणिकता'। यहाँ कल्पना की अपेक्षा जीवन की ठोस यथार्थपरक अनुभूतियाँ अधिक महत्वपूर्ण हो जाती हैं। विशेषतः दलित स्त्री आत्मकथाएँ इस संदर्भ में

और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो उठती हैं, क्योंकि वे जाति और जेंडर के दोहरे दमन को एक साथ उद्घाटित करती हैं। सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' इसी परंपरा की एक सशक्त कृति है, जिसमें दलित स्त्री जीवन की अंतर्व्यथा, सामाजिक बहिष्कार, पारिवारिक संघर्ष, शिक्षा के लिए जद्दोजहद और आत्मसम्मान की खोज को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस आत्मकथा में अनुभव केवल व्यक्तिगत नहीं रह जाता, बल्कि वह सामूहिक सामाजिक यथार्थ का प्रतिनिधि बन जाता है। साथ ही, इसकी भाषा मात्र अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि प्रतिरोध का औजार बनकर उभरती है।

हिंदी क्षेत्र की पहली दलित स्त्री आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' की लेखिका सुशीला टाकभौरे जी हैं, जो वर्ष 2011 में प्रकाशित हुई। जिसमें उन्होंने दलित स्त्री के तिहरे शोषण 'जाति, वर्ग और जेंडर' की पीड़ा को अत्यंत प्रामाणिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। सन् 1954 में मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के बानापुरा गाँव में जन्मी लेखिका ने बचपन से ही गरीबी, अभाव और सवर्णों के अपमान का सामना किया। उन्होंने इस आत्मकथा में अपने भोगे हुए कटु अनुभवों को निडरता से प्रकट किया और दलित स्त्री जीवन की त्रासदी को समाज के सामने रखा। यह रचना रेखांकित करती है कि 21वीं सदी में स्त्री शिक्षित और आत्मनिर्भर होने के बावजूद भी पुरुष के वर्चस्व से मुक्त नहीं है। अतः लेखिका का उद्देश्य स्त्री की सुप्त चेतना को जाग्रत कर उसमें अस्मिता और अधिकार–बोध का विकास करना है। लेखिका आत्मकथा लिखने का उद्देश्य बताते हुए 'शिकंजे का दर्द' के मनोगत में लिखती हैं कि 'शिकंजे का दर्द में संताप है दलित होने का, स्त्री होने का। इसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त दलित जीवन की व्यथा है। स्त्री होना जैसे व्यथा की बात है। चाहे हमारा देश हो या विश्व के अन्य देश, हर जगह शोषण उत्पीड़न का शिकार स्त्री ही रही है। जिस देश में वर्णभेद, जातिभेद की कलुषित परम्पराएँ हैं वहाँ दलित स्त्री शोषण की व्यथा और भी गहरी हो जाती है। सदियों से तिरस्कृत और अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर किए गए दलित जीवन की व्यथा–कथा का दर्द शशिकंजे के दर्द' में समाहित है। 'शिकंजे के दर्द' लिखने का उद्देश्य दर्द देने वाले शिकंजे को तोड़ने का प्रयास है।'[1]

दलित स्त्री भारतीय समाज में सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक वंचित वर्ग में आती है। उसे जाति और लिंग दोनों प्रकार के भेदभाव का सामना करना पड़ता है। सुशीला टाकभौरे को भी लिंगभेद की पीड़ा को बार–बार भोगना पडता है। इसी लिंगभेद व वर्णभेद के कारण लेखिका की नानी हो या माँ, प्रत्येक स्त्री के लिए शिक्षा के द्वार बंद ही रहे। वे लिखतीं हैं 'लड़की जात, पढ़कर का करेगी? इस भावना और छुआछूत की पराकाष्ठा के कारण स्कूल के दरवाजे उनके लिए बन्द ही रहे। नानी के समय में शिक्षा पाने की बात सोचना भी सम्भव नहीं था। नानी चाहकर भी अपनी बेटी को स्कूल नहीं भेज पाई थी।'[2] आत्मकथा में लेखिका बताती हैं कि शिक्षित होने के बावजूद स्वयं लेखिका को भी घरेलू हिंसा, पुरुषवर्चस्व और जातिगत अपमान सहना पड़ा। स्कूलों में भी जाति के आधार पर भेदभाव किया जाता था, उन्हें विद्यालय में पीछे बैठाया जाता और पानी तक छूने नहीं दिया जाता था। दलित परिवारों की स्त्रियाँ कठोर श्रम करती हुई भी सामाजिक तिरस्कार झेलती थीं। धार्मिक अंधविश्वास, रूढ़ियाँ और पितृसत्तात्मक परंपराएँ स्त्री को निर्भर और कमजोर बनाए रखने का कार्य करती हैं। लेखिका बताती हैं कि समाज में मनुष्य की प्रतिष्ठा कर्म या योग्यता से नहीं, बल्कि जाति से तय की जाती है। इसी कारण दलित स्त्रियों को शिक्षा, सम्मान और समान अवसरों से वंचित रहना पड़ा। लेखिका असमानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य कसते हुए कहती हैं– 'हिन्दू धर्म में नदी, पहाड़, पेड़–पौधे, गाय, साँप

सभी को महत्व और सम्मान दिया जाता है लेकिन अछूत मनुष्यों को कोई स्थान नहीं, कोई सम्मान नहीं। उनके लिए कोई दया—संवेदना नहीं? हिन्दू धर्म के आडम्बर में मिट्टी से बने पुतलों को भी भगवान की तरह पूजा जाता है मगर इन्सानों को इन्सान नहीं मानते, यह हिन्दू धर्म की बिडंबना है, हिन्दू संस्कृति का कलंक है। लोग इसे ही धर्म कहते हैं।'[3]

शताब्दियों से दलित स्त्री को केवल जातिगत भेदभाव ही नहीं, बल्कि स्त्री होने के कारण भी अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बाधाओं का सामना करना पड़ा है। उसके संघर्षों की ओर समाज का ध्यान प्रायः नहीं जाता। शिक्षा प्राप्त करने, भूख और गरीबी से लड़ने, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने तथा अपने अधिकारों और प्रगति के लिए उसे घर और बाहर दोनों स्थानों पर अनेक कठिनाईयाँ झेलनी पड़ती हैं। अपनी अस्मिता और अस्तित्व को स्थापित करने के लिए दलित स्त्री को निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। इस प्रकार वह एक साथ दलित और स्त्री — दोनों प्रकार की पीड़ा को अनुभव करती है। सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' इसी यथार्थ का सशक्त दस्तावेज है। यह केवल लेखिका के निजी जीवन का विवरण नहीं, बल्कि समूचे दलित स्त्री समुदाय के अनुभवों की अभिव्यक्ति है।

आत्मकथा साहित्य की वह विधा है जिसमें लेखक अपने जीवन के अनुभवों को स्वयं प्रस्तुत करता है। किंतु दलित आत्मकथा में यह 'स्व' केवल निजी नहीं होता, वह सामाजिक संरचना का दर्पण बन जाता है। यहाँ जीवन का यथार्थ बिना किसी अलंकरण या सौंदर्यीकरण के सामने आता है। 'शिकंजे का दर्द' में वर्णित घटनाएँ 'बचपन की सामाजिक उपेक्षा, विद्यालय में भेदभाव, जातिगत अपमान, आर्थिक अभाव और पारिवारिक दमन' सभी अनुभव की उस कठोरता को उजागर करते हैं, जिसे मुख्यधारा साहित्य ने लंबे समय तक अनदेखा किया। लेखिका अपने अनुभवों को किसी करुणा—प्रदर्शन के लिए नहीं लिखतीं, बल्कि उन्हें समाज के सामने साक्ष्य के रूप में रखती हैं। अनुभव की यह प्रामाणिकता 'शिकंजे का दर्द' में तीन स्तरों पर दिखाई देती है :—

- **सामाजिक स्तर पर :** जातिगत भेदभाव का प्रत्यक्ष चित्रण।
- **पारिवारिक स्तर पर :** पितृसत्तात्मक नियंत्रण और स्त्री की सीमाएँ।
- **आत्मिक स्तर पर :** आत्मसम्मान और आत्मनिर्णय की चेतना।

'शिकंजे का दर्द' की भाषा सहज, सरल और सीधी है। किंतु इस सादगी के भीतर एक तीखा प्रतिरोध छिपा है। लेखिका अपनी भाषा के माध्यम से उस सामाजिक संरचना को चुनौती देती हैं, जिसने उन्हें 'हीन' मानने की कोशिश की। प्रतिरोध की भाषा के कुछ प्रमुख आयाम इस प्रकार हैं :

(क) आत्मस्वीकृति – लेखिका अपनी जाति और सामाजिक पृष्ठभूमि को छिपाती नहीं हैं। वे उसे स्वीकार करती हैं और उसी के आधार पर अपनी अस्मिता का निर्माण करती हैं। यह आत्मस्वीकृति ही प्रतिरोध का पहला कदम है।

(ख) प्रश्नाकुलता – आत्मकथा में कई स्थानों पर लेखिका सामाजिक रूढ़ियों पर प्रश्न उठाती हैंकृक्यों जाति के आधार पर मनुष्य का मूल्यांकन किया जाता है? क्यों स्त्री को सीमाओं में बाँधा जाता है? यह प्रश्नाकुलता प्रतिरोध की चेतना को जन्म देती है।

ग) अनुभव का दस्तावेजीकरण – जब दलित स्त्री अपने अनुभवों को लिखित रूप में दर्ज करती है, तो वह इतिहास के उस मौन को तोड़ती है, जिसने उसे लंबे समय तक हाशिए पर रखा। इस तरह का लेखन स्वयं

में राजनीतिक प्रक्रिया है।

इस आत्मकथा को लिखते समय उन्हें पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। पारिवारिक घटनाओं को उजागर करने पर कई लोगों ने उन्हें ऐसा न करने की सलाह दी, फिर भी उन्होंने सत्य को सामने रखने का साहस किया। एक स्त्री को परिवार और समाज के बीच अपनी दोहरी जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए अनेक त्याग करने पड़ते हैं। सुशीला जी को भी नौकरी के कारण अपने बच्चों को पड़ोसियों या रिश्तेदारों के पास छोड़ना पड़ता था, जो किसी माँ के लिए अत्यंत पीड़ादायक स्थिति होती है। आत्मकथा में पति के साथ संबंधों में मौजूद तनाव और पितृसत्तात्मक व्यवहार का भी उल्लेख मिलता है। लेखिका की पासबुक और पूरा वेतन उनके पति के अधिकार क्षेत्र में था। अपने हक को माँगने पर वे घरेलू हिंसा का शिकार होती थी। उनके पति उन्हें अपमानित करते हुए कहते थे– "तू मेरे सामने कुछ भी नहीं है। तेरी औकात सिर्फ एक बर्तन माँजने वाली नौकरानी के बराबर है।'[4] कई बार उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है, परन्तु यही अनुभव उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाते हैं। स्त्री चाहे दलित हो या सवर्ण, पुरुष वर्चस्व का शिकार होती आ रही है। लेखिका लिखती हैं– 'जनवरी 1966 में जब देश की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी बनी थी तब स्त्रियों का सम्मान बढ़ा था गांव के लोगों की बातों से उनके विचार मालूम होते थे। स्त्रियाँ कहती थीं– 'हमारा राज आ गया है' पुरुष कहते थे– 'औरत पैरों की जूती है, पैरों में ही रहेगी।' भाई भाभी को डाँटते हुए कहते थे– 'एक औरत देश की प्रधानमंत्री बन गई, इसका मतलब यह नहीं कि घर की औरत औरत जैसी नहीं रहेगी।'[5] लेखिका का मानना है कि स्त्री के लिए आर्थिक स्वतंत्रता जितनी आवश्यक है, उतनी ही मानसिक दृढ़ता भी आवश्यक है। अपने इसी दृढ़ निश्चय के कारण उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की, जबकि प्रारम्भ में उनके पति इसके पक्ष में नहीं थे। उनका विश्वास था कि अन्याय को सहने के बजाय उसका सामना करना ही मुक्ति का मार्ग है।

जातिगत भेदभाव के अनेक अनुभव उनकी आत्मकथा में मिलते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त कर प्राध्यापिका बनने के बाद भी उन्हें कई बार जातिसूचक टिप्पणियों का सामना करना पड़ा। पी.एच.डी. प्राप्त व कॉलेज की प्राध्यापिका होने के बावजूद उनकी पड़ोसन उनके परिचय के रूप में किसी महिला को बताती है कि 'यहाँ झाड़ूवाली रहती है।' इसी तरह एक अन्य घटना में लेखिका व उनके पति जहाँ पढ़ाते थे, वहाँ के व्यवस्थापक जब भी उन दोनों का परिचय कराते तो उसका आधार जाति होता था– 'ये दोनों सफाई कर्मचारी जाति के हैं। इस जाति के होने के बाद भी हमने इन्हें अपनी संस्था में नौकरी दी है।'[6] इस प्रकार की घटनाएँ यह दर्शाती हैं कि सामाजिक संरचना में गहराई से जड़ें जमा चुकी जातिगत मानसिकता आज भी समाप्त नहीं हुई है। इसके साथ ही वे रूढ़िवादी परंपराओं का विरोध करते हुए अपनी बेटी का अंतर्जातीय विवाह कराती हैं और दहेज प्रथा का स्पष्ट रूप से विरोध करती हैं। उनका यह कदम सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक साहसिक पहल के रूप में सामने आता है।

'शिकंजे का दर्द' केवल एक व्यक्तिगत जीवनकथा नहीं है, बल्कि वह सामंती तथा ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में सामने आती है। इस आत्मकथा में सुशीला टाकभौरे ने दलित स्त्री के जीवन में व्याप्त सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव और पितृसत्तात्मक उत्पीड़न को निर्भीकता से अभिव्यक्त किया है। लेखिका का मानना है कि जो सामाजिक व्यवस्था मनुष्य के अस्तित्व और गरिमा

को नकारती है, वह समाज के व्यापक हितों के लिए विश्वसनीय नहीं हो सकती। दलित साहित्य की मूल चेतना भी इसी मानवीय मूल्य को सर्वोपरि मानती है। 'शिकंजे का दर्द' में दलित स्त्री के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। कहीं स्त्री सामाजिक परंपराओं के कारण अत्याचार सहने को विवश दिखाई देती है, तो कहीं वह साहसपूर्वक अन्याय का प्रतिरोध भी करती है। मालती और कली मौसी जैसे पात्र इस प्रतिरोध की भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो जातिगत और लैंगिक भेदभाव के विरुद्ध साहसपूर्वक आवाज उठाते हैं।

लेखिका इन उदाहरणों के माध्यम से यह संदेश देती हैं कि दलित स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर संघर्ष करना चाहिए। आत्मकथा में लेखिका ने पारिवारिक जीवन के जटिल पक्षों को भी ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे के दर्द' आत्मकथा में पति के सहयोग व अवरोधक दोनों पक्षों को स्पष्ट लिखती हैं। वे घरेलू हिंसा और पुरुष मानसिकता को रेखांकित कर कहती हैं – 'खाना परोसने में देरी होने पर या किसी बात से नाराज होने पर वे खाना नहीं खाते थे, तब घंटों मनाना पडता था। कभी–कभी वे स्पष्ट शब्दों में कहते थे– मेरे पैरों पर अपना सिर रखकर माफी माँग, तब मैं तेरी बात मानूँगा।'[7] इसके बावजूद वे संघर्ष से पीछे हटने के बजाय अपने आत्मसम्मान और अस्तित्व की रक्षा के लिए निरंतर प्रयास करती रहती हैं।

इस आत्मकथा का शिल्प भी अत्यंत प्रभावी और यथार्थप्रधान है। सुशीला टाकभौरे ने अपने जीवन में झेली गई वंचनाओं, निषेधों और सामाजिक अवरोधों को बिना किसी आडंबर के सीधे और तीखे शब्दों में व्यक्त किया है। उनकी भाषा में कल्पनात्मक सजावट की अपेक्षा जीवन के कठोर यथार्थ का चित्रण अधिक दिखाई देता है। वे जीवन की वास्तविक परिस्थितियों को उसी रूप में प्रस्तुत करती हैं, जैसा उन्होंने स्वयं अनुभव किया। लेखिका आत्मकथा में शब्दों का यथास्थान चयन करते हुए दलित स्त्री जीवन का मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित करती हैं– 'गीला, सड़ा, गिजगिजा, बदबूदार कचरा, गोबर, मैला देखकर ही मतली आती। गन्दी नालियों और डबरों का गंदा पानी सड़कों पर बहता रहता। ऐसे गंदे पानी के बीच से कचरा उठाना, टोकरे में भरना, गीले कचरे से भारी टोकरे को अपनी कमर पर, कभी सिर पर रखकर दूर फेंकने जाना बहुत कठिन हो जाता। इसी तरह नरक सफाई का काम किया जाता। बजबजाती गंदगी पर मुट्ठी भर राख डालकर वह अपनी किस्मत को कोसती थी।'[8]

शिल्प की दृष्टि से 'शिकंजे का दर्द' बहुस्तरीय है। इसमें वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक और संवादात्मक शैली का सुंदर समन्वय मिलता है। लेखिका ने अपने अनुभवों को कथा–रूप में प्रस्तुत करते हुए कई संवादों और प्रसंगों का उपयोग किया है, जिससे आत्मकथा में जीवंतता आती है। उनकी भाषा सरल, स्पष्ट और प्रसंगानुकूल है, जो पाठक को सीधे प्रभावित करती है। वे भाषा–सौंदर्य की अपेक्षा न्याय–अन्याय, मानवीय गरिमा और सामाजिक असमानता के प्रश्नों को अधिक महत्व देती हैं। इस आत्मकथा में प्रतीकों का भी विशेष महत्व है। 'शिकंजा' शब्द स्वयं उस घुटन, पीड़ा और सामाजिक बंधन का प्रतीक है, जिसे लेखिका ने अपने जीवन में अनुभव किया। इसी प्रकार मैला ढोना, झाड़ू लगाना या सूअर पालन जैसे कार्य केवल पेशे का संकेत नहीं हैं, बल्कि समाज द्वारा थोपी गई हीनता और अपमान के प्रतीक भी हैं।

लेखिका इन प्रतीकों के माध्यम से दलित जीवन की त्रासदी को उजागर करती हैं। भाषिक स्तर पर भी यह आत्मकथा अत्यंत समृद्ध है। इसमें मानक हिंदी के साथ–साथ आंचलिक शब्दावली और स्थानीय बोलियों का प्रयोग मिलता है, जिससे ग्रामीण जीवन की वास्तविकता उभरकर सामने आती है। इसके अतिरिक्त मुहावरों,

लोकोक्तियों और लोकभाषा के प्रयोग से भाषा अधिक प्रभावी और जीवंत बन जाती है। कहीं–कहीं व्यंग्यात्मक शैली भी दिखाई देती है, जो सामाजिक विसंगतियों पर तीखा प्रहार करती है।

टाकभौरे जी अपनी आत्मकथा में अपने समय की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और शैक्षणिक विषमताओं का सजीव चित्रण करती हैं। वे अपने जीवन के संघर्षों, चुनौतियों, आशाओं और निराशाओं के साथ–साथ भय, विश्वास और अविश्वास जैसी मानवीय अनुभूतियों को भी अभिव्यक्त करती हैं। सामाजिक मर्यादाओं और नैतिक बंधनों के कारण स्त्री प्रायः अपनी अनुभूतियों को खुलकर व्यक्त नहीं कर पाती, परन्तु टाकभौरे इन सीमाओं को तोड़ते हुए स्त्री को मानसिक रूप से जागरूक और सशक्त बनने की प्रेरणा देती हैं। वे परम्परागत रूढ़ियों और खोखले सामाजिक दावों को अस्वीकार करते हुए जाति और वर्ण से मुक्त समतामूलक समाज की कल्पना प्रस्तुत करती हैं। उनका साहित्य केवल पीड़ा, अस्वीकृति और विद्रोह का साहित्य नहीं है, बल्कि उसमें सामाजिक परिवर्तन और क्रांति का स्पष्ट संदेश भी निहित है। यही कारण है कि तमाम संघर्षों के बावजूद सुशीला टाकभौरे एक सशक्त और आत्मनिर्भर स्त्री की पहचान के रूप में उभरती हैं।

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' अनुभव की प्रामाणिकता और प्रतिरोध की भाषा का अद्वितीय उदाहरण है। इसमें दलित स्त्री जीवन की त्रासदी, संघर्ष और आत्मसम्मान की खोज को अत्यंत ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया गया है। अनुभव की प्रामाणिकता इस कृति को विश्वसनीय बनाती है, जबकि प्रतिरोध की भाषा इसे वैचारिक शक्ति प्रदान करती है। यहाँ लेखन केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध सशक्त हस्तक्षेप है। दलित स्त्री चेतना का निर्माण इसी प्रक्रिया में होता है – जब वह अपने अनुभवों को स्वीकार करती है, उन्हें शब्द देती है और उन शब्दों के माध्यम से दमनकारी संरचनाओं को चुनौती देती है। अतः यह कहा जा सकता है कि 'शिकंजे का दर्द' केवल एक आत्मकथा नहीं, बल्कि दलित स्त्री अस्मिता, आत्मसम्मान और प्रतिरोध का ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो हिंदी साहित्य को नई दृष्टि और नई संवेदना प्रदान करता है।

संदर्भ सूची :–

1. टाकभौरे, सुशीला, 'शिकंजे का दर्द' (मनोगत), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2020, पृ. 9
2. टाकभौरे, सुशीला, 'शिकंजे का दर्द' (आत्मकथा), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2020, पृ. 16
3. वही, पृ. 51
4. वही, पृ. 200
5. वही, पृ. 90
6. वही, पृ. 229
7. वही, पृ. 144
8. वही, पृ. 26

अन्य सहायक ग्रंथ :–

1. नैमिशराय, मोहनदास, 'हिंदी दलित साहित्य', साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011

2. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 'दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2020
3. लिंबाले शरणकुमार, 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', लोकचेतन प्रकशन, 2016
4. गुप्ता रमणिका, 'दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार', समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली
5. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001
6. नैमिशराय, मोहनदास, 'भारतीय दलित आंदोलन का इतिहास', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2013
7. सिंह, डॉ. एन., 'दलित साहित्य के प्रतिमान', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012
8. बेचौन, श्यौराज सिंह, 'चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य', नवलेखन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001
9. सिंह, डॉ. एन., 'दलित चिंतन अनुभव और विचार', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015

ई.मेल – prince.gupta.rewa.mp@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 151-154

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

गोंड जनजाति की पारम्परिक लोक संस्कृति में झलकता जीवन दर्शन

पूजा उईके, शोधार्थी,
डॉ राजीव शर्मा, प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष,
हिन्दी, प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर, मध्यप्रदेश।

सार :

प्रस्तुत शोध आलेख में गोंड जनजाति के परस्पर जीवन संघर्ष एंव लोक जीवन का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस शोध आलेख के माध्यम से गोंड जनजाति के पारम्परिक पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे रीति रिवाज, पूजा पद्धति, देवमूलक संस्कृति, प्रकृति पूजा पद्धति, और संस्कृति एवं समाज को दर्शाया हैं। जो भारत के सभी सनातन धर्म मे प्रचलित रीति रिवाज हिन्दू धर्म में बटे जाति और समुदायो के लोगो द्वारा अलग–अलग प्रकार से मनाने के बावजूद भी गोंडी लोक संस्कृति से मेल खाते है। इस शोध आलेख का अर्थ यह बताता है कि भारत में हम अलग–अलग जातियों में बटे होने पर भी एक है इसे ही वसुदेव कुटुम्बकम् कहा जाता है।

मुख्य शब्द : रीति रिवाज, कुवासा–कुवासी, जनजाति, आदिवासी, वनवासी।

भारत की परम्परिक संस्कृति को आदिवासी समाज एक अनोखा रूप प्रदर्शित करता है। भारत के कुल 8 प्रतिशत भाग में आदिवासी समाज ही है। जिसमें लगभग 705 जनजातियां निवास करती है। वातावरण के अनुकूल निवास करने वाली जनजातियों के नाम भी अलग–अलग है। इन्हे वन्यजाति, वनवासी, आदिवासी, आदिम जाति, जनजाति आदि नामो से पुकारा जाता है। एक निश्चित क्षेत्र में, निश्चित दायरे मे, एक साथ व्यक्तियो के झुण्ड में निवास करना तथा अपनी अलग सी संस्कृति को प्रदर्शित करना ही आदिवासी समाज की पहचान ही दुनिया के आधुनिकीकरण, मशीनीकरण की चकाचौंद से कोसों दूर अपनी परम्परा रीति–रिवाजो को संजोये रखने के कारण ही इनकी संस्कृति मे मानव जीवन दर्शन झलकता है। भारत की प्रमुख जनजातियां जैसे– गोंड, भील, बैगा, कोरकू, मारिया, हल्बा, कोल, भारिय, एवं सहरियां आदि जनजाति एवं इनकी अनेक उपजातियां निवासरत् है। प्रमुख रूप से गोंड जनजाति भारत की सबसे बडी जनजाति मानी जाती है काफी ज्यादा संख्या मे गोंडो का निवास भारत मे है। गोंडो की उत्पत्ति, निवास क्षेत्र रीति रिवाज आदि पर प्रकाश डाला गया है।

गोंडो का निवास क्षेत्र भारत के कटिले प्रदेश, विध्यांचल प्रदेश, सतपुड़ा पठार, छत्तीसगढ के मैदान में

दक्षिणी क्षेत्र, दक्षिण–पश्चिम में गोदावरी नदी के किनारे फैले हुए पहाड़ों और जंगलो मे है।

भारत के राज्य मध्य प्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ, महाराष्ट्र, उडीसा, आंध्रप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, असम, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश के दक्षिणी भाग आदि क्षेत्रो में गोण्ड आदिवासी समुदाय का निवास है।

गोंड शब्द की उत्पत्ति कोयतूर से हुई है। अर्थात कोयतूर का शाब्दिक अर्थ एक व्यक्ति, पहाड, जंगल, फसल के समान है। गोंडो का इतिहास काफी पुराना है। ऐसा माना जाता है कि प्रथ्वी ग्रह पर मानव की उत्पत्ति जबसे मानी जाती है। गोंड भी इतने ही पुराने है। किन्तु यह खोज का विषय है लिखित रूप मे इसका अभाव है। लेकिन गोंड जनजाति को द्राविड़ वर्ग का माना जाता है। जिसमे जाति व्यवस्था नही थी इनका रंग गहरा, कद छोटा होता। अर्थात सिन्धु घाटी सभ्यता के समय से इनका निवास माना जाता है। गोंड जनजाति की एक विशिष्ट परम्परा, रीति रिवाज है जो इनकी एक अपनी पहचान है। इसी कारण इन्हे हम आज विशिष्ट मान रहे। इनकी परम्परा मे मानवता, आदर्श कल्याणकारी व्यवहार झलकता है।

गोंड समुदाय मे महिला को अधिक महत्व दिया जाता है। ये लोग स्त्री पुरूष में कोई भेद भाव नही रखते दोनो को समान दर्जा देते है। महिलाओं को अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। यहां मातृसत्तात्मक वाली परम्परा देखने को मिलती है। महिला और पुरुष दोनो बराबर की हिस्सेदारी रखते है। गोंड जनजाति में नारी की पूजा की जाती है ऐसा माना जाता है। जहां स्त्री की पूजा, सम्मान किया जाता है वहा ईश्वर का निवास होता है–'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता।' गोंड समाज इस मूल मंत्र का समर्थक है। इस समाज पुरूष अपना धन लाकर स्त्री को देता है और घर खर्च वही चलाती है।

गोंड आदिवासी समाज प्रकृति पूजक तथा शक्ति का उपासक है। अर्थात इस समाज को प्रकृति पुत्र भी कहते है। गोंड समाज के प्रतीकात्मक देवी देवता सूर्य, चन्द्र, जल, पवन, अग्नि, अन्न, और फल देने वाले सभी प्रकार के वृक्ष आदि है। समस्त गोंड अपने आराध्य देवी देवताओं पर अटूट विश्वास करते है। इन्हे अपनी आस्था से कोई भी डिगा नही सकता। और यही आस्था, विश्वास इस समुदाय को एक धागे के सूत्र में एकता के रूप में बांधे हुए है।

गोंड आदिवासी समुदाय के सबसे बड़े आराध्य देव महारूद्र चंद्रमौली भगवान शिव और आदि शक्ति जगत की माता पार्वती माँ है। इन्हे "फडापेन" या सजोरपेन के नाम से जाना जाता है। और वृक्षो में गोंड समाज साज के वृक्ष को पवित्र मानते है। इस वृक्ष को मडदीमडा कहते है। इस वृक्ष की पत्तियों की पंचपत्री बनाकर तीज त्यौहारो में पूजा स्थलो मे स्थापित कर सजाकर पूजा अराधना की जाती है।

गोण्ड जनजाति में जन्म से मृत्यु तक की पारम्परिक परम्परा है। जो भारत में विशिष्ट संस्कृति को प्रदर्शित करती है। गोंड समाज में जब कोई स्त्री गर्भवती होती है तो उसका पूरा परिवार खुशियो से झूम उठता है। और गर्भवती स्त्री के स्वास्थ्य का अपने तरीके से देखभाल शुरू कर देते है। गर्भवती स्त्री के सातवे माह से उसको घर के भारी काम काज नही करने देते स्त्री को पूर्णतः आराम की सुविधा दी जाती है।

प्रसव पीड़ा के समय गांव की ही प्रायः नगारची या होलिया जाति की महिलाएं ही प्रसव करवाती थी जिसे गोंडी भाषा में सोनतार कहा जाता है। किंतु वर्तमान में कुछ जागरूकता के चलते अस्पतालो में प्रसव करवाया जाता है। प्रसव के बाद नवजात शिशु की माता को राब में हल्दी मिलाकर पिलाया जाता है। यह सब महुआ या गन्ने के रस को अच्छी तरह गाढ़ा पकाकर बनाया जाता है। इस गाढ़े रस को राब कहते है इसकी तासीर

गर्म होती है। इसके सेवन करने से प्रसव माता के शरीर में खून के थक्के नही जम पाते और अनुपयोगी रक्त शरीर के अन्य स्न्राव की मदद से बाहर निकल जाता है। इसके पश्चात छटी बारसा मनाया जाता है। जिसमे प्रसव के पांचवे या छटवे दिन तक नवजात शिशु की नाल नाभि से अलग होकर गिर जाती है। इस नाल को गोंडी भाषा में मोहड कहते है। छटी बारसा में घर परिवार की महिलाएं एव आस पडोस की महिलाएं गीत गाकर पूजा थाल सजाकर नाल को भी पूजा की थाल सजाकर मोहड विदुर कीना की परम्परा निभाती है।

गोंड जनजाति समाज में विवाह संस्कार परम्परा में गोंत्र परम्परा विद्यमान है जिसमे समाज गोत्र के वर वधु, भाई बहन होते है तथा सम और विषम गोत्र में ही विवाह होता है। गोंडी भाषा में वर को कुवासा और वधु को कुवासी कहते है।

गोंड आदिवासी समाज में एक से लेकर बारह देव माने जो है। जैसे मरकाम, उइके, तेकाम आदि सरनेम वाले 6 गोत्र के होते है और भलावी, मरावी, धुर्वे, मस्कोले 7 गोत्र के होते है छः और सात गोत्र वाले कुवासा कुवासी का विवाह हो जाता है। समान गोत्र वाले देवधारी लोग आपस में भाई–बहन मानते है।

इनकी विवाह परम्परा मे लड़का लड़की में कोई भेदभाव नही माना जाता । विवाह मे प्राचीन संस्कृति को अपनाते हुए पूरे रीति रिवाजो के साथ पंडा पुजारी परधान गोंड जिसे भुमका भी कहा जाता है जिसकी सहायता से विवाह कराया जाता है एवं इनके परम्पराओं में गीत नृत्य आदि किये जाते है जो कि प्राचीन संस्कृति को प्रदर्शित करते है जिसमें टिमकी, ढोल, नगाडा, पीपरी, तूतरू, बासुरी आदि होते है तथा कर्मा नृत्य, शैला नृत्य, गारी नृत्य, भडनी नृत्य, दादरे नृत्य, आदि किये जाते है। इस प्रकार उल्लास पूर्वक पारम्परिक पीढ़ी दर पीढ़ी विवाह संस्कार को निभाया जा रहा है।

आदिवासी गोंडी समाज में मृत्यु संस्कार प्राचीन सभ्यता और आधुनिकता दोना रूपो में देखने को मिलता है। गांव जंगलो के पास बसे गोंड आज भी मृतक को दफनाते है और शहर मे निवासरत गोंड अग्नि देते है। लेकिन वर्तमान मे दाह संस्कार को ही प्राथमिकता दी जाती है। दोनो ही संस्कारो में मृतक को पंचतत्वो मे विलीन किया जाता है। यह पांच तत्व जैसे धरती, जल, अग्नि, आकाश और पवन है इन्ही तत्वो से मनुष्य के शरीर बना होता है।

दाह संस्कार के पश्चात तीन दिन का तीसरा और फिर देव काम या देवाई किया जाता है। जिसमें मृतक की चित्र प्रतिमा बनाई जाती है जो कि पत्थर पर अंकन कर बनाया जाता है। और जिस प्रकार विवाह संस्कार में 7 फेरो के साथ वर वधु का विवाह सम्पन्न होता है ठीक उसी प्रकार मृतक की चित्र प्रतिमा के 7 फेरे दिलाये जाते ताकि वह देवों में जाकर मिल जाये तथा उसकी आत्मा को शांति मिले। देव काम या गोंडी बाजे शहनाई, गीत–नृत्य के साथ किया जाता है।

इसी प्रकार विभिन्न रीति रिवाज परम्परा के साथ गोंड जनजाति भारत देश में अपनी संस्कृति के लिए जाना पहचाना जाता है। इनकी लोक कला भाषा, लोक गीत, लोक नृत्य, तीज त्यौहार, उत्सवो आदि एक विशिष्ट परम्परा को प्रदर्शित करती है।

गोंड समुदाय के लोगो में पारम्परिक न्याय व्यवस्था देखने को मिलती है। जो दुनिया को सीखने योग्य है। इनके समुदाय में एक दुसरे के प्रति सम्भाव आपसी भाई चारा, बडो का आदर देखने को मिलता है इनके झगडे व किसी भी प्रकार की समस्या का समाधान गांव के मुखिया या बडे बुर्जुग द्वारा ही समाप्त कर दिया जाता

है। इन्हे न्यायलय जाने की आवश्यकता ही नही पडती।

गोंड जनजाति के लोगो में चिकित्सीय ज्ञान है। प्रकृति से जुड़े होने के कारण ये लोग समस्त दैनिक जीवन से जुड़ी बीमारी को ठीक के लिए जड़ी बूटियों का ज्ञान होता है। वर्तमान में इस अद्भुत ज्ञान को आत्मसात करने की आवश्यकता है।

गोंड जनजाति के लोगो में श्रृगांर प्रसादन की अलग ही महत्वता देखने को मिलती है। अधिकतर गोंड समुदाय की महिलाए श्रृगांर प्रिय होती है इनकी अपेक्षा पुरूषो कम होते है। प्रायः कोई सार्वजनिक कारणो से ही पुरुष श्रृंगार करते है अन्यथा महिलाए ही श्रृंगार की शौकीन होती है इनके श्रृंगार मे सर्वप्रथम गोदना प्रिय होता है। जो जीवन भर स्थाई श्रृगांर है गोंडी महिलाए अपने शरीर में गोदना गोदवाती है। सीमित वस्त्र पहनती है, माथे में बिन्दिया, आँखो में काजल, मिट्टी से बालो को धोना और सवारना, राई का तेल लगाना, होंठो में लाली और काले रंग के धागे को गूंथकर पहनना, मेहदी, नाखूनो मे नखपालिस, एड़ियों मे महावर आदि का प्रयोग करती है। विवाहित महिलाए सिंदूर लगाती है इनके टोटम और के अनुसार कुछ श्रृंगार प्रसाधन को छोडना भी पडता है। इनके लिए वर्जित होता है। इसी प्रकार गोंडी समूदाय के लोग विभिन्न आभुषणो से श्रृगांर करते है।

गोंड जनजाति समुदाय के लोगो का निवास स्थान जंगल पहाड़ों नदियों के किनारे दूर–दूर टोले के रूप में होता है। 2–3 मकानों को ये लोग टोला का नाम दे देते है। जैसे महुआ के पेड अधिक होने से उनके आस–पास बने घर को महुआ टोला इस प्रकार ये अपनी बस्तियां बसाते है। इनके रहन–सहन को देखा जाये तो मिट्टी बडे–बडे घर होते है। छत में मिट्टी के कवेलू (केलू) होते है जो तापमान नियंत्रण में सहायक होते है। इनके घरो में मिट्टी से बने बर्तन, अनाज सामग्री रखने के लिए मिट्टी की बडी–बडी कोठी देखने को मिलती है। तथा लकड़ी से बनी चम्मच, खाट, पलंग, बेलगाडी, पीडाह (पटा) तथा अन्य सामग्री देखने को मिलती है।

इनके घरो में परिवारो की संख्या चार से आठ होती है बच्चो की संख्या भी चार से छः है। परिवार की संख्या अधिक और आमदनी कम होने के कारण गरीबी में जीवन यापन होता आवश्यकतानुसार कपडे, भोजन प्राप्त नही हो पाता है। शासन की दो बच्चों वाली योजना की जानकारी इनको नही रही, शिक्षा के अभाव के कारण। किन्तु वर्तमान में कुछ पढ लिखकर शिक्षित हो रहे है जिसके कारण काफी हद तक सुधार देखने को मिलता है।

इस प्रकार समस्त रीति रिवाजो और संस्कारो को देखकर गोंड जनजाति समुदाय भारत देश मे अपनी एक विशिष्ट लोक संस्कृति को दर्शाता है।

सहायक संदर्भ :

1. डॉ राजाराम तिवारी (सम्पादक), ककसाड़ राष्ट्रीय मासिक पत्रिका–जनजातीय चेतना कला साहित्य संस्कृति एवं समाचार, डी.एन के हर्बल स्टेट कोण्डागांव, छ.ग. 494226
2. इंटरनेट गूगल सर्च
3. डॉ योग्यता भार्गव (सम्पादक), साहित्य मे जनजाति जीवन–दर्शन, निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स 37 "शिवराम कृपा" विष्णु कोलोनी, शाहगंज आगरा, यूपी 9458009531–38
4. चौमासा– आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश, संस्कृति परिषद भोपाल का प्रकाशन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 155-162

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

परिकल्पना (Hypothesis)

Puja Panda
Research Scholar. Department-PhD. Economics,
Sonadevi University Ghatsila East Singhbum, Jharkhand.

परिकल्पना को साधारणतः अनुसंधान षोध कार्य का महत्वपूर्ण उपाय माना गया है, परिकल्पना एक अल्पकालिक चिन्तन है, जो इनके तर्कसंगत एवं षोध पर आधारित अनुभूति के परिणामों का परीक्षण करने के लिए बनाई जाती है। परिकल्पना के बगैर षोध को हम आगे नहीं बढ़ा सकते है, जब षोध में एक अच्छी परिकल्पना का रचना किया जाता तो षोध का का कार्य काफी हद तक पूर्ण हो जाता है। चिन्तन एवं कोतूहल मनुष्य की मूल अवधि में से एक है एवं यही उनके वैज्ञानिक कसौटी के केन्द्र भी है, परिकल्पना जो षोध के प्रथम स्तर पर किया जाता है। अनुसंधान से पहले अनुसंधान के कारण एवं परिणाम के विषय में हम एक जो सुनिष्चित विचार बनाते है उसे ही परिकल्पना कहते है। परिकल्पना का षाब्दिक अर्थ पूर्व सोच–विचार या सिद्धांत एक ऐसा विचारधारा है, जिनके मापदंड पर अनुसंधाकर्त्ता अपने अनुसंधान या षोध के लक्ष्य को तक कर सकता है तथा उसकी परख भी करता है। परिकल्पना के तहत् समस्या के प्रारंभिक खोज को प्राप्त कर सकते है, जिसकी सहायता से हम अपने षोध के रूपरेखा को प्रस्तुत करते है।

परिकल्पना की सबसे प्रारंभिक अवस्था में कोइ कल्पनाषील विचार हो सकता है, जो षोध जाँच का साधन वन जाता है। परिकल्पना में परीक्षण योग्य एक अच्छि विषेषताएँ होती है। परिकल्पना विषिष्ट एवं सत्यापिक होती है। इनमें तार्किक सरलता, गैर चिराधाभासी होती है। यह सहज होती भी है किन्तु अत्यधिक सहज भी नहीं अनेक प्रकार के परिकल्पनाएँ होती है, जैसे सामान्य, जटिल, संख्यिकीय और अस्थायी रूप से होती है। परिकल्पनाओं को कुछ स्त्रोतों से गुजरना पड़ता है, जैसे एक अच्छी षोध के लिए अनुभव से प्राप्त करना पड़ता है, जो कि परिकल्पना के विकास और षोध में मदद मिलती है एवं इनके महत्व का भी पता लगाया जाता है। "परिकल्पना' (प्रा)' (प्रारंभिक) + (विचार) अनुसंधान के विषय के संबंध का प्रारंभिक विचार है। अतः कुल मिलाकर षोध के दो भाग होते है। षोध के पहले चिन्तन और षोध के बाद का चिन्तन।"[1]

कुछ विद्वानों के अनुसार ''परिकल्पना की परिभाषाएँ'' निम्न है जो इस तरह परिभाषित किया जा सकता है।

- लुण्डवर्ग के अनुसार ''परिकल्पना एक सामयिक एवं कामचलाऊ है, जिसके वैधता की जाँच षाश रहती है''।[2]

यंग के अनुसार ''एक कार्यवाहक विचार, जो उपयोगी अनुसंधान का आधार बनता है, कार्यकारी परिकल्पना के नाम से जाना जाता है। बार तथा स्केट्स के अनुसार ''परिकल्पना अस्थायी रूप से सच माना हुआ कथन है।

- गुडे तथा हाट के अनुसार ''परिकल्पना इस विषय का वर्णन करती है कि हम देखना क्या चाहते है। परिकल्पना भविष्य की और देखती है। यह एक तर्कपूर्ण कथन है, जिसकी वैधता की परीक्षा की जा सकती है। यह सही भी हो सकती है और गलत भी''।
- मैकगुइगन के अनुसार ''परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों के संबंधों का कथन है।[2]

इस तरह विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न तौर पर परिकल्पना को परिभाषित किया है।

परिकल्पना एक ऐसी चिन्तन या धारणा है जो तर्क के लिए उपस्थापित किया जा सकता है। यह देखने के लिए कि वह सत्य है या नहीं है।[3]

हम उपकल्पानओं के विषय में यह अनुमान लगा सकते हे कि परिकल्पना के कारण वैज्ञानिक आविष्कारों में बहु सी उपलब्धियाँ हासिल हुई होगी। परिकल्पना कोई भी षोध में एक मीलों का पत्थर के समान होती है। परिकल्पना षोध का वह केन्द्र होता है, जहाँ हम निष्कर्ष का प्रस्ताव करते है। परिकल्पना उन मान्यताओं पर आधारित है, जो हम इकट्ठा किये हुए प्रमाणों से विष्लेषण निकालते है।

परिकल्पना में हम जो सोचते है और उनके अनुसार कई बिन्दुएँ षामिल करते है, और उनको सफल बनाने का भी प्रयास करते है। वास्तव में हम कुल उदाहरण के साथ परिकल्पना का अर्थ एवं प्रकार क्या है इसके बारे में आलोचना करेंगे।

परिकल्पना क्या है?

इकट्ठा किये हुऐ कुछ सीमित प्रमाणों के आधार में किये गए धारणा को परिकल्पना के नाम से जाना जाता है। परिकल्पना अध्ययन का प्रथम बिन्दु है जो अनुसंधान पूर्व अनुमान में बदल देता है और यह सत्य भी हो सकता है और नहीं भी हो सकते है।

यह प्रयोग किये गये चर और जनसंख्या पर निर्भर किया जा सकता है एवं चर के बीच में संबंध में भी दो या दो से अधिक चर के बीच संबंध का परख करने के लिए प्रयोग की जाने वाली उपकल्पना को षोध परिकल्पना के नाम से जाना जाता है।[4]

परिकल्पना के कुछ गुण भी होते है, जिसे हम इस तरह व्यक्त कर सकते है।

- परिकल्पना सही हो या गलत हो, इसका अनुभव को परीक्षण किया जाता है।
- इसमें विचार किया हुआ चरों के बीच संबंध स्थापित किया जाता है।
- परिकल्पना विस्तृत और सटीक होना चाहिएँ।
- इसमें भविष्य के अध्ययन करने की गुंजाइष होनी चाहिए तथा ज्यादा से ज्यादा परीक्षण करने में समर्थ होना चाहिएँ।
- परिकल्पना परीक्षण सठिक समय में किया जा सके एवं यह विष्वसनीय भी होना चाहिएँ*[5]

परिकल्पना के परीक्षण के प्रकार :– जैसे –

- षून्य परिकल्पना
- सरल परिकल्पना
- जटिल परिकल्पना
- दिषात्मक परिकल्पना

- गैर दिषात्मक परिकल्पना
- कारणात्मक परिकल्पना
- सांख्यिकीय, इतने प्रकार के परिकल्पना होती है।[6]

परिकल्पना के प्रकार भी निम्न होती हैं :–

- षून्य परिकल्पना :– Null Hypothesis
- वैकल्पिक परिकल्पना :– Alternative Hypothesis

(a) **शून्य परिकल्पना :–** यह दर्षाता है कि जब हम एक चर का अध्ययन करते है तो दुसरे चरों को प्रोत्साहित नहीं कर सकते। षून्य परिकल्पना का मतलब यह है कि दो कारक एक–दूसरे से स्वतंत्र है और जनसंख्या के लक्षण की भी समान है। षून्य परिकल्पना को तोड़ने के लिए हम षून्य परिकल्पना के साथ–साथ वैकल्पिक परिकल्पना की भी संभावना को आकलन करते है।

Prof. R.A. Fisher के अनुसार ''षून्य परिकल्पना एक ऐसी परिकल्पना है, जिसे होने वाली अस्वीकार के लिए परीक्षण किया जाता है यह मानते हुए कि यह सठिक है। उदाहरण HO_2 7.8 सारा परिकल्पनीय परीक्षण षून्य परिकल्पना है पर ही आधारित है एवं इसे HO से दर्षाया जाता है, यह षून्य परिकल्पना जो यह बताती है कि चारों और में प्रसरण 7.8 है, परन्तु हमारे मस्तिक से एक प्रष्न की अत्पति होती है, जो 'षून्य परिकल्पना' षब्द की उत्पत्ति के तरफ है।[6]

(b) **वैकल्पिक परिकलना :–** '' सभी षून्य परिकल्पना के साथ–साथ ओर एक परिकल्पना षामिल किया जाता है, जिसे वैकल्पिक परिकल्पना के नाम से जाना जाता है। इसे H1 से दर्षाया जाता है एवं HA द्वारा भी दर्षाया जाता है। साधारणतः (वैकल्पिक परिकल्पना) H1 प्रतिदर्ष कारक को अलग हिस्सों को तोड़ने का निर्धारण करती है, जो स्वीकृत व विषेष क्षेत्र कहलाते है। इस तरह कोई भी प्रतिदर्ष का परिणाम एक षर्त पर टिकी होती है। अर्थात यह वैकल्पिक परिकल्पना के चुनाव पर निर्भर करती है।

टिप्पणी :– वैकल्पिक परिकल्पना के तहत हम कोई निर्णय नहीं ले सकते है अर्थात जब भी षून्य परिकल्पना में हम सफल नहीं हो पाते तब हम वैकल्पिक परिकल्पना H1 द्वारा निर्णय ले सकते है, मतलब एक परिकल्पना जो षून्य परिकल्पना से भिन्न है और जिसको हम स्वीकार करते है तब Ho को अस्वीकार करते है।[7]

श्री लुण्डवर्ग के अनुसार ''एक सफलता पूर्वक परिकल्पना की खोज में हम साहित्य दर्षान, समाजषास्त्र, स्लोक के विस्तृत वर्णनात्मक साहित्य, मनुष्य के काल्पनिक सिद्धांतो या उस गम्भीर विचारों के सिद्धांतो की सम्पूर्ण दुनिया में विचरण कर सकते है, जिन्होंने मानव के सामाजिक सम्बन्धों के गहन अध्ययन कार्य में अपने को प्रस्तुत किया।[8]

श्री एम0 एच0 गोपाल ने परिकल्पना के प्रचार एवं निर्माण के लिए प्रमुख स्त्रोत भी बताये है जैसे [9]सामान्य संस्कृति जो हर समाज संस्कृति होती है। परिकल्पनाओं को दिषा प्रदान करने के लिए संस्कृति की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक अनुसंधान में समस्याओं पर सामाजिक घटनाओं को इन सांस्कृतिक विषेषताओं से पृथक करके समझा नहीं जा सकता है। भारत देष में जाति प्रथा, जजमानी प्रथा एवं संयुक्त परिवार, आदि से संबंधित कई परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है। गाँव में जन जीवन करने वाले मनुष्य में होने वाले परिवर्तन की भी कई परिकल्पनाएँ हो सकती है। उसी तरह अनुभव के आधार भी

परिकल्पनाओं के निर्माण होती है। अनुभव दो प्रकार के होते है। (a) व्यक्तिगत अनुभव एवं (b) कोई अनुभवी व्यक्तिओं से परिचर्चा कर सामाजिक घटनाओं और समस्याओं से संबंधित कई परिकल्पना का जन्म होता है।

अतः कईवार विज्ञान एवं वैज्ञानिक सिद्धांत (Scientific Theories) आदिकाल से ही परिकल्पनाओं के आधार बने रहे है। इसमें जब इनकी पुनः परीक्षण की जाती है। और इसके आधार पर नहीं सामान्यीकरण को जन्म दिया जाता है। कभी–कभी अनुसंधानकर्त्ता की अपनी व्यक्तिगत समझ भी एक नवीन परिकल्पना को जन्म देने में सहायक प्रदान होती है। व्यक्तियों की सोच एवं समझ में फर्क होना अत्यंत स्वभाविक होता है, जो व्यक्ति में अच्छी सूझ (Insight) होगी। वह अच्छी परिकल्पना को निर्माण करता है एवं यह इसके विपरित भी हो सकता है। परिकल्पना के निर्माण को सहायक बनाने के लिए हम रचनात्मक दृष्टिकोण (Creative Attitude) को भी अपनाते है। जैसे अच्छी तैयारी (Preparation), विकास (Development), परीक्षण (Verification) और प्रेरणा (Inspiration) सबसे पहले मस्तिष्क में विचार पनपती है, और जो विकसित होते है तब उस पर कार्य करने के लिए प्रेरणा मिलती है तो परिकल्पना का जन्म होता है।[9]

कभी–कभी सामाजिक घटनाओं से संबंधित परिकल्पनाए हमारे जीवन के कई क्षेत्र में विद्यमान रहती है, जिनकी सतता की परख हम कर सकते है और जिस भी क्षेत्र में अनुसंधान एक बार होते है उसका अवलोकन से भी भविष्य में अनुसंधान के लिए परिकल्पना को निर्माण किया जा सकता है।

परिकल्पना की प्रकृति :– Nature Of Hypothesis

[10]परिकल्पना की कुछ प्रकृति भी होती है। जैसे–सरल परिकल्पना Simple :– यह परिकल्पना कुछ निर्दिष्ट प्राचल मानों के औसत से परिभाषित की जाती है, जिसे सरल परिकल्पना कही जाती है।

* संगठित परिकल्पना (Composite Hypothesis) यह परिकल्पना कुछ अनिर्दिष्ट प्राचल मानों के औसत से परिभाषित किया जाता है, जिसे संगठित परिकल्पना कहा जाता है।[10]

Ref. 10 Gupta Dr. B.N, Gupta Nitin, SBPD Publication, Agara, 2022 Page No. 23

परिकल्पना की विशेषताएँ : Features Of Hypothesis

[11]यह प्राकृतिक रूप से वैचारिक है। इसका एक ढांचा तैयार किया जाता है, जिसमें कुछ तरह के वैचारिक तत्व परिकल्पना में रखा जाता है।

* यह एक अनुभवजन्य संदर्भ होता है। यह दो या दो से अत्यधिक चरों के माध्यम प्रयोगात्मक संबंध इंगित करता है।
* यह मुख्य रूप से एक मौखिक कथन है। यह सिर्फ मौखिक रूप से एक विचार नहीं बल्कि अनुभव किये गये सत्यापन के लिए तैयार होते है।
* परिकल्पना की सहायता से भविष्य में होने वाले घटना के संकेत मिलती है, परिकल्पना भविष्य उन्मुखी होती है[11]
* यह वैज्ञानिक अनुसंधान का एक मुख्य आधार है। सभी षोध गतिविधियाँ को जाँच करने के लिए तैयार किया जाता है।[11]

परिकल्पना का कार्य : Function of Hypothesis

कुछ विद्वानों के द्वारा सुझाए गए, परिकल्पना के मुख्य कार्य होते है, जैसे :–

- परिकल्पना सच्चाई से संबंधित समस्या का एक अस्थायी समाधान है, जो षोधकर्त्ता को अपना षोध कार्य प्रारंभ करने में सक्षम बनाता हैं।
- कोई भी परिकल्पना एक अन्य परिकल्पना तैयार करने के नेतृत्व कर सकती है।
- एक षुरूवाती परिकल्पना, षोध परिकल्पना का आधार ले सकती है।

परिकल्पना का महत्व : Importance of Hypothesis

परिकल्पना अनुसंधान का प्राथमिक स्त्रोत है, जिसके बिना षोध असंभव है, इसलिए परिकल्पना षोध का कॉफी महत्वपूर्ण हिस्सा है, कभी–कभी अध्ययन का क्षेत्र काफी बड़ा होता है तो ऐसी परिस्थिति में अनुसंधानकर्त्ता अपने रास्ते से भटक जाती है। जिसके लिए अनुसंधान संभव नहीं हो पाता जब परिकल्पना अनुसंधानकर्त्ता को उसके क्षेत्र को सीमित करने में सफल प्रतीत होता है। परिकल्पना से षोध को स्पष्ट रूप दिया जाता है, जिससे अनुसंधानकर्त्ता को यह पता लगाना सरल हो जाता है कि षोध का कार्य क्या होता है। परिकल्पना एक लक्ष्य को जन्म देता है, जिससे अनुसंधानकर्त्ता को एक अच्छा सोच–विचार करने में सहायता मिलती है और षोधकर्त्ता के सामने प्रतिदर्ष एवं षोध प्रक्रिया का चुनाव करने का आधार मिल जाता है।

[12]एम0एच0 गोपाल के अनुसार ''परिकल्पना के बगैर षोधकर्त्ता कभी–कभी व्यर्थ तथ्य या सामग्री भी एकत्रित कर सकता है और देखा जाय तो वास्तव में महत्वपूर्ण और लाभकारी सामग्री उसकी दृष्टि से छुट सकते है।[12]

[13]श्रीमती यंग के अनुसार ''परिकल्पना के प्रयोग में उन सभी तथ्यों की अच्छी अनुसंधान या तथ्यों के संकलन पर नियंत्रण होता है जो बाद में किए गए अध्ययन के समस्या के लिए अप्रासंगिक सिद्व हो।[13]

उदाहरण :– जिस तरह ध्रुवतारा राम में भटके हुए व्यक्ति को दिषा देती है। ठिक उसी प्रकार भी षोधकर्त्ता की दिषा को निर्देषित करती है।

अतः श्रीमती यंग के अनुसार ''[14]परिकल्पना का प्रयोग एक दृष्टिहीन खोज से रक्षा करता है।[14]

परिकल्पनाओं की सीमाएँ : Limitation of Hypothesis :

परिकल्पना का निर्माण यदि बहुत सावधानी से किया जाये तो यह निष्चित है कि यह वैज्ञानिक अनुसंधान के रास्ते में काम करती है, एवं एक अच्छा कार्य प्रदर्षन कर रही है और अगर परिकल्पना का निर्माण सही तरह से नहीं किया जाये तो यह घातक भी हो सकती है तथा अंत में उसके पूरी निष्कर्ष संदेहषील हो सकते है। परिकल्पना की कुछ सीमाएं भी होती है जो इस तरह है।

परिकल्पना में विश्वसनीयता : Confidence In Hypothesis

परिकल्पना षोधकर्त्ता के खुद के अनुभव पर निर्भर होती है तथा कभी–कभी षोधकर्त्ता को षुरू में ही परिकल्पना में विष्वास होता है, तथा वह हर आँकड़ो को तोड़कर–जोड़कर परिकल्पना को सत्य साबित करने का चेष्टा करता है और यह हो सकता है कि यह सत्यता के विपरीत हो।[14]

[15]**रूचि :– Interest**' परिकल्पना की निर्माण में रूचि या झुकाव हो सकती है, अगर षोधकर्त्ता को कोई खास सम्प्रदाय के प्रति झुकाव हो तो यह संभवना होती है कि परिकल्पनाओं का निर्माण तथ्या संकलन एवं निष्कर्ष स्पष्ट हो।[15]

[16]**आँकड़ा सकलन का परिबद्व प्रकृति – Limited Nature of Data Collection :-** अगर कम अनुभव

होने के कारण परिकल्पना का निर्माण सही तरह से नहीं किया गया है तो यह भी होने की संभावना होती है कि घटना का सत्यता का जानकारी कभी न चल पाए कारण परिकल्पना केवल षोधकर्त्ता को सीमित या परिबद्ध आँकड़ों के संकलन पर जोर देती है।[16]

देखा जाये तो एक सीमित परिकल्पना का निर्माण इसलिए किया जाता है ताकि इस अपने षोधकार्य के समय यह मालूम कर सके कि हमें करना क्या है एवं किस प्रकार की जानकारी प्राप्त करना है किस आँकड़ो को लेना है और किसे नहीं लेना है। या तो हमारे लिए कोन से तथ्य महत्वपूर्ण है और क्या महत्वपूर्ण नहीं है।

अतः इस प्रकार षोधकर्त्ता कभी–कभी यह भी गलती कर बैठता है कि परिकल्पना को ही अपने षोध अध्ययन का वास्तव में निष्कर्ष मान लेते है और उस परिस्थिति में षोधकर्त्ता आँकड़ो को हर तरफ से जोड़कर इकट्ठा कर प्रस्तुत करता है, जिसमें परिकल्पना की सच्चाई प्रमाण हो सके।

[17]इस तरह परिकल्पना को ही वास्तव में षोधकार्य का निष्कर्ष मानने की वैज्ञानिक निष्कर्ष या वास्तव में सत्यता की और जाने से रोकती है और ऐसा तब सम्भव होता है, जब षोधकर्त्ता वास्तविक आँकड़ों के अनुसार परिकल्पना को नहीं बदलकर परिकल्पना के अनुसार आँकड़ों को विकृत करने की गलती कर देते है। वैज्ञानिक निष्कर्ष का मापदंड कार्यकाल विचारों द्वारा रचित परिकल्पना नहीं किन्तु स्पष्टवादी होने वाले प्रमाणिक तथ्य ही है। इस सच्चाई को भुला देना वैज्ञानिक षोधकार्य के लिए आवष्यक खोफ मान लेना होता हैं अगर परिकल्पना के प्रणयन में षोधकर्त्ता ने अध्ययन को अपनी इच्छा के अनुसार एक दृढ़ विष्वास से देखा है। अपने प्रतिमान के कारण उनको अपने अनुसार व्याख्या किया है और अगर निष्पक्ष तौर से वास्तविक आँकड़ों के मापदंड पर उसकी सच्चाई की परख नहीं की गई है। तब ऐसी परिकल्पना से विज्ञान का कोई लाभ कदापि होने का प्रत्याषा नहीं है।[17]

एक परिकल्पना दो या दो से ज्यादा चरों के मध्य सरोकार का अनुदेष विवेचन है, निर्णय के स्थान में मिलने वाले ऐसे विवरण जिन्हें जाँच की मानदंड पर परखा जाना है। उसे परिकल्पना के नाम से जानते है। परिकल्पना षोध समस्या के निरूपण को दर्षाते है। परिकल्पना मौजुदा तथ्य पर आधारित होती है, जो एक अच्छी परिकल्पना हो सकती है और अच्छी परिकल्पना समीक्षण योग्य होनी चाहिए। जैसे :–

(i) 18 परिकल्पना उत्कृष्ट होनी चाहिए।

(ii) परिकल्पना प्रमाणित हाने में कुषल होनी चाहिए।

(iii) परिकल्पना में सम्मोहक सुगमता होनी चाहिए।

(iv) परिकल्पना दूसरा विपरीत की और होनी चाहिए।

(v) परिकल्पना अप्रयोजनीय रूप से अतिरिक्त सम्प्रदान में षामिल नहीं होनी चाहिए।

(vi) परिकल्पना सुगम नहीं होनी चाहिए।

इस प्रकार एक अच्छी परिकल्पना में विषेष निपुणतज्ञ होनी चाहिए। कभी–कभी अच्छी परिकल्पना के प्रणयन में कुछ कठिनाईयाँ भी हो सकती है। परिकल्पना के रचना में समय–समय पर सतर्क रखने के बाद भी कुछ कठिनाईयाँ आने की संभावना हो सकती है। परिकल्पना के रचना इतना भी सहज नहीं है।

[19]षोधकर्त्ता को पहले स्थिति के ज्ञान के अनुसार जरूरी काल्पनिक ढाँचा लागू करने योग्य नहीं हो पाता, जिससे विषय के बारे में अंदाजा लगाना कठिन हो जाता है। यदि षोधकर्त्ता को षोध के क्षेत्र में काल्पनिक ज्ञान

का कमी होता है, तो वह अच्छी परिकल्पना का प्रणयन करने में सक्षम नहीं हो पाता षोधकर्त्ता को अनुसंधान क्षेत्र का बोध होना चाहिए अगर षोधकर्त्ता को अनुसंधान क्षेत्र का अचूक जानकारी नहीं है, तो अच्छी परिकल्पना का निर्माण नहीं कर सकता यदि षोधकर्त्ता कुछ ऐसे विषय पर काम कर रहा जो पूर्व में कभी कार्य नहीं हुआ तो भी परिकल्पना के रचना में मुष्किल आ सकती है। यदि सामाजिक घटनाओं में रफ्तार से रूपांतर होने के कारण षोध विषय के संबंध में पहले से ही अनुमान लगाना जटिल होता है। समाज की साधारण विषेषताओं के बुनियाद पर किया जाता है, लेकिन सांस्कृतिक अर्जन के परिणामस्वरूप सांस्कृतिक विषेषताओं में दृढ़ता नहीं है। अतः व्याकुलता में भी कठिनाई होती है।[19]

निष्कर्ष :–

सामाजिक अनुसन्धान में परिकल्पना एक महत्तपूर्ण पथ–प्रदर्षक है, और अगर इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक नहीं किया जाये तो अध्ययन के क्षेत्र में बाधाए आने की संभावना हो सकती है। इनमें एक बात को सर्वथा जागरूक होना चाहिए कि वैज्ञानिक निचोड़ का बुनियाद सीमित विचारों पर बनाया हुआ परिकल्पना नहीं बल्कि सुस्पष्ट होने वाले वास्तविक सिद्वांत है।

Reference :

1. Baghel Dr. D.S सामाजिक अनुसंधान, SBPD Publication, Agara, 2022, Pg. No. 101
2. Baghel, Dr. D.S. सामाजिक अनुसंधान (2022) SPPD Publication. Agra, Pg. No.-102, 103)
3. Ref-3.(https://www.vedantu.com)
4. (वही)
5. (वही)
6. Gupta Dr. B. N or Gupta Nitin, षोध पद्वतियाँ, SBPD Publication, 2022 Pg No. 21, 22
7. (वही) Peg No. 21
8. Baghel Dr. D.S सामाजिक अनुसंधान, SBPD Publication, Agra 2022, Peg No.104
9. (वही), Peg No. 104, 105
10. Gupta Dr. B.N, Gupta Nitin, SBPD Publication, Agara, 2022 Page No.23
11. (वही) Peg No. 26
12. (Baghel Dr. D.S. Samazik Anusandhan, SBPD Publicaiton Agra 2022, Page No-107
13. (वही), Peg No-107
14. (वही), Peg No-108
15. (वही)
16. (वही)
17. (वही)
18. (https:monad.edu.in>img>india>uploads>.pdf.monadunivresity)
19. Baghel Dr. D.S., Samajik Anusandhan, SBPD, Publiction Agara, 2022, Page No-106, 107, 108

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 162-171

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

A Study of Capacity Building and Corporate Social Responsibility in NGOs through E-Learning and Digital Tools : A Perspective of Varanasi

Prof. (Dr.) Chandrashekhar Singh
Department of Social Work
Mahatma Ghandhi Kashi Vidhyapith, Varanashi.

Abstract :

In the evolving landscape of development practice, Non-Governmental Organizations (NGOs) play a crucial role in addressing socio-economic challenges. With the advent of digital technologies and the institutionalization of Corporate Social Responsibility (CSR) in India, new pathways have emerged for strengthening NGO capacity. This research paper critically examines the intersection of capacity building, CSR, and digital transformation through e-learning tools, focusing on Varanasi as a case study. The study adopts a mixed-method perspective, drawing upon both theoretical insights and contextual realities. It finds that CSR-supported digital interventions significantly enhance NGO effectiveness, though challenges such as digital inequality, resource limitations, and socio-cultural barriers persist. The study concludes with policy recommendations for sustainable and inclusive development.

Introduction :

The development sector in India has undergone a significant transformation over the past two decades. NGOs have emerged as vital actors in bridging gaps between the state and marginalized communities. However, their effectiveness often depends on their internal capacity, including human resources, organizational systems, and technological adaptability.

Capacity building, therefore, becomes essential for ensuring that NGOs can deliver impactful interventions. Traditionally, capacity building involved physical training sessions and workshops. However, with the rise of digital technologies, e-learning platforms and digital tools have revolutionized the way knowledge is disseminated.

Simultaneously, Corporate Social Responsibility (CSR), formalized under the Companies Act, 2013, has created new opportunities for collaboration between corporates and NGOs. CSR initiatives have increasingly focused on digital education, skill development, and institutional strengthening. In this context, Varanasi presents a unique setting. Known for its cultural heritage and socio-economic diversity, Varanasi also reflects the challenges of digital transition in semi-urban India. NGOs in this region are navigating the intersection of tradition and modernity while adopting digital tools.

Non-Governmental Organizations (NGOs) have emerged as vital agents of social change, particularly in developing countries like India, where they complement state efforts in addressing issues such as poverty, education, health, gender inequality, and social justice. Over time, the role of NGOs has expanded from service delivery to advocacy, community mobilization, and policy engagement. However, the effectiveness of these organizations largely depends on their internal capacities—skills, knowledge systems, organizational structures, and access to resources. In this context, **capacity building** has become a central concern in strengthening NGOs to perform efficiently and sustainably.

Traditionally, capacity building in NGOs relied on face-to-face training, workshops, and field-based learning. While these methods have been effective, they often involve high costs, limited outreach, and logistical challenges. The rapid advancement of digital technologies has introduced new possibilities for overcoming these limitations. **E-learning and digital tools**—such as online training platforms, mobile applications, virtual classrooms, and data management systems—have transformed the way NGOs build capacities. These tools offer flexibility, scalability, and cost-effectiveness, enabling organizations to train their staff and volunteers more efficiently, even in geographically dispersed areas.

At the same time, the emergence of **Corporate Social Responsibility (CSR)** as a structured and legally supported framework has significantly influenced the development sector in India. With the enactment of the Companies Act, 2013, CSR has become a mandatory obligation for certain categories of companies, requiring them to invest a portion of their profits in social development initiatives. This has created new opportunities for partnerships between corporates and NGOs. CSR initiatives often focus on areas such as education, digital literacy, skill development, and institutional strengthening, thereby contributing directly to the capacity building of NGOs. Moreover, many corporations are increasingly supporting the adoption of digital tools and e-learning platforms as part of their CSR strategies, recognizing the importance of technology in achieving sustainable development goals.

In recent years, the convergence of CSR and digital transformation has opened new avenues for enhancing the effectiveness of NGOs. Through CSR funding and technical support, NGOs are now able to adopt innovative digital solutions that improve their operational efficiency, transparency, and outreach. E-learning platforms, for instance, enable continuous professional development of NGO staff, while digital tools facilitate better communication, monitoring, and evaluation of programs. This integration not only strengthens organizational capacity but also enhances the overall impact of development interventions.

The relevance of this study becomes particularly significant when examined in the context of Varanasi. Known as one of the oldest living cities in the world, Varanasi represents a unique blend of tradition and modernity. While the city is rich in cultural and spiritual heritage, it also faces several socio-economic challenges, including poverty, unemployment, low levels of digital literacy, and disparities in access to education and healthcare. NGOs in Varanasi play a crucial role in addressing these issues, especially among marginalized communities such as women, children, and economically weaker sections.

However, NGOs operating in Varanasi often encounter multiple constraints, including limited financial resources, lack of skilled manpower, and inadequate access to modern technology. In such a scenario, CSR support and digital tools can play a transformative role in enhancing their capacity. The adoption of e-learning and digital platforms can help NGOs in Varanasi overcome geographical and resource limitations, enabling them to reach a wider audience and improve service delivery. At the same time, CSR initiatives can provide the necessary financial and technological support to facilitate this transition.

Despite the growing importance of digital capacity building and CSR in the NGO sector, there is a noticeable gap in empirical research focusing on smaller cities like Varanasi. Most existing studies tend to concentrate on metropolitan areas, overlooking the unique challenges and opportunities present in semi-urban and culturally rooted regions. Therefore, this study aims to fill this gap by examining how NGOs in Varanasi are leveraging e-learning and digital tools for capacity building, and how CSR initiatives are supporting this process.

The present study is guided by the understanding that capacity building is not merely a technical process but a holistic and continuous effort that involves human, organizational, and institutional development. It also recognizes that digital technologies are not a panacea but a means to enhance efficiency and inclusivity when implemented effectively. Furthermore, the study acknowledges the critical role of CSR in bridging resource gaps and fostering innovation in the NGO sector.

In essence, this research seeks to explore the dynamic interplay between capacity building, CSR, and digital transformation in NGOs, with a specific focus on Varanasi. By analyzing the opportunities, challenges, and outcomes associated with the use of e-learning and digital tools, the study aims to contribute to a deeper understanding of how NGOs can be strengthened in the digital age. The findings are expected to provide valuable insights for policymakers, corporate stakeholders, development practitioners, and researchers working towards inclusive and sustainable development.

Conceptual and Theoretical Framework :

Capacity Building : Concept and Dimensions :

Capacity building refers to the process through which individuals, organizations, and communities enhance their abilities to perform functions effectively, efficiently, and sustainably. It operates at three levels:

- **Individual Level** – Skills, knowledge, and competencies
- **Organizational Level** – Systems, processes, governance
- **Institutional Level** – Policy environment and networks

Scholars argue that capacity building is not merely training but a continuous process of empowerment and transformation.

Corporate Social Responsibility (CSR) :

CSR refers to the responsibility of businesses to contribute to sustainable development. In India, CSR is legally mandated, requiring companies to allocate a portion of their profits to social causes.

CSR plays a crucial role in :

- Funding NGO activities
- Providing technological infrastructure
- Facilitating knowledge transfer

The stakeholder theory and triple bottom line approach (people, planet, profit) provide the theoretical basis for CSR.

Digital Transformation and E-Learning :

E-learning refers to the use of electronic technologies to access educational curriculum outside traditional classrooms.

Key components include :

- Learning Management Systems (LMS)
- Webinars and virtual classrooms
- Mobile-based learning

- AI-based analytics

Digital transformation enhances scalability, accessibility, and efficiency in NGO operations.

Theoretical Integration :

This study integrates :

- **Human Capital Theory** (importance of skills)
- **Diffusion of Innovation Theory** (technology adoption)
- **Participatory Development Theory** (community engagement)

Review of Literature :

Existing literature reveals a growing interest in digital capacity building :

- Studies indicate that CSR enhances NGO sustainability through financial and technical support.
- Research on e-learning highlights its role in democratizing education and training.
- Digital India initiatives have accelerated technology adoption in rural and semi-urban areas.

However, gaps remain :

- Limited focus on small-city contexts like Varanasi
- Lack of integration between CSR and digital capacity building
- Insufficient field-based analysis

Objectives of the Study :

- To examine the concept and importance of capacity building in NGOs
- To analyze the role of CSR in strengthening NGO capacity
- To assess the use of e-learning and digital tools
- To study the specific context of Varanasi
- To identify challenges and policy gaps
- To suggest strategies for improvement

Research Methodology :

Research Design :

Descriptive and analytical research design.

Data Collection :

Primary Data :

- Interviews with NGO workers
- Field observations in Varanasi

Secondary Data :

- Government reports
- CSR reports

- Academic journals

Sampling :

Purposive sampling of NGOs working in education, health, and women empowerment.

Tools of Analysis :

- Qualitative analysis
- Thematic interpretation

Role of CSR in NGO Capacity Building :

CSR has become a major driver of NGO development.

Financial Strengthening :

CSR funds help NGOs :

- Expand programs
- Invest in infrastructure
- Ensure sustainability

Human Resource Development

CSR initiatives provide :

- Training workshops
- Leadership development programs
- Exposure visits

Technological Support

Corporates often provide :

- Software tools
- Digital platforms
- IT training

Institutional Strengthening

CSR encourages :

- Transparency
- Accountability
- Professionalization

E-Learning and Digital Tools in NGOs :

Types of Tools :

- **Communication Tools:** Zoom, Google Meet
- **Learning Platforms:** MOOCs, LMS
- **Data Management Tools:** MIS systems
- **Social Media:** Awareness campaigns

Benefits :

- Cost-effective training
- Wider outreach
- Flexibility
- Real-time monitoring

Limitations :

- Digital illiteracy
- Infrastructure gaps
- Language barriers

Case Study : Varanasi :

Socio-Economic Context :

Varanasi is characterized by :

- High population density
- Cultural diversity
- Economic disparities

NGO Activities in Varanasi :

NGOs work in :

- Education (literacy programs)
- Health (awareness campaigns)
- Women empowerment
- Child welfare

Digital Adoption :

Findings show :

- Increased use of WhatsApp for communication
- Online training sessions during COVID-19
- Use of digital records

CSR Initiatives in Varanasi CSR projects focus on :

- Digital literacy
- Skill development
- Smart classrooms

Challenges

Digital Divide :

Rural and marginalized communities lack access to technology.

Financial Dependency :

NGOs rely heavily on CSR funding.

Skill Gaps :

Lack of technical expertise.

Culturl Resistance :

Preference for traditional methods.

Findings :

- CSR significantly enhances NGO capacity
- E-learning improves efficiency and outreach
- Digital tools increase transparency
- Varanasi NGOs show gradual digital adoption
- Structural challenges remain

Discussion :

The findings suggest that digital transformation is not merely a technical shift but a socio-cultural process. NGOs in Varanasi are adapting to digital tools while negotiating traditional values.

CSR acts as a catalyst, but sustainability depends on internal capacity and community participation.

Recommendations :

Strengthening Digital Infrastructure :

- Affordable internet access
- Rural connectivity

Capacity Building Programs :

- Regular digital training
- Skill development initiatives

Policy Support :

- Government incentives
- CSR policy reforms

Community Engagement :

- Participatory approaches
- Local involvement

Sustainability Focus :

- Reduce dependency on CSR
- Develop internal resources

Conclusion :

The study highlights the transformative potential of integrating CSR, capacity building, and

digital tools in NGOs. In Varanasi, this integration is gradually reshaping the development landscape.

While significant progress has been made, challenges such as digital inequality and resource constraints must be addressed. A collaborative approach involving government, corporates, NGOs, and communities is essential for sustainable development. The present study on **"Capacity Building and Corporate Social Responsibility (CSR) in NGOs through E-Learning and Digital Tools: A Perspective of Varanasi"** highlights the growing significance of digital transformation in strengthening the development sector. NGOs, as key agents of social change, require continuous enhancement of their capacities to effectively address complex socio-economic challenges. In this regard, the integration of e-learning and digital tools has emerged as a powerful mechanism for improving organizational efficiency, knowledge dissemination, and outreach. The study establishes that **capacity building is not a one-time activity but an ongoing and dynamic process** that involves the development of human resources, organizational systems, and institutional networks. Traditional methods of training, although still relevant, are increasingly being complemented—and in some cases replaced—by digital modes of learning. E-learning platforms and digital tools offer flexibility, scalability, and cost-effectiveness, enabling NGOs to overcome geographical and financial constraints. These tools also facilitate real-time communication, monitoring, and evaluation, thereby enhancing transparency and accountability within organizations. A key finding of the study is the **transformative role of Corporate Social Responsibility (CSR)** in supporting NGO capacity building.

CSR has evolved from a philanthropic activity to a strategic partnership model, where corporates actively collaborate with NGOs to achieve sustainable development goals. Through financial assistance, technological support, and skill development initiatives, CSR has significantly contributed to the professionalization and modernization of NGOs. In particular, CSR-driven digital interventions—such as the provision of online training platforms, digital infrastructure, and technical expertise—have enabled NGOs to adopt innovative approaches in their functioning. From the perspective of Varanasi, the study reveals a gradual but notable shift towards digital adoption among NGOs. Despite being deeply rooted in traditional socio-cultural practices, NGOs in Varanasi are increasingly recognizing the importance of digital tools in enhancing their effectiveness. The COVID-19 pandemic further accelerated this transition, compelling organizations to adopt online modes of training, communication, and service delivery. However, the extent of digital integration varies across organizations, depending on factors such as resource availability, technical expertise, and organizational readiness. At the same time, the study identifies several **challenges that hinder the effective implementation of digital capacity building**. The digital divide remains a significant barrier, particularly for smaller NGOs and marginalized communities that lack access to reliable internet connectivity and digital devices. Additionally, limited digital literacy among NGO staff and

beneficiaries poses challenges in the adoption of e-learning tools. Financial dependency on CSR funding also raises concerns about long-term sustainability, as many NGOs struggle to maintain digital initiatives in the absence of continuous external support. Furthermore, resistance to change and a preference for traditional methods can slow down the process of digital transformation.

Despite these challenges, the overall findings suggest that the **synergy between CSR, capacity building, and digital tools holds immense potential** for strengthening NGOs and enhancing their impact. The effective utilization of e-learning platforms can lead to the development of skilled human resources, improved program implementation, and better community engagement. CSR, when aligned with long-term development goals, can act as a catalyst for innovation and sustainability in the NGO sector.

The study underscores the need for a **multi-stakeholder approach** involving government, corporates, NGOs, and local communities. Policymakers should focus on improving digital infrastructure and promoting digital literacy, particularly in semi-urban and rural areas. Corporates should adopt a more strategic and sustained approach to CSR, emphasizing capacity building and technological empowerment rather than short-term interventions. NGOs, on their part, must embrace digital innovation and invest in skill development to remain relevant in an increasingly technology-driven environment. In conclusion, the integration of capacity building, CSR, and digital technologies represents a paradigm shift in the functioning of NGOs. In cities like Varanasi, where traditional values coexist with modern challenges, this transformation offers new opportunities for inclusive and sustainable development. While significant progress has been made, continuous efforts are required to address existing gaps and ensure that the benefits of digital transformation are accessible to all. The future of NGO development lies in building resilient, adaptive, and technologically empowered organizations capable of driving meaningful social change.

References (APA Style) :

- Government of India. (2013). Companies Act, CSR provisions
- CSRBOX. Capacity building reports
- India CSR reports
- Academic journals on NGO development
- Digital India Programme reports
- Relevant NGO case studies

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 172-176

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

डॉ कुँअर बेचैन की ग़ज़लों में अलौकिक प्रेम : संवेदना एवं अभिव्यक्ति

प्रशांत चौरसे

शोधार्थी, हिन्दी, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्यप्रदेश

डॉ. विजयलक्ष्मी पोद्दार

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी), एम.के.एच.एस. गुजराती गर्ल्स कॉलेज, इंदौर, मध्यप्रदेश।

सारांश

यह आलेख डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लों में व्यक्त अलौकिक प्रेम की संवेदना एवं उसकी अभिव्यक्ति का अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें स्पष्ट वर्णन हुआ है कि उनकी ग़ज़लों में प्रेम लौकिक आकर्षण से परे, आत्मा और परमात्मा के मिलन की आध्यात्मिक अनुभूति के रूप में प्रकट होता है। भारतीय भक्ति परंपरा, सूफी चिंतन और रहस्यवादी दृष्टि के प्रभाव से कुँअर बेचैन ने अपनी ग़ज़लों में प्रेम, विरह, समर्पण और आध्यात्मिक अनुभवों को गहन रूप से अभिव्यक्त किया है। उनके काव्य में परमात्मा की सर्वव्यापकता तथा मनुष्य के अंतर्मन में उसकी उपस्थिति का भाव प्रमुख है। मेरी दृष्टि में बेचैन जी अपनी ग़ज़लों के माध्यम से यह प्रतिपादित करने का प्रयास करते हैं कि सच्चा एवं निस्वार्थ प्रेम ही उस परब्रह्म, परम सत्य की प्राप्ति का मार्ग है। उनकी ऐसी कइयों ग़ज़लें मानवीय संवेदना, आध्यात्मिक चेतना और दार्शनिक चिंतन का समन्वय प्रस्तुत करती हैं।

मुख्य शब्द— अलौकिक प्रेम, डॉ. कुँअर बेचैन, हिंदी ग़ज़ल, आत्मा-परमात्मा, इश्क़-ए-हकीकी, भक्ति भावना, रहस्यवाद।

प्रेम मानव जीवन की वह मूल शक्ति है जो समस्त संसार को एकता के सूत्र में बाँधती है। हिंदी ग़ज़लकारों ने जहाँ लौकिक प्रेम का सुंदर चित्रण किया है, वहीं अलौकिक प्रेम को भी गहन भाव से अभिव्यक्त किया है। जीव का ब्रह्म के प्रति प्रेम अलौकिक माना जाता है, जिसे उर्दू परंपरा में 'इश्क़-ए-हकीकी' कहा गया है। प्रेम की दृष्टि में न कोई ऊँच-नीच है, न जाति-धर्म का भेद; सभी समान हैं। भक्तिकालीन संत कवियों ने भी प्रेम को ही भक्ति का आधार बनाया और इसी मार्ग से परम सत्य की प्राप्ति को संभव माना।

सृष्टि के कण-कण में परमात्मा की सत्ता विद्यमान है और परमात्मा स्वयं प्रेम का ही रूप है। जीवात्मा उसी परमात्मा का अंश है, इसलिए आत्मा की अपने चिरसाथी की खोज ही अलौकिक प्रेम है। आदिकाल से मनुष्य परमतत्त्व की प्राप्ति का प्रयत्न करता रहा है, जिसका एकमात्र साधन प्रेम है। जब हृदय प्रेम से भर जाता है, तब आत्मा व्यापक सत्य का अनुभव करती है। इसी आत्मानुभूति और प्रेमानुभूति से ग़ज़ल का सृजन होता है। कुँअर बेचैन अपनी बात को स्पष्ट करते है –

"मैं तेरे पास यूँ ही आत्मा सा बैठा रहूँ। ये मेरा जिस्म कहीं उड़ सके तो उड़ जाए।।"1

प्रेम की शुरूआत साधारण के स्तर पर होकर वह अनन्यसाधारण रूप धारण करता है। अर्थात लौकिक प्रेम व्यापक और उदार बन जाता है। इश्क-ए-मजाजी से प्रेम इश्क-ए – हकीकी बन जाता है। डॉ. कुँअर बेचैन कहते हैं कि "ग़ज़ल! तुम गजल भी हो, प्रेम भी हो और प्रेमिका भी। प्रेमिका हो इसलिए तुम वह परम सत्ता भी हो, जिसने संसार को प्रेम करना सिखाया। इसलिए यदि यह कहाँ जाय, तुम प्रेम, प्रेमिका और परमसत्ता तीनों ही हो तो अनुचित नहीं।"2

भारतीय काव्य परंपरा में अलौकिक प्रेम की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में भक्ति अपने चरम पर दिखाई देती है। तुलसीदास रामभक्ति में लीन हैं, सूरदास कृष्णमय हैं और मीरा कृष्ण-प्रेम में पूर्णत: समर्पित दिखाई देती हैं। सूफी कवियों ने भी परमतत्त्व को प्रेमिका के रूप में स्वीकारते हुए आत्मा और परमात्मा के मिलन की अनुभूति को प्रेम के माध्यम से व्यक्त किया है।

अलौकिक प्रेम में प्रेमी अपने प्रिय की प्रतीक्षा में स्वयं को समर्पित कर देता है। शमा परवाने की तरह प्रियतम परमात्मा की आशा में, दर्शन की अभिलाषा में प्रेमी सर्वस्व समर्पित कर दुनिया से अलविदा करता है। प्रेमी की प्रतिक्षा का वर्णन डॉ. कुँअर बेचैन अपने ग़ज़ल के माध्यम से करते है –

"एक मुद्दत से था जिनका इन्तजार। आई जब मिलने की बेला चल दिये ।।

उसकी महफिल में मिला जो गम हमें। झेल पाये जितना झेला चल दिये ।।

जब नजर में आ गई मंजिल कुँअर'। छोड दुनियाँ का झमेला, चल दिये ।।"3

जो व्यक्ति विरह और दुःख को साथ लेकर प्रेम के मार्ग पर चलता है, वही अपनी मंज़िल तक पहुँचता है। ग़ज़ल में यह विरह-भाव प्रमुख रूप से व्यक्त हुआ है। संसार के मायाजाल से मुक्त होकर परमात्मा की प्राप्ति ही प्रेमी का लक्ष्य होता है।

अलौकिक प्रेम का वर्णन अत्यंत कठिन है, क्योंकि ईश्वर की महिमा अनंत है। यह प्रेम ऐसी सुगंध के समान है जो आत्मा को आनंद और शांति से भर देता है। ग़ज़लकार स्वयं को साधु न मानते हुए भी परमात्मा के द्वार पर बैठकर इसी आध्यात्मिक सुख का अनुभव करता है। डॉ कुँअर बेचैन इस भाव को ग़ज़ल के माध्यम से अभिव्यक्त करते है–

"हम उनसे मिलके गुलोंसे महकने लगते है। जरूर उनसे कहीं खुशबूओं का डेरा है।।

तेरे भी दर पे कुँअर खुद अलख जगायेगा। 'कुँअर','कुँअर' है, कहाँ साधुओं का फेरा है।।"4

डॉ. कुँअर बेचैन ने अपनी ग़ज़लों में परमात्मा की सत्ता का मार्मिक चित्रण किया है। ईश्वर ने मनुष्य को जो कुछ दिया है वह अनमोल और अवर्णनीय है। उसने मनुष्य को सुंदर आँखें दी हैं ताकि वह उसकी सृष्टि और ईश्वरत्व का दर्शन कर सके, तथा एक निर्मल हृदय दिया है जिसमें राग-द्वेष नहीं, बल्कि दया और उदात्त भाव निवास करते हैं। डॉ. कुँअर बेचैन कहते है –

"राह दी उसने नई राहों को बंजारे दिये। पर न जाने क्यो सभी राही थके हारे दिये ।।

इश्क करने वाले चेहरों का हो रंग कुछ भी मगर। मन को भी देखा हमारे वो फकीरों सा मिजाज।

जिसने होठों को 'भजन' हाथों को इकतारे दिये ।।

कोई तो होगा सबब, वर्ना तो क्यों उसने कुँअर। दी हमें मीठी हँसी, आँसू सभी खारे दिये ।।"5

परमात्मा के प्रेम में भक्त चारों दिशाओं में उसके दर्शन करता है, क्योंकि वह समस्त सृष्टि में व्याप्त है। घर-घट, कण-कण, महल-झोपड़ी हर स्थान पर उसका अस्तित्व है। डॉ. कुँअर बेचैन के अनुसार ईश्वर केवल मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर या गुरुद्वारे तक सीमित नहीं, बल्कि कबीर की तरह वे मानते हैं कि परमात्मा मनुष्य की अंतरात्मा में ही निवास करता है और वह सर्वव्यापक है। डॉ. कुँअर बेचैन लिखते है –

"मुझ में मंदिर, मुझमें मस्जिद। गिरिजाघर, गुरूद्वारा मुझमें ।।

गीतों को गाता फिरता है। ऐसा है बंजारा मुझमें ।।"6

सुधीर पालीवाल प्रेम के बारे में लिखते है, "प्रेम एक ऐसा कोमल और प्रवित्र भाव है, जिसकी अनुभूति से आत्मा उन्मीलित होकर अतीन्द्रिय आनन्द का आस्वादन करती है। प्रेम जीवन का आधार है। प्रेम के अभाव में जीवन के समस्त कार्य व्यापार अस्तित्वहीन से प्रतीत होते है।"7

डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लों की विशेषता यह है कि उन्होंने भारतीय काव्य परम्परा के आदर्शों को आधार बनाकर अपना ग़ज़ल-संसार निर्मित किया है। बिम्ब, प्रतीक और मिथकों के माध्यम से उन्होंने अलौकिक प्रेम को व्यक्त करते हुए जीव और ब्रह्म के संबंध को प्रेमभाव से उजागर किया है। डॉ. कुँअर बेचैन लिखते है -

"जिस रात पुर्णिमा में नहा लेगी चाँदनी । पानी को सागरों में उछालेगी चाँदनी ।।

किसको खबर थी देह की दीवार फांदकर । मुझसे ही कभी मुझको चुरा लेगी चाँदनी ।।

उन्मुक्त कुन्तलों की नशिली सी छाँव में । सो भी गया तो मुझको जगा लेगी चाँदनी ।।"8

अलौकिक प्रेम संसार के सभी संबंधों से परे त्याग और समर्पण का भाव है। इसी प्रेम से जगत्-कल्याण और मानव-एकता की भावना जन्म लेती है। सच्चे प्रेम में शब्दों की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि अंतर्मन की पुकार स्वयं प्रिय तक पहुँच जाती है। जहाँ ईश्वर का अनुभव हो, वही स्थान काशी और मदीना बन जाता है; इसलिए उसके प्रति निस्वार्थ भक्ति ही सच्चा मार्ग है। डॉ. कुँअर बेचैन लिखते है –

"तुम अब से मौन रहकर मुझको सुनना । नहीं बोलूँगा मैं, तुमसे कभी ना ।।

जहाँ तुम हो, मुझे ऐसा लगा है। वही काशी, वही अपना मदीना ।।"9

मनुष्य ईश्वर को मंदिरों और मस्जिदों में खोजता फिरता है, जबकि सच्ची श्रद्धा रखने वाले को वह हर जगह दिखाई देता है। वास्तव में ईश्वर सृष्टि के कण-कण में और मनुष्य के अपने ही अंतर्मन में विद्यमान है, इसलिए उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है। डां. कुँअर बेचैन कहते है –

"वो न मंदिर में, न मस्जिद में, न गुरूद्वारे में है। प्यार की जो गूँज मेरे मन के इकतारे में है ।।

पुछते हो वो कहाँ है, तो बताता हूँ तुम्हें। वो यहाँ भी है, वहाँ भी है, 'कुँअर' सारे में है ।।"10

मानव हृदय सागर की तरह गहरा और विशाल है, जिसमें प्रेम, दया, क्षमा और शांति जैसे अनमोल भाव

छिपे होते हैं। इन्हीं गुणों से मनुष्य दूसरों के प्रति सद्भाव रखता है। ईश्वर की अदृश्य शक्ति भी उसी की सहायता करती है जो दूसरों की मदद करता है और प्रेम बाँटता है। डॉ. कुँअर बेचैन ने अपने अनुभव के आधार पर गजलों के माध्यम से यह विचार अभिव्यक्त किये है-

"जिसे तू प्यार देगा, देख लेना। तुझे उससे ही कोई छल मिलेगा।।

'कुँअर' दिल में बसा तू अब उसी को। जो तुझसे हो के भी ओझल मिलेगा।।"11

ईश्वर के दर्शन करना प्रेमी का अंतिम लक्ष्य होता है। जीवात्मा परमात्मा से मिलने की उत्कंठा में व्याकुल रहती है और संसार के बंधनों से मुक्त होकर उससे अपना अटूट संबंध स्थापित करना चाहती है। डॉ. कुँअर बेचैन अपनी ग़ज़लों में इसी अलौकिक प्रेम और मिलन की आशा को व्यक्त करते हैं, जहाँ प्रेमी विश्वास करता है कि सच्चे प्रेम का मिलन एक दिन अवश्य होगा। बेचैन लिखते है-

"माना मिला न आज मगर कल तो मिलेगा। मुझको वो तेरे प्यार का आँचल तो मिलेगा।।

चाहत है साये की तो किसी दिल में उतर जा। उपवन न मिलेगा वहाँ जंगल तो मिलेगा।।

आकर तू मेरे सामने बस इतना बता जा। तू हो के मेरी आँख से ओझल तो मिलेगा।।"12

डॉ. कुँअर बेचैन ने अपनी ग़ज़लों में अदृश्य प्रिय अर्थात् परमात्मा की अनुभूति को व्यक्त किया है। जीवात्मा रूपी प्रेमी परमात्मा के प्रेम में डूबकर हर भय और तूफान से मुक्त हो जाता है। उनकी ग़ज़लों में यह भाव प्रकट होता है कि परमात्मा की सुगंध की तरह उसकी सत्ता सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है, जिसे केवल अनुभव किया जा सकता है। वे कहते है –

"जब से डुबे है, मेरे दिल के जिले पानी में। जितने तूफा थे सभी आ के मिले पानी में।।

उसने आँखो का हरेक ख्वाब गिराकर पूछा। और किस किसने बनाये है किले पानी में।।

उसमें खुशबू है, तो फिर सबको ही खुशबू देगा। फूल धरती पे खिले चाहे खिले पानी में।।"13

रहस्यवादी भावना के अंतर्गत जीवन, जगत और ईश्वर के प्रति जिज्ञासा होती है। इसी रहस्यवादी कथ्य को लेकर ग़ज़ले लिखी गई है। हिन्दी गज़ल में सुफी काव्य की तरह परमात्मा और आत्मा को प्रेमिका प्रेमी के रूप में भी वर्णित किया है–

"तमाम उम्र उसी की अदा के साथ रहा। मुझे लगा कि मैं जैसे खुदा के साथ रहा।।"14

प्रिय की स्मृति और परमात्मा का नामस्मरण मनुष्य को संसार के दुःखों से मुक्त कर देता है। इस दृष्टि से परमात्मा ही सर्वोपरि सत्य है और बाकी सब क्षणभंगुर है। बेचैन कहते है-

"वो ही रदीफ, वो ही काफिया ग़ज़ल वो ही। मैं उसकी सिर्फ नक़ल हूँ, मगर असल वो ही।।"15

परमात्मा की प्राप्ति के लिए मनुष्य को अनेक परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है। आत्मा नश्वर शरीर में एक किरायेदार की तरह रहती है और अंततः उसे त्यागकर परमात्मा की ओर अग्रसर होती है। बेचैन ने ईश्वर की अलौकिकता का वर्णन किया है –

"वो इस जहाँ के पार है, मैं इस जहान तक। ये दूरियाँ रहेगी मगर इम्तहान तक ।।

हूँ जन्म से ही जिस्म में अपने किरायेदार। मेरा सफर है, इस मकाँ से उस मकान तक।।"16

हिन्दी ग़ज़ल में भारतीय संस्कृति और दार्शनिकता का महत्वपूर्ण स्थान है। आत्मा-परमात्मा के रहस्य और उनके प्रति मनुष्य की जिज्ञासा को डॉ. कुँअर बेचैन ने अपनी ग़ज़लों में सूफी परंपरा की तरह प्रेमी-प्रेमिका के प्रतीक के माध्यम से व्यक्त किया है। उनकी ग़ज़ल यह भाव प्रकट करती है कि जीवन के संकटों में भटका हुआ मनुष्य ईश्वर को ही अपनी शरण, छाया और सहारा मानकर उसकी कृपा की कामना करता है।

"हम आज भटकते हुए मुसाफिर है। न कोई राह न घर है, हमारे साथ रहो।।

तुम्हे ही छाव समझकर यहाँ चले आये। तुम्हारी गोद में सर है, हमारे साथ रहो ।।"17

अतः डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लों में अलौकिक प्रेम आत्मा और परमात्मा के गहन संबंध का सशक्त प्रतीक बनकर सामने आता है। उनकी यह दृष्टि भारतीय भक्ति परंपरा, सूफी विचारधारा और रहस्यवादी चेतना से प्रभावित दिखाई दे सकती है। ग़ज़लों के माध्यम से उन्होंने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि सच्चा प्रेम समर्पण, विरह और आत्मानुभूति के मार्ग से परमात्मा तक पहुँचता है। उनकी ग़ज़लों में परमात्मा की सर्वव्यापकता तथा मनुष्य के अंतर्मन में उसकी उपस्थिति को प्रमुख रूप से व्यक्त किया गया है। इस प्रकार कुँअर बेचैन की ग़ज़लें अलौकिक प्रेम को मानवीय संवेदना, आध्यात्मिक अनुभूति और दार्शनिक चिंतन से जोड़ते हुए हिन्दी ग़ज़ल परंपरा को समृद्ध करती हैं।

संदर्भ

1. डॉ. कुँअर बेचैन, 'रस्सियाँ पानी की', प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.स. 1987, पृ.43
2. वही, पृ.11
3. डॉ कुँअर बेचैन, 'आँगन की अलगनी' प्रगती प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.स. 1983, पृ.9
4. डॉ. कुँअर बेचैन, 'आँधियों में पेड' प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.स. 1987. पृ.28
5. डॉ. कुँअर बेचैन, 'आग पर कंदील', प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.स. 1983, पृ.50
6. डॉ कुँअर बेचैन, 'नाव बनता हुआ कागज', अयन प्रकाशन, नई दिल्ली. प्र.स. 1990, पृ.43
7. डॉ सुधीर पालीवाल, 'सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में डॉ कुॲर बेचैन की गज़ले' अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.स.2010, पृ.62
8. डॉ. कुँअर बेचैन, 'महावर इन्तजारों का', प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.स. 1983, पृ.39
9. डॉ. कुँअर बेचैन, 'आँधियों में पेड', प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.स. 1987, पृ.50
10. डॉ. कुँअर बेचैन, 'दिवारों पर दस्तक', अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.स. 1990, पृ.59
11. वही, पृ.37
12. डॉ. कुँअर बेचैन, 'महावर इन्तजारों का', प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.स. 1983, पृ.61
13. डॉ. कुँअर बेचैन, 'रस्सियाँ पानी की', प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.स. 1987, पृ.23
14. डॉ. कुँअर बेचैन, 'पत्थर की बाँसुरी', अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.स. 1990, पृ.79
15. डॉ. कुँअर बेचैन, 'आग पर कंदील', प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.स. 1983, पृ.32
16. डॉ. कुँअर बेचैन, 'कोई आवाज देता है', अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.स. 1990, पृ.34
17. डॉ. कुँअर बेचैन, 'महावर इन्तजारों का', प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, प्र.स. 1983, पृ.23

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 177-180

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

औपनिषदिक नाद चेतना

ज्योति अम्बष्ट, शोध छात्रा, थियोलॉजी
डॉ. निशीथ गौड़, असिस्टेंट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग, कला संकाय, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, आगरा–282005

सार (Abstract)

उपनिषद् भारतीय दर्शन की सर्वोच्च आध्यात्मिक धरोहर हैं, जिनका उद्देश्य आत्मा और ब्रह्म के गूढ़ संबंधों का अनावरण करना है। औपनिषदिक नाद चेतना एक ऐसी सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से साधक ध्यान, नाड़ी शोधन तथा नादानुसन्धान द्वारा चेतना जागृति प्राप्त करता है। नाद, जो अव्यक्त ध्वनि का प्रतीक है, आहत एवं अनाहत दो प्रकार का होता है, जिसमें अनाहत नाद का विशेष आध्यात्मिक महत्त्व है।

नादबिन्दूपनिषद् एवं अन्य उपनिषदों के अनुसार साधना के क्रम में साधक विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का अनुभव करता हैकृप्रारम्भ में स्थूल, मध्य में मध्यम तथा अन्त में सूक्ष्म ध्वनियाँ। यह प्रक्रिया अंततः आत्मा के ब्रह्म में लय का मार्ग प्रशस्त करती है।

इस शोधपत्र में नाद चेतना के स्वरूप, साधना–पद्धति, दार्शनिक आधार तथा उसके आध्यात्मिक लक्ष्य का विश्लेषण किया गया है। उपनिषदों का मूल उद्देश्य आत्मा की चिदानन्द स्वरूपता का अनुभव कराना है, जो नाद और ज्योति के माध्यम से संभव होता है।

प्रमुख शब्द (Keywords) :

नाद चेतना, उपनिषद्, ध्यान, नाड़ी शोधन, ब्रह्म, आत्मबोध, अनाहत नाद।

1. प्रस्तावना :

उपनिषद् वेदों का ज्ञानकाण्ड हैं, जो मानव जीवन के परम सत्य का उद्घाटन करते हैं। "उपनिषद्" शब्द उप + नि + सद् धातु से निर्मित है। 'सद्' धातु के अर्थ 'विशरण, गति एवं अवसादन' यह संकेत करते हैं कि उपनिषद् अज्ञान का नाश कर ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति कराते हैं।

औपनिषदिक परम्परा में नाद चेतना एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक अवधारणा है, जिसके माध्यम से साधक आत्मबोध एवं ब्रह्म साक्षात्कार की ओर अग्रसर होता है।

2. नाद और चेतना का स्वरूप :

"नाद" शब्द णद् (अव्यक्ते शब्दे) धातु से बना है, जिसका अर्थ अव्यक्त ध्वनि है। यह दो प्रकार का होता है : **आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते।**[1]

चेतना शब्द चित् (संज्ञाने) धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ हैकृज्ञान, बोध, अनुभव। दर्शन में चेतना को

स्वयं प्रकाश तत्त्व माना गया है, जो ज्ञान, भाव और क्रिया का आधार है।

3. औपनिषदिक चेतना का दार्शनिक आधार :

उपनिषदों में परम तत्त्व को सच्चिदानन्द कहा गया है। यह न केवल अस्तित्व और ज्ञान है, बल्कि परम आनन्द का स्वरूप भी है।

प्रेमविलास में कहा गया है :

सत चित आनन्द यह गुन भारी।

और चौथे परकाश अपारी।[5]

कठोपनिषद् में चेतना की शुद्धि पर बल दिया गया है :

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।

अथ मर्त्योऽमृतो भवति।। (कठोपनिषद् 2/3/14)

4. नाद चेतना की साधना पद्धति :

4.1 नाड़ी शोधन :

जाबालदर्शनोपनिषद् में 72,000 नाड़ियों का वर्णन है, जिनमें सुषुम्ना, इडा और पिङ्गला प्रमुख हैं। नाड़ी शोधन से चेतना जागृत होती है और शरीर शुद्ध होता है।

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं... योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति।। (श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/10,13)

4.2 नादानुसन्धान (नाद श्रवण) :

नाद श्रवण में साधक इन्द्रियों का निरोध कर आन्तरिक ध्वनि का अनुभव करता है :

मुक्तासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय शांभवीम्।

शृणुया दक्षिणे कर्णे नादमन्तःस्थमेकधीः।।[6]

5. नाद के अनुभव के चरण :

5.1 प्रारम्भिक अवस्था :

समुद्र, मेघ, भेरी जैसी स्थूल ध्वनियाँ :

श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो नानाविधो महान्।[9]

5.2 मध्य अवस्था :

मर्दल, शंख, घंटा आदि ध्वनियाँ।

5.3 अंतिम अवस्था :

किंकणी, वंशी, वीणा, भ्रमर जैसी सूक्ष्म ध्वनियाँ :

अन्ते तु किंकणी-वंश-वीणा-भ्रमर-निःस्वना।।[10]

6. नाद और ज्योति का संबंध :

ध्यानबिन्दूपनिषद् के अनुसार हृदय में स्थित अष्टदल कमल के मध्य जीवात्मा ज्योति रूप में स्थित है:

हृदि स्थाने अष्टदल पद्म वर्तते... (ध्यानबिन्दु 93/1)

यह ज्योति आत्मा का प्रकाश है और ब्रह्म का अनुभव कराती है।

7. नाद का दार्शनिक एवं सांगीतिक महत्व :

अलंकार–कौस्तुभ में कहा गया है :

नाभेरूर्ध्व हृदः स्थानात्... तेन नादः प्रकीर्तितः।[7]

संगीत के सभी अंग नाद पर आधारित हैं :

न नादेन बिना गीतं... तस्मान्नादात्मकं जगत्।[8]

8. नाद से ब्रह्म की प्राप्ति :

नादबिन्दूपनिषद् के अनुसार नाद के सूक्ष्म होते–होते मन उसमें लीन हो जाता है और साधक ब्रह्म को प्राप्त करता है।

9. चेतना जागृति और कर्मनाश :

ध्यान और योग के माध्यम से :

– कर्मों का नाश होता है।

– पाप समाप्त होते हैं।

– यह चेतना की शुद्धि का परिणाम है।

10. आत्मा और ब्रह्म का ऐक्य :

वृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्म को अद्वैत बताया गया है :

सैन्धवघनवद्... एकरसं ब्रह्म। (1/4!10)

कठोपनिषद् में :

यथोदकं शुद्धे... आत्मा भवति गौतम। (2/1/15)

11. निष्कर्ष :

औपनिषदिक नाद चेतना आत्मबोध और ब्रह्म साक्षात्कार की एक सूक्ष्म और प्रभावी साधना है। यह साधना इन्द्रिय संयम, ध्यान और आन्तरिक श्रवण पर आधारित है।

नाद चेतना के माध्यम से :

– चेतना जागृत होती है।

– कर्मों का नाश होता है।

– आत्मा ब्रह्म में लीन हो जाती है।

अतः नाद ही वह सूक्ष्म माध्यम है जो जीव को ब्रह्म से जोड़ता है और यही उपनिषदों का परम उद्देश्य है।

संदर्भ (References) :

आहतोऽनाहतश्चेति द्विधा नादो निगद्यते

चेतना के विविध अर्थ (दार्शनिक स्रोत)

चेतना स्वयं प्रकाश तत्त्व (दर्शन)

चेतना : ज्ञान, भाव, क्रिया का आधार

प्रेमविलास

नाद श्रवण विधि (योग ग्रंथ)

अलंकार–कौस्तुभ

नादात्मकं जगत् (संगीत शास्त्र)

नादबिन्दूपनिषद् 2/2/1–3

नादबिन्दूपनिषद् (अन्तिम अवस्था)

प्रेमप्रचारक, अक्टूबर 2005

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 181-192
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री चिंतन

रोहित साव
शोधार्थी, हिंदी विभाग, वर्द्धमान विश्वविद्यालय, गुलाबबाग, पश्चिम बंगाल, (713104)

शोध सार :

हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श एक महत्वपूर्ण और समकालीन विमर्श बनकर उभरा है, जिसने नारी की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत स्थिति को केन्द्र में रखकर साहित्यिक सृजन को एक नई दिशा दी है। स्त्री चेतना अर्थात नारी के आत्मबोध, उसकी अस्मिता, अधिकारों, स्वायत्तता और सामाजिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया, साहित्यिक अभिव्यक्ति में एक ऐसी संवेदना है जो समय, समाज और संस्कृति के साथ संवाद करती है। इस संदर्भ में समकालीन महिला लेखिकाओं ने विशेष योगदान दिया है। गीतांजलि श्री, जिनका नाम हिन्दी कथा–साहित्य में एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में जाना जाता है, उन्हीं लेखिकाओं में प्रमुख हैं जिन्होंने स्त्री चेतना को नई भाषा, दृष्टिकोण और संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया है।

चेतना वह है, जो मनुष्य को चेतन अवस्था में या जागरूक रहने में सहायता करता है। चेतना का अंग्रेजी शब्द 'Consciousness' है। इसका विभिन्न अर्थ है– चैतन्य, अनुभव और अंतर्बोध ज्ञान आदि। मानव को सुख और दुःख की अनुभूति भी चेतना के कारण ही होती है। मनुष्य एक संवेदनशील और चेतनशील प्राणी है। उसमें सोचने, समझने की शक्ति अधिक होती है, इसलिए वह अपने आसपास हो रहे घटित घटनाओं का मूल्यांकन कर पाता है। चेतना शब्द को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित किया है। इस संदर्भ में डॉ. नागेंद्र कहते हैं : "चेतन मानव अस्तित्व के सहज रूप–स्वरूप के उद्घाटन में सहायक है। उसका उद्देश्य अस्तित्व को धारणा बनाना नहीं, बल्कि अस्तित्व के संजीव अनुभव को प्रभावपूर्ण ढंग से पकड़ना है।"[1]

गीतांजलि श्री का साहित्य, विशेषतः उनकी कहानियाँ, स्त्री के आंतरिक संसार की गहराइयों में उतरने का प्रयास करती हैं। वे नारी के मनोवैज्ञानिक संघर्षों, उसकी सामाजिक सीमाओं, पारिवारिक उलझनों, यौनिकता की जटिलताओं और अस्तित्व के प्रश्नों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती हैं। उनका लेखन स्त्रियों के जीवनानुभवों, संवेदनाओं और विचारों को न केवल स्वर देता है, बल्कि एक विमर्श का रूप भी देता है, जो पितृसत्तात्मक संरचना को चुनौती देता है। उनकी कहानियाँ किसी एक आयाम में सीमित नहीं होतीं, अपितु बहुआयामी दृष्टिकोण से स्त्री के जीवन को देखने और समझने का अवसर प्रदान करती हैं।

गीतांजलि श्री का साहित्यिक योगदान उस दौर में विशेष महत्व रखता है जब हिन्दी साहित्य में स्त्रियों को पारंपरिक ढाँचे में गढ़ा जाता था उन्हें अक्सर दया की पात्र, त्यागमयी देवी या पुरुष के सहयोगी के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। उन्होंने इन जड़, पारंपरिक छवियों को तोड़ते हुए स्त्री को एक स्वतंत्र विचारशील,

जिज्ञासु और स्वप्न देखने वाली मानव के रूप में चित्रित किया। उनकी कहानियों में स्त्री न केवल एक पात्र होती है, बल्कि वह कथानक की धुरी बन जाती है जो अपने अनुभवों, इच्छाओं, पीड़ाओं और आत्मनिर्णयों के साथ कथावस्तु को दिशा देती है।

उनकी कहानियों जैसे ष्वैराग्यष, ष्अनुगूँजष आदि में स्त्री की बहुआयामी छवियाँ उभरती हैं। कभी वह माँ बनकर सामने आती है, तो कभी पत्नी या प्रेमिका के रूप में, और कभी अकेलेपन को जीती एक स्त्री के रूप में, जो अपने भीतर एक गहन आत्मबोध को जन्म देती है। गीतांजलि श्री की लेखन शैली और भाषा स्त्री दृष्टिकोण को मुखर रूप में सामने लाती है। वे पारंपरिक आख्यान (नैरेटिव) शैली से हटकर एक भावनात्मक, प्रतीकात्मक और मनोवैज्ञानिक लेखन पद्धति अपनाती हैं, जो पाठकों को स्त्री के अंतरतम जगत से जोड़ती है। उनके स्त्री चिंतन की विशेषता यह है कि वे किसी एकरेखीय दृष्टिकोण से स्त्री को नहीं देखतीं। उनके साहित्य में स्त्री एक जटिल, यथार्थवादी चरित्र के रूप में उभरती है जो प्रेम करती है पर असुरक्षा भी अनुभव करती है, जो विद्रोह करती है तो भयभीत भी होती है, जो स्वतंत्र होना चाहती है पर पारिवारिक रिश्तों की गाँठों में उलझी रहती है। यह अंतर्विरोध उनकी कहानियों को यथार्थ का सजीव रूप प्रदान करता है।

गीतांजलि श्री की स्त्री दृष्टि केवल शिक्षित, शहरी महिलाओं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वे ग्रामीण परिवेश में रहने वाली, परंपराओं से बँधी, कमजोर समझी जाने वाली स्त्रियों की भी सजीव और सशक्त तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। उनकी रचनाओं में स्त्रियाँ पूरी तरह से विद्रोही नहीं हैं, न ही पूर्णतः परंपरा–निष्ठय वे इन दोनों के बीच की जद्दोजहद में संतुलन तलाशती हैं। उनकी स्त्रियाँ खामोश नहीं हैं वे सवाल करती हैं, विचार करती हैं और कभी–कभी अपने उत्तर भी ढूँढ़ लेती हैं। यही स्त्री चिंतन का वह रूप है जो आत्मबोध की यात्रा को सशक्त बनाता है।

बीज शब्द : अस्मिता, अधिकारों, स्वायत्तता, सामाजिक सशक्तिकरण, भावनात्मक, जागरूकता, अस्तित्व, हाशिये, स्वालम्वी, आत्मनिर्भर, आत्मनिर्णय, स्वयंसिद्धता, आत्मसम्मान।

मूल आलेख :

गीतांजलि श्री की कहानियाँ केवल कल्पना नहीं हैं, वे स्त्रियों के भीतर चल रही पहचान की प्रक्रिया का दस्तावेज हैं। वे स्त्री जीवन के अंतर्विरोध, उसकी संभावनाओं और संघर्षों की पड़ताल करती हैं और हिन्दी कथा–साहित्य में स्त्री चेतना को नया आयाम देती हैं। स्त्री चिंतन का मूल आधार है स्त्री का स्वयं के प्रति जागरूक होना। यह जागरूकता इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह उसे समाज द्वारा दी गई उपेक्षा, शोषण और सीमाओं का विरोध करने की शक्ति देती है। स्त्री का भी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व होता है, वह भी उतनी ही महत्व की अधिकारी है जितना कोई पुरुष। सामाजिक ढाँचे में स्त्री और पुरुष बराबर हैं, लेकिन पितृसत्तात्मक सोच उन्हें एक सीमित दायरे में कैद करके रखना चाहती है। वह स्त्री की पहचान को नकारते हुए उसे केवल परिवार और घर तक सीमित देखना चाहती है।

वर्तमान समय में स्त्रियाँ शिक्षित होकर अपने अस्तित्व, सम्मान और अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही हैं। यह संघर्ष पुरुषों से नहीं, बल्कि उस मानसिकता से है जो परंपराओं के नाम पर स्त्री को दबाने का प्रयास करती है। गीतांजलि श्री की कहानियाँ इन्हीं संघर्षों की अनुगूँज हैं वे स्त्री के अंदरूनी और बाहरी टकरावों को स्वर देती हैं, उनका साहित्य इन पहलुओं को रेखांकित करता है।

उनकी कहानियाँ नारी के भीतरी संसार में झाँकने का माध्यम हैं, जहाँ वह न केवल जीती है बल्कि सोचती है, संघर्ष करती है और निर्णय लेती है। यही विशेषता उनकी कहानियों को हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व प्रदान करती है। उन्होंने स्त्री को साहित्य के हाशिये से उठाकर केन्द्र में लाकर खड़ा किया, जहाँ वह न केवल देखी जाती है, बल्कि समझी भी जाती है। गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री स्वयं अपनी पहचान के लिए जूझती नजर आती है। वह दूसरों द्वारा तय की गई भूमिकाओं को नहीं अपनाती, बल्कि अपने अनुभवों और भीतर की आवाज के आधार पर अपनी राह तलाशती है। उनकी प्रसिद्ध कहानी "वैराग्य" की नायिका विवाह संस्था के भीतर अपनी अस्मिता को खोते देखती है और आत्मबोध की दिशा में एक निर्णायक कदम उठाती है। यह आत्म–निर्णय उसकी चेतना का प्रतीक है। डॉ. सुशीला टाकभौरे के अनुसार : 'आधुनिक स्त्री लेखन वह लेखन है जिसमें स्त्री खुद को परिभाषित करती है, दूसरों के द्वारा तय किए गए 'मैं' को अस्वीकार कर वह स्वयं अपना 'स्व' रचती है।'[2] यह प्रक्रिया गीतांजलि श्री की लगभग हर कथा में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

गीतांजलि श्री की स्त्रियाँ प्रतिरोध करती हैं, परंतु उनका प्रतिरोध केवल शोर या विद्रोह नहीं होता – वह संवादात्मक होता है। वे भीतर से सोचती हैं, द्वंद्व से गुजरती हैं, अपने भय को समझती हैं और फिर निर्णय पर पहुँचती हैं। उदाहरणस्वरूप, "अनुगूंज" कहानी की नायिका अतीत और वर्तमान के बीच एक वैचारिक पुल बनाती है, जिसमें वह स्मृति, दर्द और आकांक्षा – तीनों को आत्मसात करती है। गणेश देवी के शब्दों में : 'साहित्य में स्त्री का प्रतिरोध तब अधिक सशक्त होता है जब वह केवल समाज के विरुद्ध नहीं, बल्कि भीतर चल रहे सवालों से भी जूझे।'[3] गीतांजलि श्री अपनी कहानियों में सांस्कृतिक प्रतीकों और परंपरागत छवियों का पुनर्पाठ करती हैं। वे स्त्री के दमन को महज एक सामाजिक घटना न मानकर, उसे सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परतों में भी देखती हैं। विवाह, मातृत्व, प्रेम जैसे विषय उनके यहाँ नए अर्थों में प्रस्तुत होते हैं। वे स्त्री की कामनाओं को भी वैधता देती हैं, जो पारंपरिक लेखन में अक्सर उपेक्षित रही हैं। शर्मिला रेगे कहती हैं : "स्त्री विमर्श तभी अर्थपूर्ण होता है जब वह संस्कृति में अंतर्निहित पितृसत्ता की जड़ों को उजागर करे।"[4] गीतांजलि श्री की कहानियाँ इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं।

गीतांजलि श्री के स्त्री पात्र बहुआयामी होते हैं। वे कभी ग्रामीण पृष्ठभूमि से आती हैं तो कभी शहरी मध्यवर्ग से वे अशिक्षित भी हो सकती हैं और उच्च शिक्षित भी। हर स्त्री की चेतना अलग, परंतु जागरूक है। वे केवल पीड़िता नहीं हैं, वे निर्णय लेने में सक्षम हैं। डॉ. निर्मला जैन इस संदर्भ में कहती हैं : "समकालीन महिला कथाकारों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने स्त्री को 'मोनोलिथिक' (एकरूपी) छवि से बाहर निकालकर उसे विविध अनुभवों की वाहिका बनाया है।"[5]

आधुनिक संदर्भ में गीतांजलि श्री की कहानियाँ स्त्री चेतना की गहरी पड़ताल करती हैं। वे स्त्री को पारंपरिक जड़ताओं से मुक्त करके उसकी सोच, संवेदना और स्वतंत्रता को सामने लाती हैं। उनकी स्त्रियाँ जीवन के प्रति सजग हैं, जिज्ञासु हैं और सबसे बढ़कर, स्वायत्त हैं।

उनका साहित्य यह सिद्ध करता है कि स्त्री विमर्श केवल नारी की करुणा नहीं, उसकी चेतना का विस्तार है और यह विस्तार ही उसे एक आधुनिक, पूर्ण और स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्थापित करता है।

आत्मनिर्भर नायिकाएँ : स्वालम्वी दृष्टिकोण रखने वाली स्त्री :

भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक सोच की जड़ें बहुत गहरी हैं। लंबे समय तक यह मानसिकता समाज

में हावी रही कि स्त्री का अस्तित्व किसी पुरुष के संरक्षण में ही सुरक्षित है। इस विचारधारा के तहत स्त्री को हमेशा किसी न किसी पर आश्रित रहने वाला प्राणी माना गया – बचपन में पिता पर, युवावस्था में पति पर और वृद्धावस्था में पुत्र पर। पितृसत्ता की यह व्यवस्था सिर्फ सामाजिक नहीं, बल्कि मानसिक कैद भी थी, जिसमें स्त्री को अपनी स्वतंत्र इच्छा, आकांक्षा और आत्मनिर्भरता से वंचित रखा गया। दरअसल, यह एक सुव्यवस्थित षड्यंत्र था ताकि स्त्री स्वावलंबी न बन सके और वह पुरुष वर्चस्व के अधीन ही बनी रहे।

लेकिन बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के मोड़ पर आते–आते स्त्री चेतना का विकास हुआ और अब वह परंपरागत भूमिकाओं से परे जाकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित कर रही है। आज की स्त्री सिर्फ घर की देखभाल तक सीमित नहीं है, बल्कि वह आर्थिक, बौद्धिक और सामाजिक रूप से भी आत्मनिर्भर बन चुकी है। इस संदर्भ में आलोचक स्मिता का कथन उल्लेखनीय है, जो स्त्री की सृजनात्मक क्षमता और समान अधिकारों पर बल देती हैं– 'मानवता और समानता दोनों का तकाजा यह है कि स्त्री को वक्त के साथ–साथ जगह भी मिलनी चाहिए। जब स्त्री जीवित इंसान पैदा कर सकती है तो दूसरे सृजनात्मक कार्य क्यों नहीं।'[6] यह कथन स्पष्ट रूप से स्त्री के आत्मबोध और उसकी रचनात्मक क्षमता को उजागर करता है। स्त्री केवल मातृत्व या सेवा की मूर्ति नहीं है, बल्कि वह सृजन, चिंतन और अभिव्यक्ति की भी शक्ति रखती है। यही आत्मनिर्भरता और स्वयंसिद्धता की भावना समकालीन हिंदी लेखिका गीतांजलि श्री की कहानियों में विशेष रूप से देखने को मिलती है।

गीतांजलि श्री की कहानी 'प्राइवेट लाइफ' की नायिका एक आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में हमारे सामने आती है। यह पात्र समाज की परंपरागत अपेक्षाओं के विरुद्ध जाकर स्वयं के लिए निर्णय लेती है और अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्राथमिकता देती है। नायिका का निर्णय कि वह एक किराए का मकान लेकर होस्टल छोड़ देती है, उसकी आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास को दर्शाता है। यह निर्णय उस सामाजिक ढांचे के विरुद्ध है, जिसमें स्त्रियाँ अकेले रहने या अपने लिए जगह लेने में संकोच करती हैं। कहानी में एक विशेष अंश उल्लेखनीय है– 'उसने यह बरसाती ले ली है और होस्टल छोड़ दिया है। तनख्वाह का एक चौथाई से कुछ अधिक किराए में लूट जाता था।'[7] यह वाक्य केवल आर्थिक यथार्थ नहीं दर्शाता, बल्कि स्त्री के आत्मनिर्णय और निजी स्पेस की मांग को भी रेखांकित करता है। किराए के मकान में रहने का निर्णय स्त्री के लिए केवल सुविधा का मामला नहीं, बल्कि उसकी स्वतंत्रता का प्रतीक बन जाता है। यह भी देखा जाना चाहिए कि नायिका का यह कदम किसी विद्रोह का परिणाम नहीं है, बल्कि यह उसके भीतर से उपजा आत्मविश्वास है– वह जानती है कि अब उसे किसी की अनुमति या सुरक्षा की आवश्यकता नहीं।

इसी तरह गीतांजलि श्री की एक और महत्वपूर्ण कहानी 'अनुगूँज' में नायिका मुनिया भी आत्मनिर्भरता की खोज में संलग्न दिखाई देती है। वह एक रचनात्मक महिला है जिसे लेखन में रुचि है। मुनिया घरेलू कामकाज करते हुए भी अपने रचनात्मक सपनों को नहीं छोड़ती। वह किसी की छत्रछाया में रचना नहीं करना चाहती, बल्कि मुक्त वातावरण में, अपनी सोच के अनुसार, स्वतंत्र लेखन करना चाहती है। उसकी यह आकांक्षा केवल एक लेखक बनने की नहीं है, बल्कि उस मानसिक स्वतंत्रता की है जो एक स्त्री को रचनात्मक होने के लिए आवश्यक होती है।

मुनिया के पति राहुल का उसकी लेखकीय क्षमता को पहचानना और प्रोत्साहित करना स्त्री–पुरुष संबंधों

के नए स्वरूप को दर्शाता है, जहाँ पुरुष केवल नियंत्रणकर्ता नहीं, बल्कि सहयोगी की भूमिका में है। राहुल मुनिया से कहता है : 'कुछ करो। लिखती क्यों नहीं? पत्रिकाओं के लिए लेख भेजो। इतनी फुर्सत है, घर बैठकर ही लिख सकती हो। बाहर ऐसी फुर्सत मिलेगी, इस मुगालते में मत रहो।'[8] यह संवाद न केवल एक पति द्वारा पत्नी को प्रेरित करने का प्रतीक है, बल्कि यह इस बात का संकेत भी है कि समाज में स्त्रियों की भूमिका को लेकर सोच बदल रही है। मुनिया का लेखन में रुचि लेना और स्वयं को सिद्ध करने की कोशिश करना यह स्पष्ट करता है कि वह अब सिर्फ घर तक सीमित नहीं रहना चाहती, बल्कि रचनात्मक जगत में अपनी उपस्थिति दर्ज कराना चाहती है। वह जानती है कि आत्मनिर्भरता का मार्ग कठिन हो सकता है, लेकिन उसमें उसकी पहचान, सम्मान और स्वीकृति निहित है।

गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्रियाँ अब निष्क्रिय पात्र नहीं, बल्कि सक्रिय एजेंट के रूप में दिखाई देती हैं। वे अपने निर्णय स्वयं लेती हैं, चुनौतियों का सामना करती हैं और आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होती हैं। इन कहानियों की स्त्रियाँ सिर्फ अपने अधिकारों की मांग नहीं करतीं, बल्कि उन्हें अर्जित करने के लिए प्रयत्नशील भी रहती हैं। स्वयंसिद्धता का यह दृष्टिकोण समकालीन स्त्री चेतना का प्रतीक है। यह न केवल सामाजिक संरचनाओं को चुनौती देता है, बल्कि स्त्री को एक स्वतंत्र, सशक्त और सृजनशील इकाई के रूप में स्थापित करता है। गीतांजलि श्री की कहानियाँ इस स्वयंसिद्ध स्त्री के विविध रूपों को चित्रित कर हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श को एक नई दिशा प्रदान करती हैं।

स्त्री अस्मिता के लिए संघर्षरत स्त्री :

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्री–विमर्श लंबे समय से विमर्श के केंद्र में रहा है, विशेषकर जब बात स्त्री की स्वतंत्रता, अस्मिता और आत्मनिर्भरता की आती है। सदियों से स्त्री को समाज में दोयम दर्जे का नागरिक माना गया है, जिसकी भूमिका केवल परिवार के भरण–पोषण, सेवा और त्याग तक सीमित समझी गई। चाहे वह सवर्ण वर्ग की हो या दलित समुदाय से संबंधित, अधिकांश पुरुषवादी मानसिकता स्त्री को अपने से कमतर मानती रही है। ऐसे संदर्भ में जब स्त्री अपने वजूद की लड़ाई खुद लड़ने के लिए उठ खड़ी होती है, तो यह केवल व्यक्तिगत मुक्ति की नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति की भूमिका बन जाती है। प्रो. अमर ज्योति इस स्थिति को उजागर करते हुए लिखती हैं : 'स्त्री की अस्मिता की लड़ाई आधी दुनिया को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई है। उसके मनुष्य को स्वीकारना आज मानवता का सबसे बड़ा प्रश्न है। आज भी मनुष्य की अवधारणा में स्त्री और पुरुष दोनों को शामिल नहीं किया जाता।'[9] यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि स्त्री की स्वतंत्रता केवल वैयक्तिक इच्छा नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और समता की मांग है। स्त्री को जब तक एक पूर्ण मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाएगा, तब तक उसकी स्वतंत्रता अधूरी मानी जाएगी।

इसी विचारधारा को कथा–साहित्य के माध्यम से बड़ी संजीदगी से प्रस्तुत करती हैं प्रसिद्ध लेखिका गीतांजलि श्री। उनके कथा साहित्य में स्त्रियाँ केवल घटनाओं की पात्र नहीं होतीं, बल्कि वे अपने जीवन की सूत्रधार होती हैं, जो स्वतंत्रता के लिए सतत संघर्ष करती हैं। उनकी कहानी 'प्राइवेट लाइफ' इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस कहानी की नायिका एक आत्मचेतस, आधुनिक, स्वाभिमानी और स्पष्ट विचारों वाली स्त्री है, जिसे समाज द्वारा स्त्रियों पर लगाए गए कृत्रिम नियम, सीमाएँ और पाबंदियाँ अस्वीकार्य हैं। वह आज की स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो यह स्वीकार नहीं करती कि स्त्री को केवल शालीनता, सहनशीलता और घरेलू

सीमाओं में ही रहना चाहिए। उसे यह बात असहनीय लगती है कि स्त्रियाँ खुलकर हँस भी न सकें, अपनी बात न कह सकें, और समाज उनकी हर स्वतंत्र क्रिया को 'अवमानना' के रूप में देखे। इसी मानसिकता के विरुद्ध वह अपने चाचा से विरोध प्रकट करते हुए स्पष्ट रूप से कहती है – 'जिसे आप इज्जत समझते हैं, उसे मैं अपनी सबसे बड़ी बेइज्जती मानती हूँ।'[10] यह कथन उसकी मानसिक स्वतंत्रता का ऐलान है, जो पितृसत्तात्मक नैतिकताओं के विरुद्ध विद्रोह करता है। यहाँ नायिका के लिए 'इज्जत' कोई सामाजिक स्वीकृति नहीं, बल्कि उसका आत्मसम्मान और स्वतंत्रता है।

नायिका के चाचा, जो समाज की पारंपरिक सोच के प्रतिनिधि हैं, स्त्रियों की स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं कर पाते। वे स्त्री को एक सीमित दायरे में, 'देवी' के आदर्श में जकड़ कर रखना चाहते हैं। लेकिन यह 'देवीत्व' केवल एक छलावा है, जो स्त्री को pedestal पर चढ़ाकर उसकी स्वतंत्रता छीन लेता है। चाचा का दृष्टिकोण इन पंक्तियों से प्रकट होता है– 'खानदान की आबरू से खिलवाड़ कर रही है। हमारे समाज में लड़की बहुत बड़ी हस्ती होती है, देवी होती है।'[11] इस 'देवी' की अवधारणा वास्तव में स्त्री को निष्क्रिय और त्याग की प्रतिमूर्ति बना देती है। वे उसे पूजनीय तो मानते हैं, लेकिन जीवंत, स्वतंत्र और निर्णय–क्षम नहीं। नायिका का निर्णय कि वह अपने लिए एक अलग बरसाती (किराए का मकान) लेती है, उसकी आत्मनिर्भरता और स्वतंत्र विचारधारा का परिचायक है। यह निर्णय प्रतीक है उसकी मानसिक स्वतंत्रता का, जहाँ वह अपनी जगह खुद चुनती है, अपनी जिंदगी के फैसले स्वयं लेती है।

इसी प्रकार गीतांजलि श्री की दूसरी प्रसिद्ध कहानी 'चौक' भी स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की खोज और उसके संघर्ष को चित्रित करती है। इस कहानी की नायिका एक लेखिका है जो संयुक्त परिवार में रहकर रचनात्मकता को बनाए रखने की कोशिश करती है। लेकिन बड़े परिवार की जिम्मेदारियाँ, घरेलू कार्य और सामाजिक दबाव उसकी रचनात्मक ऊर्जा को सीमित कर देते हैं। यद्यपि परिवारजन उसे लेखन के लिए प्रोत्साहित करते हैं, परंतु व्यावहारिक रूप में वह आवश्यक 'स्पेस' नहीं पाती। उसकी व्यस्तता और संकोच उसे मानसिक रूप से पीड़ित करते हैं।

उसका यह द्वंद्व इन पंक्तियों में परिलक्षित होता है– 'पहली किताब किसी झोंक में उस घर में पूरी कर दी, मगर अब के न होगी मुझे विश्वास था।'[12] यह भाव उसकी रचनात्मक स्वतंत्रता की विफलता का प्रतीक है। एक लेखिका के रूप में वह महसूस करती है कि जब तक उसे मानसिक और भौतिक दोनों प्रकार की स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, तब तक वह अपनी रचना को पूरी निष्ठा से नहीं कर सकेगी।

'चौक' और 'प्राइवेट लाइफ' दोनों कहानियों की नायिकाएँ अलग–अलग परिस्थितियों में जीती हैं, परंतु उनके संघर्ष की प्रकृति एक है – स्वतंत्रता की तलाश। एक नायिका पारिवारिक वर्जनाओं और सामाजिक पाबंदियों से लड़ती है, तो दूसरी रचनात्मक अवरोधों और व्यावहारिक सीमाओं से। दोनों ही स्त्रियाँ इस सत्य को पहचान चुकी हैं कि उनके अस्तित्व की रक्षा, उनकी पहचान का निर्माण और उनका मानसिक विकास केवल उनकी स्वतंत्रता में निहित है। इस प्रकार, गीतांजलि श्री की कहानियाँ समकालीन स्त्री के उस संघर्ष को चित्रित करती हैं, जो न केवल बाह्य सामाजिक पाबंदियों से जूझ रही है, बल्कि भीतर की आत्मदृष्टि और रचनात्मक आकांक्षाओं से भी लड़ रही है। यह संघर्ष केवल नारी मुक्ति का नहीं, बल्कि मनुष्य होने के अधिकार की मांग का है।

मूल्यनिष्ठ स्त्री : जीवन मूल्यों पर विश्वास रखने वाली स्त्री :

मानव जीवन में जीवन मूल्य न केवल नैतिक आधार होते हैं, बल्कि वे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत जीवन के मार्गदर्शन के प्रमुख स्तंभ भी होते हैं। मूल्यों के बिना जीवन एक दिशाहीन यात्रा जैसा है, जिसमें प्रगति, विकास और मानसिक संतुलन की कल्पना अधूरी रह जाती है। यही जीवन मूल्य मनुष्य को भावनात्मक रूप से स्थिर, नैतिक रूप से सजग और समाज के प्रति उत्तरदायी बनाते हैं। स्त्री–जीवन में इन मूल्यों का प्रभाव अधिक गहरा और स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि स्त्री प्रायः भावनाओं, संबंधों और सामाजिक उत्तरदायित्वों को पुरुष की तुलना में अधिक गहराई से अनुभव करती है। डॉ. शशिकला त्रिपाठी स्त्री के जीवन मूल्यबोध को अत्यंत सटीक रूप में रेखांकित करते हुए लिखती हैं– 'स्त्री में समझ और तर्क दोनों शस्त्र प्रदान किए गए हैं। प्रेम में भी औरत अपने अस्तित्व को बनाए रखने के पक्ष में है।'[13] यह कथन स्पष्ट करता है कि स्त्री केवल भावुक प्राणी नहीं है, बल्कि उसमें बौद्धिक विवेक और आत्मनिर्णय की भी अद्‌भुत क्षमता होती है। वह प्रेम में अपने अस्तित्व का विलोपन नहीं चाहती, बल्कि वह उस प्रेम में भी अपने आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और मूल्यों को बनाए रखना चाहती है।

इसी मूल्यनिष्ठ स्त्री का चित्रण गीतांजलि श्री की कहानी 'दहलीज' में मिलता है। इस कहानी में गौतम की पत्नी एक पारंपरिक, सहज और सरल स्त्री है, जो पति–धर्म के पालन को ही अपने जीवन का सबसे बड़ा मूल्य मानती है। कहानी का नायक जो कि गौतम का मित्र है, गौतम की पत्नी के प्रति आकर्षित है, किंतु उसकी इस भावना से न तो गौतम परिचित है और न ही उसकी पत्नी। नायक उसकी पत्नी की निष्कलुषता, सादगी और आदर्श जीवन को अच्छी तरह समझता है, और इसीलिए कहता है– 'बोलती ही नहीं थी। यह क्या बड़े शहर मौजी मियां से बराबरी करेगी? और इस सदी में तो ससुर भी गऊ जैसी बहू के गुण नहीं गाते। यह साया थी, गौतम को भी आँख उठा कर नहीं देखती थी। अ–बदन व्यक्तित्ववाली। ध्यान में न आनेवाली।'[14] यह कथन दर्शाता है कि नायिका एक आदर्श भारतीय स्त्री की परंपरागत छवि का प्रतिनिधित्व करती है। वह अपने नैतिक मूल्यों से विचलित नहीं होती, न ही किसी पर–पुरुष के प्रति आकृष्ट होती है। उसका जीवन संयम, समर्पण और मर्यादा के मूल्यों पर आधारित है। लेकिन यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या यह मूल्यनिष्ठता उसकी चेतना की स्वीकृति है या सामाजिक दबावों की अनकही स्वीकृति? इसी प्रश्न को गीतांजलि श्री की अन्य कहानी 'अरे गोपीनाथ' में नए संदर्भ में उठाया गया है। इस कहानी में जीवन मूल्यों के प्रति स्त्री की आस्था को एक भिन्न और कहीं अधिक जटिल रूप में प्रस्तुत किया गया है। जब गोपीनाथ अपने मित्र के साथ पार्क में टहल रहा होता है, तब वह एक दंपत्ति को झगड़ते हुए देखता है, जिसमें पति अपनी पत्नी पर हाथ उठाता है। यह दृश्य उसे आक्रोशित कर देता है और वह उस व्यक्ति को मारता है। लेकिन आश्चर्य तब होता है जब पीड़ित स्त्री ही अपने पति के बचाव में गोपीनाथ से लड़ पड़ती है। इस अनुभव पर गोपीनाथ विचार करता है और कहता है– 'देखने की बात तो यह है कि क्यों औरत पीटना सहज मानती है और लड़ना–बचना शर्मनाक? कौन–सी यह घबराहट है कि पढ़ी–लिखी औरत भी पति के क्रूरता सहने में अपमान नहीं समझती जो उससे लड़कर अलग होने में देखती है। उसकी यह मानसिकता ही उसे ले डूबती है। बाहरवाला एक बार बचाएगा, बार–बार तो नहीं। और वह फिर उसी तरह अपमानित होती रहेगी।'[15] यह विचार दर्शाता है कि स्त्री द्वारा जीवन मूल्यों को पकड़कर रखना कई बार उसकी आत्मरक्षा की क्षमता को भी दबा देता है। वह घरेलू हिंसा और अपमान को इसीलिए सहती

रहती है क्योंकि वह विवाह संस्था को मूल्य मानकर उसे बनाए रखना चाहती है, भले ही वह मानसिक या शारीरिक पीड़ा से क्यों न गुजरे। यहां लेखिका उस सामाजिक Conditioning की ओर इशारा करती हैं, जो स्त्री को त्याग और सहनशीलता के आदर्श में गढ़ती है और उसे आत्मसम्मान की जगह 'पारिवारिक मर्यादा' की शिक्षा देती है।

इस प्रकार यदि 'दहलीज' की स्त्री एक आदर्श पतिव्रता है, जो संयमित और मर्यादित जीवन मूल्यों को जीती है, तो 'अरे गोपीनाथ' की स्त्री एक विरोधाभासी छवि प्रस्तुत करती है– वह पढ़ी–लिखी होते हुए भी अपने आत्म–सम्मान की बजाय पति की हिंसक प्रवृत्तियों को सहन करती है, क्योंकि वह संबंधों को तोड़ने की जगह बचाने में जीवन मूल्यों को देखती है। यह दोनों कहानियाँ हमें यह सोचने पर विवश करती हैं कि जीवन मूल्य क्या केवल स्त्री के त्याग, सहिष्णुता और मौन में ही निहित हैं, या फिर वह स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और प्रतिकार की भावना को भी जीवन मूल्य मान सकती है? इस प्रकार गीतांजलि श्री की कहानियाँ हमें यह सोचने का अवसर देती हैं कि मूल्यनिष्ठ स्त्री की छवि केवल 'मर्यादित और मौन' न होकर चेतन और निर्णयात्मक भी हो सकती है। वह अपने मूल्यों को अपनी स्वतंत्रता के साथ संतुलित कर सकती है। आज आवश्यकता है ऐसी स्त्री चेतना की जो न केवल परंपरा का सम्मान करे, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उसे प्रश्नांकित करने का साहस भी रखे।

नारी चेतना और विद्रोह की आवाज : जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण रखनेवाली स्त्री :

भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति ऐतिहासिक रूप से एक संघर्षशील भूमिका में रही है। पितृसत्तात्मक ढाँचे ने स्त्री को सामाजिक, आर्थिक, और मानसिक रूप से सीमित करने का हरसंभव प्रयास किया है। परंतु यह बात भी उतनी ही सत्य है कि समय परिवर्तनशील है और समय के साथ समाज की संरचना और सोच में भी बदलाव आता है। स्त्रियाँ अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं। वे अब केवल दुःख, कष्ट और उत्पीड़न सहने वाली प्राणी नहीं रहीं, बल्कि आज की स्त्री अपने भीतर की शक्ति और आत्मसम्मान को पहचानते हुए अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने लगी है। इस संदर्भ में साहित्यकार क्षमा शर्मा का कथन अत्यंत प्रासंगिक है– 'स्त्रियों को यह समझ में आया है कि जब तक उनकी आर्थिक स्थिति नहीं सुधरेगी, तब तक उनका विकास नहीं हो सकता क्योंकि दुनिया के अधिकांश संसाधनों पर पुरुष का कब्जा है।'[16] इस कथन में स्त्री–सशक्तिकरण की वास्तविक जड़ दिखाई देती है। आर्थिक आत्मनिर्भरता के बिना स्त्री का सम्पूर्ण विकास संभव नहीं है। जब तक स्त्री स्वयं के संसाधनों पर नियंत्रण नहीं रखती, तब तक वह दूसरों के नियंत्रण में रहने को विवश होती है। यही कारण है कि अब स्त्रियाँ न केवल शिक्षा और पेशेवर क्षेत्रों में आगे बढ़ रही हैं, बल्कि जीवन के हर स्तर पर अपने अधिकारों और अस्मिता के लिए संघर्ष भी कर रही हैं।

गीतांजलि श्री की कहानियाँ इस नई स्त्री चेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनती हैं। वे उन स्त्रियों का चित्रण करती हैं जो जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण रखती हैं– जो अब चुप नहीं रहतीं, जो अब अन्याय को सहने के बजाय उसका मुखर विरोध करती हैं। उनकी कहानी 'दूसरा' की पात्र नीलम इसका ज्वलंत उदाहरण है। नीलम एक निडर और आत्मविश्वासी स्त्री है, जो पारिवारिक और सामाजिक दबावों के सामने झुकने के बजाय उन्हें चुनौती देती है। वह अपने पति भागीरथ के दमनकारी व्यवहार को न केवल पहचानती है, बल्कि उसका प्रतिकार भी करती है। नीलम का यह साहसिक स्वरूप इस उद्धरण से स्पष्ट होता है– 'चुपचाप रह जाए, नीलम ऐसी नहीं। भागीरथ ऊँचा बोलेगा तो वह और ऊँचा बोलेगी। उसकी एक का बदला वह दस से लेगी।

यह आदमी लोग समझते हैं, जरा कड़ककर बोलो, भरी सभा में जलील करने की धमकी दो और औरत सहम जाएगी। पर नीलम ऐसी नहीं। तुम भीड़ का फायदा उठाना चाहोगे तो वह भी भीड़ की तरफ पीठ करके तुम्हें जवाब देगी।'[17] इस उद्धरण में स्पष्ट है कि नीलम अब पारंपरिक 'सहनशील' स्त्री की भूमिका से बाहर आ चुकी है। वह अपने सम्मान और गरिमा के लिए खड़ी होती है। वह जानती है कि यदि वह चुप रही, तो उसका अस्तित्व बार–बार कुचला जाएगा। इसलिए वह न केवल अपने पति के दमन का विरोध करती है, बल्कि सार्वजनिक रूप से ऐसा करने का साहस रखती है। यहाँ भीड़ के सामने अपनी आवाज उठाना उस सामाजिक दबाव के विरुद्ध एक सांकेतिक विद्रोह है, जो सदियों से स्त्रियों को चुप रहने और शर्म को ओढ़ने की शिक्षा देता आया है।

नीलम का यह स्वभाव आधुनिक स्त्री के उस रूप को दर्शाता है, जो समझौतावादी मानसिकता को त्याग चुकी है। वह अब आत्मसम्मान को रिश्तों से ऊपर रखती है। वह जानती है कि अगर अन्याय के सामने खड़ा न हुआ जाए, तो चुप्पी स्वयं एक अपराध बन जाती है। इसलिए वह अपनी चुप्पी तोड़ती है, वह विरोध करती है, वह संवाद करती है– और यही उसका नया दृष्टिकोण है। आज के समय में यह दृष्टिकोण अत्यंत आवश्यक बन गया है। आधुनिकता के दौर में जब स्त्रियाँ हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं, तो जरूरी है कि वे अपने भीतर छिपी हुई शक्ति और चेतना को पहचानें। उन्हें यह समझने की आवश्यकता है कि स्वतंत्रता केवल भौतिक उपलब्धियों से नहीं आती, बल्कि मानसिक और भावनात्मक स्वतंत्रता भी उतनी ही आवश्यक है।

नीलम का पात्र हमें यह भी सिखाता है कि स्त्री को अब समाज के बने–बनाए खांचों में फिट होने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं अपनी पहचान गढ़ सकती है, अपने रिश्तों और जीवन की दिशा तय कर सकती है। यह बदलाव सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव की नींव भी रखता है। साहित्य में ऐसे स्त्री पात्रों की उपस्थिति, जो जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण रखती हैं, इस बात का संकेत है कि स्त्री विमर्श अब केवल दया और सहानुभूति के दायरे में नहीं है, बल्कि अब वह प्रतिरोध, आत्मबल और चेतना का आंदोलन बन चुका है। गीतांजलि श्री की कहानियाँ इस आंदोलन को गति देती हैं और पाठकों को यह सोचने पर विवश करती हैं कि आज की स्त्री को किस प्रकार की सामाजिक और मानसिक आजादी की जरूरत है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि नीलम जैसे पात्र भारतीय स्त्री की बदलती मानसिकता और नये सोच की मिसाल हैं। वह पितृसत्ता की चुप्पी नहीं ओढ़ती, बल्कि अपने स्वाभिमान की आवाज बनती है। यही वह दृष्टिकोण है जो स्त्री को नई दिशा, नया स्वर और नयी शक्ति प्रदान करता है।

उपसंहार :

गीतांजलि श्री समकालीन हिंदी कथा साहित्य की ऐसी प्रमुख हस्ताक्षर हैं जिन्होंने नारी जीवन के सूक्ष्मतम पहलुओं को गहराई से समझा, महसूस किया और उसे अपनी कहानियों के माध्यम से अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। उनके साहित्य में स्त्री केवल पीड़ित, सहनशील और करुणा की पात्र नहीं है, बल्कि वह आत्मबोध से युक्त, चेतनशील और परिवर्तन के लिए तत्पर एक संपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। उनकी कहानियों में स्त्री का चिंतन एकतरफा नहीं है, बल्कि वह सामाजिक, मानसिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, भावनात्मक और अस्तित्ववादी स्तरों पर अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई देती है।

गीतांजलि श्री की कहानियाँ भारतीय समाज के पारंपरिक ढांचे, विशेषकर पितृसत्तात्मक संरचना के

खिलाफ एक वैचारिक हस्तक्षेप करती हैं। वे स्त्री को मात्र एक सामाजिक भूमिका निभाने वाली जीव नहीं, बल्कि संवेदनशील, बुद्धिमान, आत्मनिर्भर और निर्णय लेने वाली इकाई के रूप में चित्रित करती हैं। उनके साहित्य में स्त्री अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती है, और साथ ही अपने भीतर के द्वंद्व से भी जूझती है। 'प्राइवेट लाइफ' कहानी की नायिका इसका जीवंत उदाहरण है। वह पारंपरिक समाज की 'इज्जत' की परिभाषा को नहीं मानती, और अपने चाचा के उस विचार का विरोध करती है जिसमें स्त्री को मर्यादा और चुप्पी का प्रतीक माना जाता है। जब चाचा उससे कहते हैं कि इज्जत सबसे बड़ी चीज है, तब वह स्पष्ट कहती है, 'जिसे आप इज्जत समझते हैं, उसे मैं अपनी सबसे बड़ी बेइज्जती मानती हूँ।' यह कथन सिर्फ एक संवाद नहीं, बल्कि स्त्री अस्मिता के लिए संघर्ष का घोषणापत्र है। नायिका अपने लिए किराए का कमरा लेती है, और यह एक प्रतीक है : स्त्री की स्वतंत्रता, उसकी निजी पहचान और आत्मनिर्भरता का। यह एक साधारण घटना नहीं है, यह स्त्री के निजी स्पेस की तलाश है, जहाँ वह बिना किसी सामाजिक निगरानी और पारिवारिक हस्तक्षेप के अपनी शर्तों पर जीवन जी सके।

गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्रियाँ भावुक होती हैं, लेकिन वे निर्णय लेने में पीछे नहीं हटतीं। 'अनुगूंज' की मुनिया उदाहरण है, जो लेखन के प्रति समर्पित है, और वह किसी के बंधन में रहकर नहीं, बल्कि स्वतंत्र रहकर रचना करना चाहती है। उसका पति भी उसे प्रेरित करता है : 'कुछ करो। लिखती क्यों नहीं? पत्रिकाओं के लिए लेख भेजो...'। यह उदाहरण दर्शाता है कि आज की स्त्री अपने सपनों और कार्यों को लेकर गंभीर है और उसके आस–पास का परिवेश भी धीरे–धीरे बदल रहा है। इस बदलाव की प्रक्रिया को गीतांजलि श्री बहुत गहराई से पकड़ती हैं।

'चौक' कहानी की नायिका एक संयुक्त परिवार में रहते हुए लेखन से जुड़े रहने का प्रयास करती है, लेकिन घरेलू जिम्मेदारियों के बोझ से उसका रचनात्मक आत्म कुछ समय के लिए दब जाता है। फिर भी, उसकी अंदरूनी तड़प उसे थकने नहीं देती। वह सोचती है – 'पहली किताब किसी झोंक में उस घर में पूरी कर दी, मगर अब के न होगी मुझे विश्वास था।' यह आत्मसंघर्ष, आत्मद्वंद्व और लेखन के प्रति समर्पण का मार्मिक चित्रण है। यह कहानी इस बात को रेखांकित करती है कि स्वतंत्रता केवल बाहर से मिलने वाली चीज नहीं है, बल्कि आंतरिक चेतना और संघर्ष की उपज भी होती है।

'दूसरा' की नीलम एक और महत्वपूर्ण पात्र है, जो जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण रखती है। जब उसका पति उसे सार्वजनिक रूप से नीचा दिखाने का प्रयास करता है, तब वह चुप नहीं रहती। बल्कि वह उस पर ऊँची आवाज में जवाब देती है। 'भागीरथ ऊँचा बोलेगा तो वह और ऊँचा बोलेगी। उसकी एक का बदला वह दस से लेगी।' यह नीलम के उस निडर स्वभाव को दर्शाता है जो आज की स्त्री की पहचान बनता जा रहा है। नीलम जैसे पात्र यह स्थापित करते हैं कि स्त्री अब चुप रहने, सहन करने और सहमी रहने की प्रतीक नहीं है, बल्कि वह अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए हर स्तर पर संघर्ष करने को तत्पर है।

'अरे गोपीनाथ' कहानी में एक अलग ही प्रकार की स्त्री–चिंतन की छवि उभरती है। जब पति अपनी पत्नी पर हाथ उठाता है और कोई तीसरा व्यक्ति उसे बचाता है, तब स्त्री उसी रक्षक के खिलाफ हो जाती है और अपने पति के बचाव में उतरती है। इस विरोधाभास को गोपीनाथ इस तरह चिन्हित करता है – 'क्यों औरत पीटना सहज मानती है और लड़ना–बचना शर्मनाक?' यह प्रश्न आज के समाज में स्त्रियों की मानसिकता और

सामाजिक Conditioning को झकझोरता है। गीतांजलि श्री यहाँ यह दिखाती हैं कि स्वतंत्रता की लड़ाई बाहरी व्यवस्था से अधिक आंतरिक संस्कारों और धारणाओं से भी है। यह कहानी बताती है कि जब तक स्त्री स्वयं अपने अपमान को पहचानकर उसका विरोध नहीं करती, तब तक उसकी मुक्ति संभव नहीं।

'दहलीज' की स्त्री पात्र गौतम की पत्नी के रूप में एक ऐसे जीवन मूल्य की रक्षक दिखाई देती है, जो विवाह और निष्ठा की पवित्रता में विश्वास करती है। यद्यपि कहानी का नायक उसके प्रति आकर्षित होता है, लेकिन वह स्त्री अपनी मर्यादा और जीवन मूल्यों के प्रति पूर्णतः सजग रहती है। नायक स्वयं कहता है – 'यह साया थी, गौतम को भी आँख उठा कर नहीं देखती थी।' यह स्त्री के उस रूप को दर्शाता है जहाँ वह केवल स्वतंत्रता की आकांक्षी नहीं, बल्कि अपने आदर्शों और मूल्यों की रक्षा करने वाली नारी भी है।

गीतांजलि श्री की कहानियों में भाषा और शिल्प की भूमिका भी स्त्री चिंतन को प्रभावशाली बनाने में महत्त्वपूर्ण रही है। उनकी भाषा सरल होते हुए भी गहराई लिए होती है। उनके शिल्प में प्रतीकात्मकता, लयात्मकता और प्रयोगशीलता है। आलोचक भी मानते हैं कि – 'बहरहाल, अपनी भाषाई ताजगी के चलते गीतांजलि श्री की कहानियां शुरू से ही पाठकों को चकित और चमत्कृत करती रही हैं...'। यही भाषा और शिल्प उनके स्त्री पात्रों को केवल कथा के साधन न बनाकर उन्हें विचार का केंद्र बिंदु बना देते हैं।

गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री–विमर्श महज किसी 'वाद' का हिस्सा नहीं है, बल्कि वास्तविक जीवन स्थितियों से उपजा हुआ चिंतन है। उनकी स्त्रियाँ स्वावलंबी हैं, निडर हैं, लेकिन साथ ही वे अपने भीतर के संघर्षों से भी जूझ रही हैं। वे कहीं मुनिया हैं जो लिखना चाहती हैं, कहीं नीलम हैं जो विरोध करना जानती हैं, कहीं प्राइवेट लाइफ की नायिका हैं जो अपने लिए निजी जगह की तलाश करती हैं, और कहीं गौतम की पत्नी हैं जो जीवन मूल्यों की रक्षक हैं।

उनकी स्त्रियाँ समाज को केवल चुनौती नहीं देतीं, बल्कि समाज को नया दृष्टिकोण भी देती हैं। गीतांजलि श्री का स्त्री चिंतन यह सिखाता है कि स्त्री की मुक्ति केवल अधिकारों के दावे से नहीं, बल्कि आत्मबोध, आत्मनिर्भरता और आत्मसंघर्ष से संभव है। इस प्रकार उनका साहित्य स्त्री को केवल प्रश्न नहीं, उत्तर बनने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

आधार ग्रंथ :

1. डॉ., नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, न्यू इंडिया प्रेस बुक डेपो, संस्करण 1951 ई., पृष्ठ संख्या– 78
2. टाकभौरे, सुशीला. स्त्री विमर्श के विविध आयाम, संस्करण 2010 ई., राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 39
3. देवी, गणेश, आफ्टर अम्नेशिया : ट्रेडिशन एंड चेंज इन इंडियन लिटरेरी क्रिटिसिज्म, संस्करण 1992 ई., ओरिएंट लॉन्गमैन, पृष्ठ 78
4. रेगे, शर्मिला, राइटिंग कास्ट, राइटिंग जेंडर : नैरेटिंग दलित वीमेन'स टेस्टिमोनिज, संस्करण 2013 ई., जुबान बुक्स, पृष्ठ 29
5. जैन, निर्मला, हिंदी कहानी में स्त्री लेखन, संस्करण 2008 ई., वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 62
6. स्मिता, इतना सा स्त्री का देश, संपादक–राजकिशोर, स्त्री, परंपरा और आधुकिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010 ई., पृष्ठ संख्या–69

7. श्री, गीताजंलि, अनुगूँज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2022 ई., पृष्ठ संख्या– 9
8. श्री, गीताजंलि, अनुगूँज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2022 ई., पृष्ठ संख्या– 130
9. संपादक–प्रो. ज्योति, अमर, भारत वाणी मासि, केंद्रीय हिंदी निदेशालय मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, अगस्त 2021 ई., अंक–5, पृष्ठ संख्या–4
10. श्री, गीताजंलि, अनुगूँज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2022 ई., पृष्ठ संख्या– 10
11. श्री, गीताजंलि, अनुगूँज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2022 ई., पृष्ठ संख्या– 11
12. श्री, गीताजंलि, वैराग्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 ई., पृष्ठ संख्या–14
13. त्रिपाठी, शशिकला, उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2006 ई, पृष्ठ संख्या–107
14. श्री, गीताजंलि, वैराग्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 ई., पृष्ठ संख्या–2
15. श्री, गीताजंलि, वैराग्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 ई., पृष्ठ संख्या–105–106
16. शर्मा, क्षमा, दुनिया की औरतों का अजेंडा, स्त्रीवादी विमर्श : समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति 2012 ई., पृष्ठ संख्या–7
17. श्री, गीताजंलि, अनुगूँज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2022 ई., पृष्ठ संख्या–116–117

सहायक ग्रंथ :

- राजकिशोर (संपादक), स्त्री परंपरा और आधुनिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010 ई.
- राजकिशोर (संपादक), स्त्री के लिए जगह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2006 ई.
- डॉ. मालती,के., एस., स्त्री–विमर्श भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010 ई.
- डॉ. मृदुला, शुक्ला, स्त्रियों का घटना अनुपात, कारण एवं समाधान, रोशनी पब्लिकेशन, कानपुर, 2009 ई.
- राजकिशोर (संपादक), औरत को बलिया बनाने के लिए, आज के प्रश्न, स्त्री, परंपरा और आधुकिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999 ई.
- डॉ. शशिकला, त्रिपाठी, उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2006 ई.
- किश्वर, मधु, औरत की पहचान : स्त्री विमर्श और समाज (तृतीय संस्करण), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012 ई.
- देवी, गणेश, आफ्टर अम्नेशिया : ट्रेडिशन एंड चेंज इन इंडियन लिटरेरी क्रिटिसिज्म, संस्करण 1992 ई., ओरिएंट लॉन्गमैन, हैदराबाद।
- संपा. डॉ. ममता, गंगव, आधुनिक भारत की नारी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में साहित्य, निर्णय प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2011 ई.
- कात्यायनी, कुछ ज्वलंत, कुछ जीवंत, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण 2006 ई.

पत्रिका :

- संपादक–प्रो. ज्योति, अमर, भारत वाणी मासि, केंद्रीय हिंदी निदेशालय मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2021 ई.

Email ID : rohitshaw323@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 193-197

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

कोलकाता में हिन्दी रंगमंच का वर्तमान परिदृश्य

डॉ. मोहम्मद आसिफ आलम

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग,

संस्थापक, संयोजक, निर्देशक, स्वांग ड्रामा क्लब, विद्यासागर कॉलेज फॉर वीमेन, कोलकाता।

कोलकाता भारतीय सांस्कृतिक चेतना का केंद्र रहा है। यहाँ साहित्य, कला, संगीत और रंगमंच का अनूठा संगम देखने को मिलता है। कोलकाता भारतीय रंगमंच की परंपरा का ऐतिहासिक नगर है। यहीं गिरीशचंद्र घोष, शंभु मित्रा, उत्पल दत्त और बादल सरकार जैसे रंगपुरुषों ने भारतीय रंगमंच को नया स्वरूप दिया। यद्यपि बंगला रंगमंच का योगदान सर्वविदित है, परन्तु हिन्दी रंगमंच ने भी यहाँ अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज की है। कोलकाता के हिन्दीभाषी समाज के लिए रंगमंच केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि भाषा और संस्कृति की पहचान का साधन भी है। बंगाली रंगमंच की समृद्ध परम्परा के बीच हिन्दी रंगमंच ने भी अपनी सशक्त पहचान बनाई है। प्रवासी हिन्दीभाषी समाज की सामाजिक–सांस्कृतिक आवश्यकताओं ने यहाँ हिन्दी नाट्यकला को जन्म दिया और विकसित किया। यह स्पष्ट है कि कोलकाता की रंगपरम्परा प्रायः बंगाली रंगमंच के लिए विख्यात है, परन्तु पिछले दशकों में यहाँ हिन्दी रंगमंच ने भी संस्थागत ढाँचा, स्थायी दर्शक–वर्ग और बहुभाषिक प्रयोगधर्मिता के साथ ठोस उपस्थिति दर्ज की है। यह परिदृश्य कुछ अग्रणी समूहों, सांस्कृतिक संस्थाओं, सरकारीध्गैर–सरकारी सहयोग और डिजिटल टिकटिंग–इकोसिस्टम से संचालित हो रहा है कृ जिसके कारण हिन्दी प्रस्तुतियों की निरन्तरता बनी हुई है।

हिन्दी रंगमंच का विकास केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह भारत के महानगरों में भी अपनी पहचान स्थापित करने में सफल रहा है। कोलकाता में हिन्दी रंगमंच की जड़ें उन्नीसवीं शताब्दी में प्रवासी हिन्दीभाषी समाज के बीच पाई जाती है। वर्तमान में यहाँ का हिन्दी रंगमंच विविध प्रयोगों, सामाजिक सरोकारों और बहुभाषिकता की विशेषताओं के लिए जाना जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब भारतेंदु युग का हिन्दी रंगमंच उत्तर भारत में आकार ले रहा था, उसी समय कोलकाता के प्रवासी हिन्दी समाज ने भी नाट्यकर्म की दिशा में कदम बढ़ाए। 1870–80 के दशक में ही यहाँ हिन्दी नाटकों के मंचन की सूचना मिलती है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के नाटक अंधेर नगरी तथा जयशंकर प्रसाद के स्कंदगुप्त का मंचन कोलकाता में हुआ। यह रंगमंच उस समय हिन्दीभाषी समाज की सांस्कृतिक एकजुटता और राष्ट्रवादी भावना का माध्यम बना।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हिन्दी रंगमंच ने कोलकाता में गति पकड़ी। हिन्दी भाषी प्रवासी समाज ने इसे स्वर और मंच प्रदान किया। नब्बे के दशक तक यहाँ छोटे–बड़े हिन्दी नाट्य दल सक्रिय हो गए, जिन्होंने

सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक विषयों पर नाटक प्रस्तुत किए।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर आज तक कोलकाता का हिन्दी रंगमंच नए प्रयोगों और शैलियों से समृद्ध हुआ। यहाँ अकादमी ऑफ फाइन आर्ट्स, मधुसूदन मञ्च, गिरिश मञ्च, शिशिर मञ्च जैसे सभागार निरंतर हिन्दी नाटकों की मेजबानी करते रहे हैं। कॉलेज और विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभाग न केवल नाट्य–शिक्षा प्रदान करते हैं बल्कि वार्षिक नाट्य महोत्सव भी आयोजित करते हैं। कोलकाता में कई संस्थाओं ने हिन्दी रंगमंच को पोषित किया। बंगीय हिन्दी परिषद, हिन्दी साहित्य सभा जैसी संस्थाओं ने नाट्य समारोहों का आयोजन किया। रामलीला समिति और विभिन्न हिन्दी क्लबों ने धार्मिक एवं सामाजिक नाटकों की परम्परा को जीवित रखा। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान रंगमंच जनजागरण का सशक्त साधन बना।

वर्तमान में कोलकाता का हिन्दी रंगमंच दो धाराओं में सक्रिय है। पहला प्रयोगधर्मी नाटक, जो सामाजिक–राजनीतिक प्रश्नों को सामने लाते हैं और दूसरा मनोरंजन प्रधान नाटक, जो आम दर्शकों को जोड़ने का कार्य करते हैं। आज नई पीढ़ी के रंगकर्मी डिजिटल माध्यम, सोशल मीडिया और प्रायोगिक स्थलों का उपयोग कर रही है। इससे हिन्दी रंगमंच की पहुँच व्यापक हो रही है। यहाँ के हिन्दी नाट्य समूह अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता, साहित्यिक संवेदनशीलता और कलात्मक प्रयोगों के लिए विशेष पहचान रखते हैं। इन समूहों ने हिन्दी रंगमंच को न केवल जीवंत बनाए रखा है बल्कि उसे राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन समूहों की सक्रियता यह सिद्ध करती है कि कोलकाता आज भी हिन्दी रंगमंच का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र है। आइए कोलकाता के कुछ प्रमुख एवं सक्रिय हिन्दी नाट्य दलों और प्रमुख रंगकर्मीयों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उपलब्धियों और योगदान पर विवेचन करते हैं :

भारतीय रंगमंच की समृद्ध परंपरा में कोलकाता का स्थान सदैव अग्रणी रहा है। इसी परंपरा को सशक्त आधार प्रदान करने के उद्देश्य से सन् 1972 में प्रख्यात रंगकर्मी स्वर्गीय श्यामानंद जालान ने पदातिक थियेटर समूह की स्थापना की। अपनी स्थापना के समय से ही पदातिक ने नाट्यकला को नए प्रयोगों और कलात्मक विविधताओं से समृद्ध किया। पदातिक की प्रस्तुतियाँ विशिष्ट कथानकों, गहन संवादों और आकर्षक रंग–सज्जा के लिए जानी जाती हैं। इसकी विशेषता यह है कि यहाँ नृत्य और नाटक का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। नृत्य कभी स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत होता है तो कभी नाट्यकथा का हिस्सा बनकर उसकी अभिव्यक्ति को और प्रभावशाली बना देता है। यह बहुआयामी दृष्टिकोण पदातिक को अन्य रंगमंचीय समूहों से अलग पहचान दिलाता है। कोलकाता में स्थापित होने के बाद पदातिक ने शीघ्र ही राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई। इसने देश के विभिन्न हिस्सों में प्रस्तुतियाँ दीं और यूनेस्को के इंटरनेशनल थियेटर इंस्टिट्यूट के साथ सहयोग भी किया। इस सहयोग ने पदातिक को वैश्विक रंगमंचीय परिदृश्य में प्रतिष्ठित किया। पदातिक द्वारा मंचित नाटकों में 'एक अराजकतावादी की इत्तेफाकिया मौत', 'गली चाहत वाली', 'हयवदन', 'खेला', 'हजार चौरासी की माँ' तथा 'एंटिगनी' प्रमुख हैं। इन नाटकों ने कलात्मक स्तर पर दर्शकों को गहरे रूप से प्रभावित किया तथा सामाजिक और राजनीतिक सरोकारों पर विमर्श की नई संभावनाएँ खोलीं। आज के समय में जब रंगमंच निरंतर नए प्रयोगों की ओर अग्रसर है, पदातिक का योगदान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। इस नाट्य दल की वर्तमान गतिविधियों को देखा जाए तो 2024दृ25 में पदातिक के सोशल–हैंडल्स और टिकटिंग घोषणाएँ नियमित हिन्दी प्रस्तुतियों/रीडिंग–सीरीज का संकेत देती हैं (जैसे 'रात काफी हो चुकी',

'किरचें' आदि)। इसने यह सिद्ध किया है कि रंगमंच केवल मनोरंजन का माध्यम न होकर सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक संवाद का सशक्त साधन भी है। निस्संदेह, पदातिक थियेटर समूह ने कोलकाता के समकालीन रंगमंच को नई दिशा, ऊर्जा और पहचान प्रदान की है।

रंगकर्मी कोलकाता में स्थित एक प्रसिद्ध भारतीय थिएटर समूह है। इस थिएटर समूह की स्थापना जनवरी, 1976 में उषा गांगुली ने की थी। उन्होंने कोलकाता में हिंदी रंगमंच का नेतृत्व की हैं। वैसे, उन्होंने बंगाली नाटकों का भी मंचन किया है। रंगकर्मी, एक मिशन के साथ थिएटर में विश्वास करता है। इसका प्राथमिक उद्देश्य बड़े पैमाने पर असंवेदनशीलता और अन्याय के व्यवहार के बारे में जागरूकता पैदा करना है, जिसका शिकार अक्सर महिलाएं और समाज के अन्य कमजोर वर्ग होते हैं। दर्शकों तक अपना संदेश पहुंचाने के लिए, उषा गांगुली के कुशल मार्गदर्शन में रंगकर्मी ने अपनी खुद की एक भाषा बनाई – संचार की एक शैली जो पूरी तरह से रंगमंच पर निर्भर है। रंगकर्मी ने कोलकाता में हिन्दी रंगमंच को सामाजिक–राजनीतिक सरोकारों के साथ संगठित स्वर दिया। उषा गांगुली की रंगयात्रा वैविध्यपूर्ण रही। 'प्रस्ताव' (1977), 'महाभोज' (1984), 'लोककथा' (1987), 'अपहरण' (1989), 'होली' (1989), 'काशीपुर की काशीनामा' (1991), 'कोर्ट मार्शल' (1991), 'खोज' (1994), 'मुक्ति' (1999), 'शोभायात्रा' (2000), 'सरहद पर मंटो' (2000) इत्यादि उनके बहुचर्चित नाटक रहे। उषा गांगुली के बाद अनिरुद्ध सरकार ने इस संस्थान का कार्याभार संभाला। वे इस संस्थान के निर्देशक, अभिनेता और प्रशिक्षक भी हैं, जहाँ उन्होंने प्रशिक्षण लिया था।

सरकार ने 'रुदाली', 'चंडालिका', 'मैय्या', 'आधे अधूरे' और मेटा पुरस्कार विजेता 'चंदा बेदनी' जैसी प्रस्तुतियों का निर्देशन और अभिनय किया है। उन्हें प्रयोगात्मक कार्यों और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय जैसे संस्थानों के सहयोग से अभिनय कार्यशालाओं के संचालन के लिए भी जाना जाता है। आज रंगकर्मी थिएटर ग्रुप को एक खूबसूरत शिक्षण संस्थान माना जाता है जो अभिनय, कल्पनाशीलता और अभिव्यक्ति की बुनियादी बातें सिखाता है। शांत वातावरण, भीतर से अभिनेता निर्माण पर केंद्रित आँखें खोल देने वाली कक्षाओं और अनिरुद्ध सरकार के मार्गदर्शन प्रशंसनीय हैं। यह संस्थान प्रतिभा और रचनात्मकता का एक केंद्र है जहाँ कोई भी पारंपरिक सीमाओं से परे सोचना सीख सकता है। अभिनय की बुनियादी बातें सिखाने और कार्यशालाओं व इंटरैक्टिव सत्रों के माध्यम से बहुमूल्य अनुभव प्रदान करने पर केंद्रित होने के कारण, यह ग्रुप महत्वाकांक्षी अभिनेताओं के लिए एक शिक्षण केंद्र के रूप में अत्यधिक प्रतिष्ठित है। यह ग्रुप अभिनय, मूकाभिनय, नृत्य और संगीत में प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करता है और कोलकाता में हिंदी रंगमंच को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान में समूह की आधिकारिक साइट सक्रिय है और संस्था अपने "थिएटर विद अ मिशन" के नारे के साथ परम्परा को आगे बढ़ा रही है।

लिटिल थेस्पियन सिर्फ कोलकाता ही नहीं, राष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसित एक हिंदी थिएटर समूह है, जिसकी स्थापना एस.एम. अजहर आलम ने की थी और वर्तमान में उनकी पत्नी उमा झुनझुनवाला के साथ रंगमंच के क्षेत्र में सक्रिय है। 1994 में स्थापित लिटिल थेस्पियन ने हिंदी और उर्दू नाटकों के माध्यम से भारतीय रंगमंच में विशेष पहचान बनाई है। इसकी प्रमुख उपलब्धियों में राष्ट्रीय नाट्य उत्सव 'जश्न–ए–रंग', उर्दू की पहली रंगमंच पत्रिका 'रंगरस', नाट्य कार्यशालाएँ, बाल रंगमंच और निरंतर सेमिनार शामिल हैं। संस्था ने अनेक भारतीय व विदेशी नाटकों का सफल मंचन और अनुवाद किया है। हालांकि, यह समूह थिएटर को बढ़ावा देने और युवा

प्रतिभाओं को विकसित करने के लिए जाना जाता है। दिवंगत निर्देशक एस. एम. अजहर आलम द्वारा निर्मित सौन्दर्य–बोध ने हिन्दी–उर्दू नाट्यधारा को कोलकाता में मंच दियाय उनके नेतृत्व में आयोजित "जश्न–ए–रंग" राष्ट्रीय महोत्सव ने हिन्दी/उर्दू रंगमंच का नेटवर्क खड़ा किया। 2021 में कोविड–सम्बन्धित जटिलताओं के बाद भी संस्था की सक्रियता बनी रही। उमा झुनझुनवाला के नेतृत्व में स्मृति–उत्सव जश्न –ए–अजहर जैसे कार्यक्रम, प्रतियोगिताएं, रंग अड्डा (धारावाहिक), कार्यशालाएं जैसे गतिविधियां अद्यतन जारी है।

इस संस्था ने अजहर आलम व उमा झुनझुनवाला के निर्देशन में अनेक चर्चित नाटक मंचित किए हैं, जिनमें भारतीय, उर्दू, हिंदी, अंग्रेजी व बांग्ला साहित्य पर आधारित रचनाएँ शामिल हैं। साथ ही कई महत्वपूर्ण नाटकों के अनुवाद व लिप्यंतरण भी किए गए हैं। एस. एम. अजहर आलम के निर्देशन में उनका ही लिखा नाटक 'रूहें', 'नमक की गुड़िया', 'रक्सी को सृष्टिकर्ता', 'सुलगते चिनार', राहुल वर्मा का 'धोखा', भीष्म सहनी का 'कबीरा खड़ा बाजार में', उमा झुनझुनवाला का 'रेंगती परछाइयाँ', यूजीन यूनेस्को का 'गैंडा', टेनेसी विलिएम्स का 'पतझड़', इस्माइल चुनारा का 'सवालिया निशान', गिरीश कर्नाड का 'हयवदन' (नेपाली में), ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', बलवंत गार्गी का 'लोहार', अविनाश श्रेष्ठ का 'महाकाल', मंटो की कहानियों में 'ठंडा–गोश्त', 'खोल दो', 'औलाद', 'सहाय और', 'बू', जहीर अनवर का 'ब्लैक सन्डे', आदि कई नाटकों का मंचन किया गया। उमा झुनझुनवाला के निर्देशन में मनोज मित्रा का 'अलका', इस्माइल चुनारा का 'यादों के बूझे हुए सवेरे', चंद्रधर शर्मा गुलेरी का 'उसने कहा था', मंटो की कहानियों में 'खुदा की कसम' और 'लाइसेंस', रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'आखरी रात' और 'दुराशा', प्रेमचंद की कहानी 'बड़े भाई साहब' और 'सद्गति', अज्ञेय की 'बदला', मोहन राकेश की 'मवाली', इकबाल मजीद की 'सुइंयों वाली बीबी', कृष्ण चंदर की 'पेशावर एक्सप्रेस' और 'शहजादा', मुजफ्फर हनफी की 'बजिया तुम क्यों रोती हो' तथा 'इश्क पर जोर', इस्माइल चूनारा की 'दोपहर', मधु कांकरिया की 'फाइल', कृष्णा सोबती द्वारा लिखित लंबी कहानी पर आधारित 'ऐ लड़की', अनीस रफी की 'पॉलिथीन की दीवार', (निर्देशन– उमा झुनझुनवाला) आदि। इनके निर्देशन में इनका ही लिखा नया 'हजारां–ख्वाहिशां' का अभी हाल में मंचन हुआ। इस संस्था का उद्देश्य केवल प्रेक्षागृहों तक सीमित न रहकर खुले मैदानों और छोटे कस्बों में भी रंगमंच के माध्यम से सामाजिक चेतना का प्रसार करना है। पश्चिम बंग नाट्य अकादमी सहित कई पुरस्कार प्राप्त करने वाली इस संस्था ने भारत रंग महोत्सव में पाँच बार भाग लिया और देश के सभी प्रमुख नाट्य उत्सवों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। आधुनिक भारतीय रंगयात्रा में कोलकाता से संचालित संस्था 'लिटिल थेस्पियन' का काफी महत्वपूर्ण योगदान है। आज लिटिल थेस्पियन भारतीय रंगमंच की आधुनिक यात्रा में अपनी सशक्त पहचान बना चुका है जो वर्तमान भारतीय रंगमंच का एक सशक्त स्तंभ है।

आज हिन्दी रंगमंच का विकास केवल संस्थागत, कलाकारों और दर्शकों की भागीदारी तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें सभागारों, साहित्यिक–सांस्कृतिक संस्थाओं और प्रशासनिक साझेदारी का भी विशेष योगदान है। कोलकाता में कई ऐसे नाट्य सभागार हैं जो हिन्दी रंगमंच के मंचन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अकादमी ऑफ फाइन आर्ट्स (AFA) जो कोलकाता का सबसे प्रतिष्ठित सभागार, जहाँ हिन्दी नाटक नियमित रूप से प्रस्तुत होते हैं। गिरिश मंच, मिनर्वा थिएटर, मधुसूदन मंच, शिशिर मंच, रवीन्द्र सदन, ज्ञान मंच आदि – स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रंगस्थल है। यह राज्य सूचना एवं संस्कृति विभाग की सूची में ये नियमित प्रदर्शन–स्थल हैं, यहीं हिन्दी प्रस्तुतियाँ भी लगती हैं। इन सभागारों ने हिन्दी रंगमंच को दर्शक और प्रस्तुति का

स्थायी मंच प्रदान किया।

कोलकाता की हिन्दी साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ भी हिन्दी रंगमंच के संवर्धन में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन – नाट्य मंचन और नाट्य–पाठ (Play Reading) के कार्यक्रम आयोजित करता है। जैसे भारतीय भाषा परिषद, 36–A, शेक्सपीयर सरणी – कोलकाता–स्थित यह संस्था बहुभाषिक आयोजनों का केन्द्र है, हॉल/ऑडिटोरियम में हिन्दी से सम्बन्धित चर्चाएँ/कार्यशालाएँ/लेखकीय कार्यक्रम नियमित होते हैं तथा समय–समय पर नाट्य महोत्सव और संगोष्ठियाँ आयोजित करते हैं। कोलकाता में अन्य सांस्कृतिक समूह या ड्रामा क्लब भी मौजूद है जो विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों के साथ सहयोग कर नाट्य प्रस्तुतियाँ आयोजित करते हैं। इन संस्थाओं ने हिन्दी नाट्य परंपरा को केवल कोलकाता तक सीमित नहीं रखा, बल्कि प्रवासी समाज और शैक्षिक संस्थानों तक पहुँचाया।

पश्चिम बंग हिन्दी अकादमी ने कोलकाता में हिन्दी रंगमंच को संरचना और सहयोग प्रदान किया है। सांस्कृतिक गतिविधियाँ जैसे नाट्य लेखन, कार्यशालाएँ, नाट्य मंचन, संगोष्ठियाँ, साहित्यिक गोष्ठियाँ, प्रतियोगिताएँ और राष्ट्रीय हिन्दी नाटक महोत्सव का आयोजन करता है। नाट्य दलों को वित्तीय अनुदान, स्थल सहयोग, और सम्मान–पुरस्कार प्रदान कर हिन्दी रंगमंच को स्थायित्व देता है। पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा स्थापित पश्चिम बंग हिन्दी अकादमी ने हिन्दी रंगमंच को संरचना और सहयोग प्रदान किया।

वस्तुतः कोलकाता भारतीय रंगकला का प्रमुख केन्द्र रहा है। यद्यपि यहाँ का बंगाली रंगमंच राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चित रहा है, परन्तु हिन्दी रंगमंच की परम्परा भी उतनी ही समृद्ध और जीवंत रही है जितनी कोलकाता का हिन्दी रंगमंच आज भी जीवंत और सक्रिय है। पदातिक, रंगकर्मी और लिटिल थेस्पीयन जैसे नाट्य दलों ने इसे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाई। पश्चिम बंग हिन्दी अकादमी के सहयोग से यह मंच न केवल कलाकारों की रचनात्मकता को अभिव्यक्ति देता है, बल्कि दर्शकों को भी विविध सांस्कृतिक अनुभव प्रदान करता है। कोलकाता का हिन्दी रंगमंच केवल रंगकर्मियों के प्रयास से ही जीवित नहीं है, बल्कि सभागारों, साहित्यिक–सांस्कृतिक संस्थाओं और प्रशासनिक सहयोग की त्रिवेणी से समृद्ध हुआ है। यह समन्वय ही हिन्दी रंगमंच को वर्तमान में जीवंत और भविष्य में संभावनाशील बनाता है। चुनौतियों के बावजूद, इसकी संभावनाएँ उज्ज्वल हैं और आने वाले समय में यह भारतीय रंगमंच के व्यापक परिदृश्य में और अधिक सशक्त स्थान प्राप्त करेगा। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कोलकाता का हिन्दी रंगमंच संस्थागत विरासत + समकालीन सक्रियता + डिजिटल पहुँच – इन तीन स्तम्भों पर टिक कर आगे बढ़ रहा है। आगे की राह – प्रासंगिक नाट्य लेखन–विकास, दर्शक–विकास, बहुभाषिकता और अनुवाद, अनुदान, डिजिटल आर्काइविंग, रिसर्च–आर्काइव और डिजिटल टिकटिंग/लिस्टिंग प्लेटफॉर्म (BookMyShow, ThirdBell) – पर रणनीतिक निवेश से यह धारा और व्यापक हो सकती है।

मोबाइल नंबर – 9434818103

email ID : angelaquarians@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 198-201

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

मानवीय मूल्य और संस्कारों के विकास के लिए हितोपदेश की महता/उपयोगिता

डॉ. अर्चना कुमारी
सहायक प्रोफेसर संस्कृत,
राजकीय महाविद्यालय, बौंद कलां (चरखी दादरी)

संस्कृत साहित्य में अनेक नीति काव्यों की रचना हुई, जिनमें जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। जैसे कि राजनीति, समाज, धर्म, व्यक्तिगत जीवन और लोकाचार/नीति काव्यों का उद्देश्य लोगों को सही मार्ग पर चलने और सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। नारायण पंडित द्वारा रचित नीति काव्य हितोपदेश में व्यावहारिक ज्ञान, साधारण लोक नीति एवं राजनीति की सहज–सरल शिक्षा देने के लिए कुछ मनोरम नीति कथाओं का वर्णन किया है। नारायण पंडित ने हितोपदेश ग्रंथ को चार भागों में विभाजित किया हैः–

1. पहला भाग–मित्र लाभ है जिसका अर्थ है मित्र की प्राप्ति।
2. दूसरा भाग–मित्र भेद (सुहृदय भेद) जिसका अर्थ मित्रता तोड़ना।
3. विग्रह भाग–युद्ध करना।
4. संधि भाग–मेल करना।

मित्र लाभ में सभी कथाएं कमजोर और असहाय आकार में छोटे जानवरों पर आधारित है। पशु–पक्षियों के माध्यम से कथाएं, मित्रता, सहायता, प्रेम, शत्रुओं की पहचान की सूझबूझ, अत्यधिक लालच न करना, धन संचय न करना, बुद्धि की महता, संकट में धैर्य ना खोना आदि गुणों व मानवीय मूल्यों की ओर ध्यान आकर्षित करती है। इन कथाओं में आरंभ श्लोक जीवित पद्धतियों के आदर्श उदाहरण है। नीति कथाओं का उद्भव वेदों से हुआ है। इन कथाओं के पात्र अधिकतर मनुष्य न होकर पशु–पक्षी है। वे मनुष्य के समान ही अपने सभी कार्यों को करते हैं। इन कथाओं के माध्यम से कम बुद्धि वाले बालक भी लोक व्यवहार व राजनीति की गूढ़ व जटिल बातों को आसानी से समझ सकते हैं। नीति का उपदेश देने वाली कथा प्रायः गद्य में दी जाती है परंतु उसके बीच–बीच में व समाप्ति में नैतिक उपदेश से युक्त पद्य भी होते हैं।

नीति कथाओं का एक मुख्य गुण यह भी है उनमें प्रधान कथा के अंतर्गत कई अन्य कथाओं का भी समावेश कर दिया जाता है। यह कथाएं बड़ी ही सरल, रोचक व प्रेरणादायक है। हितोपदेश में वर्णित कथाओं के माध्यम से व्यक्ति जीवन में अपने–पराए, शत्रु–मित्र, परिचित–अपरिचित आदि से किस प्रकार का व्यवहार करें जिससे वह सुखी रह सके और व्यक्ति के जीवन का भी यही उद्देश्य है कि वह सुखी रह सके।

हितोपदेश में ऐसी अनेक कथाओं के माध्यम से युवा होते बालक, विद्यार्थियों को अपने जीवन में किस प्रकार का आचरण करना चाहिए।

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।।[1]

अर्थात् – जैस मिट्टी के कच्चे पात्र में बने चित्र, रेखाएं आदि कलात्मक संस्कार उसके पकाए जाने पर नहीं मिटते, वैसे ही कोमल बुद्धिवाले बालकों के मन से अनेक कथाओं के बहाने सुनाए गए नीति वचन नहीं मिटते।

अपने जीवन में किस प्रकार के मित्र बनाने चाहिए और किन मित्रों को अपने जीवन से त्याग देना चाहिए।

यस्य मित्रेण संभाषो यस्य मित्रेण संस्थितिः।
यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान्।।[2]

अर्थात् – जिसकी मित्र के साथ बातचीत हो, जिसका मित्र के साथ निवास हो, जिसका मित्र के साथ गुप्त विषयों पर विचार–विमर्श हो, इस संसार में उससे बढ़ाकर भाग्यशाली कोई नहीं है।

जिस व्यक्ति के पास अच्छा मित्र हो वह उससे गुप्तवार्ता कर सकता हो और उचित सलाह पर अमल करके अपने जीवन में आई कठिनाईयों से निकल सकता हो, जिसके पास ऐसा मित्र है वह भाग्यशाली है।

यानि कानि च मित्राणि, कृतानि शतानि च।
पश्य मूषकमित्रेण, कपोताः मुक्तबन्धनाः।।[3]

अर्थात् – जैसे भी हो सैकड़ो मित्र बना लेने चाहिए देखो, चूहे की मित्रता से कबूतर बंधन से मुक्त हो गए थे।

कहने का भाव यह है कि स्थिति देखकर मित्र नहीं बनाने चाहिए। सभी आपके मित्र हैं जैसे चूहे के छोटे होने पर भी कबूतर के पाश बंधनों को काट दिया गया। इसलिए सैकड़ो मित्र बनाने चाहिए।

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं, न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः।
व्यवहारेण जायन्ते, मित्राणि रिपवस्तथा।।[4]

अर्थात् क्योंकि न तो कोई किसी का मित्र हैं और न ही कोई किसी का शत्रु है। व्यवहार से ही मित्र और शत्रु हो जाया करते हैं।

अगर हमें मित्रता करनी है तो यह हमारे व्यवहार पर निर्भर करता है। व्यवहार ही शत्रु और मित्र बनाता है।

अन्य जैसे :

सुहृदां हितकामानां यो न शृणोति भाषितम्।
विपत् सन्निहिता तस्य स नरः शत्रुनन्दनः।।[5]

जो प्राणी भलाई करने वाले परम मित्रों की बात को नहीं सुनता है, विपति उसके पास में ही मंडराती रहती है। वही शत्रु को आनंद प्रदान करने वाला होता है।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।[6]

अर्थात् – पीछे से कार्यों में हानि पहुंचने वाले, सामने मीठा बोलने वाले मित्र को ऊपर से दूध भरे हुए तथा अंदर से विष भर घड़े के समान त्याग कर देना चाहिए।

मित्र लाभ विद्यार्थी जीवन के लिए बहुत उपयोगी है। विद्यार्थी जीवन में बालक को अपने मित्र का चुनाव इस तरह करना चाहिए कि वह अपने जीवन में सफलता को प्राप्त कर सके।

हितोपदेश के वर्णित विषय में संतसंगति, भाग्य की अपेक्षा कर्म की महत्ता व धर्म महत्वपूर्ण माना गया है। युवावस्था में व्यक्ति को भाग्य की अपेक्षा अपने कर्म करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए व सज्जन व्यक्ति की संगति में रहना चाहिए। जिससे वह अपने जीवन को व्यवस्थित रूप से निर्वहन कर सकता है। हितोपदेश में मानव जीवन को संमार्ग पर चलने और सफलता प्राप्ति हेतु प्रेरित करता है। भाग्य की अपेक्षा परिश्रम को सर्वोपरि मानना चाहिए और परिश्रम करते रहना चाहिए।

न दैवमिति सञ्चिन्त्य त्यजेदुद्योगमात्मनः।
अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाप्तुमर्हति।।[7]

''भाग्य पक्ष में है!'' इस प्रकार विचार करके मनुष्य को अपना प्रयत्न (परिश्रम) नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि परिश्रम के बिना तिलों से तेल को भी निकालने में कोई समर्थ नहीं है।

उद्योगिनं पुरूषसिंहमुपैति लक्ष्मीः,
दैवेन देयमिति कापुरूषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरू पौरूषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।।[8]

प्रयत्न करने वाला श्रेष्ठ पुरूष ही लक्ष्मी को प्राप्त करता है। ''भाग्य ही देता है'' इस प्रकार कायर पुरुष कहते हैं। अतः भाग्य को छोड़कर अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न (प्रयास) करना चाहिए। प्रयत्न करने से भी यदि कार्य सफल नहीं होता है तो इसमें किसका दोष है।

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात् पुरूषकारेण यत्नं कुर्यादतन्द्रितः।।[9]

पहले जन्म में किया गया जो कार्य है वह 'भाग्य है' इस प्रकार कहा जाता है। अतः इस जन्म में आलस्य रहित होकर प्रयत्न करना चाहिए।

सत्संगति –

सज्जनों की सत्संगति से तात्पर्य है –अच्छे और सदाचारी लोगों के साथ समय बिताना और उनके साथ विचार–विमर्श करना।

सज्जनों की सत्संगति से आध्यात्मिक विकास होता है। साथ ही नैतिक शिक्षा भी मिलती है। सज्जनों की संगति से मानसिक शांति मिलती है और जीवन की समस्याओं का समाधान मिलता है। हितोपदेश में भी राजा सुदर्शन ने विचार किया, मेरे पुत्र अशिक्षित होकर भी विद्वानों की संगति से सुयोग्य हो सकते हैं।

काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीं द्युतिम्।
तथा सत्संनिधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्।।[10]

जिस प्रकार स्वर्ण के साथ होने से कांच का टुकड़ा भी मरकतमणि की शोभा को प्राप्त कर लेता है उसी

प्रकार सज्जनों की संगति से मूर्ख मनुष्य भी कुशल हो जाता है।

कीटोऽपि सुमनःसङ्गादारोहति सतां शिरः।

अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः।।[11]

कीड़ा भी फूलों के साथ रहकर सज्जनों के सिर पर पहुंच जाता है। महान पुरुषों के द्वारा सम्मान से प्राप्त किया गया पत्थर भी देवता बन जाता है।

यथोदयागिरेर्द्रव्यं सन्निकर्षेण दीप्यते।

तथा चित्तसन्निधानेन हीनवर्णाऽपि दीप्यते।।[12]

जिस प्रकार उदयागिरी पर्वत के संपर्क से पदार्थ चमकता है उसी प्रकार सज्जनों के साथ रहने से मूर्ख मनुष्य भी सुशोभित होता है।

संस्कृत साहित्य और नीति शिक्षा के क्षेत्र में इस कृति का स्थाई महत्व है। माननीय मूल्य और संस्कारों का विकास मानव समाज को एक सकारात्मक दिशा में ले जाने में अहम भूमिका निभाता है। मानवीय मूल्य वे है जो हमारे जीवन को आध्यात्मिक व नैतिक रूप से समृद्ध बनाते हैं। जबकि संस्कार वो आदतें और व्यवहार है जो हमारे जीवन को सुव्यवस्थित और सभ्य बनाते हैं। सत्यनिष्ठा, सहानुभूति, आदर भाव वे मानवीय मूल्य है जो दूसरों की भावना और समस्याओं को समझने और एक दूसरे के प्रति सम्मान, आदर के साथ व्यवहार करने के लिए प्रेरणा देते हैं। हितोपदेश ग्रंथ में अच्छे मित्र की पहचान, सज्जन व्यक्तियों की संगति, भाग्य से बढ़कर कर्म करने के लिए प्रोत्साहित करते है। पशु–पक्षियों के माध्यम से कथाएं अध्ययन करने में सरल व सहज है।

एक दूसरे की सहायता करना, लालच न करना, धन संचय न करना, बुद्धि की महत्ता, संकट के समय धैर्य का न खोना, आदि गुण एक श्रेष्ठ मानव समाज का निर्माण करते हैं। हितोपदेश में आए पद्य व गद्य जीवन पद्धतियों के आदर्श उदाहरण है और एक ऐसे आधारभूत समाज का निर्माण करते हैं जो वर्तमान समय की नितांत आवश्यकता है, क्योंकि इन्हीं गुणों को धारण कर मानव साधारण मनुष्य से श्रेष्ठ मानव की श्रेणी में आता है। अतः हितोपदेश के मानवीय मूल्य ही वास्तविक जीवन की आदर्श पद्धतियों का जीवंत उदाहरण है।

संदर्भ :–

1. हितोपदेश प्रस्ताविका – श्लोक 8
2. हितोपदेश मित्रलाभ – श्लोक 39
3. हितोपदेश मित्रलाभ – श्लोक 53
4. हितोपदेश मित्रलाभ – श्लोक 71
5. हितोपदेश मित्रलाभ – श्लोक 74
6. हितोपदेश मित्रलाभ – श्लोक 77
7. हितोपदेश मित्रलाभ – श्लोक 30
8. हितोपदेश प्रस्ताविका – श्लोक 31
9. हितोपदेश प्रस्ताविका – श्लोक 33
10. हितोपदेश प्रस्ताविका – श्लोक 42
11. हितोपदेश प्रस्ताविका – श्लोक 45
12. हितोपदेश प्रस्ताविका – श्लोक 12

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 202-210
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

WOMEN AS IDOLS OF LOVE, SACRIFICE, AND TOLERANCE IN THE WORKS OF VIKRAM SETH

Dr. Om Prakash Sarvaiya, Assistant Professor,
Govt. Girls College Seoni (M.P.)

Abstract :

The depiction of women in Indian English literature shows how social conditions have developed and how cultural standards have changed. Vikram Seth stands out among modern Indian authors because he creates female characters who display both emotional strength and moral character and the ability to overcome obstacles. The research paper studies how Vikram Seth presents female characters as symbols of love and dedication and patience throughout his major works which include A Suitable Boy (1993) The Golden Gate (1986) and An Equal Music (1999). The novels show women from various cultural and social backgrounds who include traditional Indian housewives and widows and contemporary independent Western women. The study uses textual analysis together with feminist literary approaches to explore how Seth's female characters manage their personal desires while handling their family duties and their obligations to society. The characters of Lata Mehra, Rupa Mehra, Saeeda Bai, Liz Dorati, and Julia McNicholl show different levels of emotional strength and dedication to their moral principles. The research argues that Seth presents women not merely as passive figures within patriarchal structures but as individuals who shape relationships and influence social harmony through compassion and endurance. The study demonstrates how Seth's works explore love and sacrifice and tolerance which leads to a deeper understanding of gender roles and identity and cultural transformation in modern literature. The paper concludes that Vikram Seth's female characters function as emotional pillars within the narrative which display both traditional virtues and developing feminist awareness.

Keywords *: Vikram Seth, women characters, love, sacrifice, tolerance, Indian English literature, feminism*

- **Introduction :**

The field of Indian English literature has grown into a diverse and extensive discipline which

shows how Indian society and culture and political systems have changed throughout the modern era. The representation of women in their family and societal roles stands as a central theme that appears repeatedly throughout this literary collection. R. K. Narayan and Anita Desai and Shashi Deshpande and Arundhati Roy created female characters who defy common stereotypes while they examined the psychological and social aspects of women's existence. Vikram Seth stands out among these authors because he uses his special storytelling technique to show how people connect with each other across different cultures.

Seth's literary works create their particular style through their international settings and complex plots and their deep understanding of human behaviour. His novels explore multiple themes which include love and identity and social change and moral responsibility. The stories he tells show different experiences but they always include female characters who play important parts. In Seth's works, women frequently embody the virtues of love, sacrifice, and tolerance, which sustain relationships and maintain social harmony (Gupta 2005).

The themes of love, sacrifice, and tolerance have long been associated with feminine identity in many cultural traditions. The Indian society associates these virtues with the ideal of womanhood which requires women to display devotion and patience and selflessness (Pandurang, 2000). The modern literature movement has started to challenge traditional ideals by showing women who actively decide their social roles during times of societal transformation.

Seth's novels provide an intriguing examination of this relationship. His female characters are not merely passive embodiments of traditional virtues; rather, they are complex individuals who experience emotional conflicts, personal aspirations, and moral dilemmas. The characters in A Suitable Boy and An Equal Music face different challenges as Lata Mehra from A Suitable Boy must choose between romantic love and her family's demands while Julia McNicholl from An Equal Music must find a way to balance her former love with her current duties (Seth, 1993, 1999).

The Golden Gate presents a contemporary city environment which shows how personal freedom and emotional openness control relationship development. The female characters Liz Dorati and Janet Hayakawa display their ability to withstand difficulties while dealing with complicated love affairs (Seth 1986). Women in these stories serve as emotional support for others who experience social and personal upheaval according to Seth's portrayal.

Scholars have observed that Seth's works display deep empathy for women's experiences because of Seth's treatment of women in his writing. According to Singh and Tyagi (2022), Seth consistently portrays women as "the cornerstone of family and society" because he wants to show their strength and their ability to endure. This perspective aligns with broader feminist interpretations

of literature that highlight women's agency within patriarchal structures (Beauvoir, 1949; Butler, 1990).

The purpose of this research paper is to analyse the representation of women as idols of love, sacrifice, and tolerance in Seth's major novels. The study examines key female characters to explore how Seth constructs feminine identity and how these characters reflect cultural values of their time.

The research paper contains multiple sections which create its structure. The literature review starts after the introduction and studies earlier research about Seth's works and feminist literary theory. The conceptual framework evaluates three main themes love and sacrifice and tolerance. The upcoming sections study how women are portrayed in The Golden Gate and A Suitable Boy and An Equal Music. The paper ends with a study of how Seth presents women which affects current literary discussions.

- **Literature Review :**

Scholarly discussions of Vikram Seth's works have focused on various themes which include narrative form and cultural identity and interpersonal relations. Critics have praised Seth for his ability to combine traditional storytelling techniques with modern literary experimentation.

The first substantial analysis of Seth's writing appears in Seemita Mohanty's study A Critical Analysis of Vikram Seth's Poetry and Fiction. According to Mohanty (2007) Seth's stories depict how humans maintain relationships with one another while they respond to their emotional states. Mohanty shows that Seth uses his female characters as moral guides who help other characters achieve emotional growth throughout the story.

Murari Prasad (2005) demonstrates how A Suitable Boy uses social realism to present a complete depiction of Indian society during the post-independence period. The novel includes characters from diverse social backgrounds which represent the cultural and religious diversity found throughout India. Prasad shows that the novel's female characters hold essential positions which determine both family ties and social connections.

Feminist scholars have also examined Seth's works to study the relationship between gender identity and social expectations. Mala Pandurang (2000) argues that A Suitable Boy reveals the tension between traditional arranged marriage and modern romantic ideals. The main character Lata Mehra demonstrates through her life choices the difficulties which educated women encounter when they try to combine their personal goals with their family duties.

Bharathi (2013) examines the theme of self-fulfilment through his study of Seth's novels while he concentrates on the emotional development of female protagonists. According to Bharathi, Seth presents women as characters who display both their inner power and their inherent fragility.

Feminist literary analysis has studied the theme of feminine sacrifice through its multiple interpretations. The Second Sex (1949) by Simone de Beauvoir shows how patriarchal societies create their definitions of women through their expectation that women will dedicate themselves to others. Butler (1990) and later scholars studied the process through which cultural narratives create gender role definitions.

Indian literature shows that female characters typically display the qualities of patience and endurance according to critics. Sharma (2016) states that Indian English fiction establishes women as the ethical protectors who maintain family traditions.

The study conducted by Singh and Tyagi (2022) analyses how Seth presents women throughout his novels. The study shows that Seth's stories demonstrate how women possess emotional strength to endure both societal and personal challenges. The theme of feminine virtue throughout all of Seth's major works requires a complete analysis which currently remains unfulfilled despite existing research in the field. The research project aims to fill this research gap through its investigation of how love, sacrifice, and tolerance themes establish the representation of women in Seth's fictional works.

- **Conceptual Framework: Love, Sacrifice, and Tolerance :**

The study bases its theoretical framework on the three concepts of love and sacrifice and tolerance. The qualities of love and sacrifice and tolerance belong to the realm of moral virtue and emotional intelligence according to family relationship standards. Love exists as a complicated emotional relationship which includes three elements of affection and loyalty and commitment according to the Oxford English Dictionary. Love serves as a transformative element in literary stories which changes the way characters behave and develop their identity.

The definition of sacrifice describes the act of giving up something valuable for the benefit of others according to Hornby 2005. In numerous cultural practices women must display sacrifice through their domestic duties because they have to put others needs before their own wants. Tolerance involves the ability to endure hardship and accept differences without resentment. Female characters in Seth's novels show extraordinary tolerance when they face both emotional and social challenges. The three qualities show a strong connection with each other. Relationships based on true love need people to make sacrifices while people who practice tolerance can maintain their relationships during times of disagreement and hardship.

- **Women in *The Golden Gate* :**

The Golden Gate which Seth created in 1986 stands as his most original work. The novel which is written in verse form depicts the experiences of young professionals who live in California.

The modern-day novel shows its characters searching for love and friendship and emotional satisfaction which are timeless human experiences.

The novel presents Liz Dorati as one of its most important female characters. She begins a romantic relationship with John Brown but later chooses to marry Phil Weiss. Liz shows emotional growth and caring nature through her behaviour as a stepmother to Phil's son (Seth 1986).

Her acceptance of responsibility for another person's child demonstrates the sacrificial love theme. Liz demonstrates through her behaviour that authentic love requires both dedication and understanding instead of simple romantic attraction.

Another important character is Janet Hayakawa. Janet's relationship with John demonstrates how modern romantic relationships develop their complex nature. Despite their separation, Janet maintains her compassionate understanding of John. Her emotional resilience demonstrates the value of tolerance as a fundamental quality.

Mrs. Dorati, Liz's mother, represents the traditional ideal of motherhood. She believes that love serves as the basic building block for all human connections which she considers the most important aspect of her family.

Seth depicts women through these characters who bring emotional equilibrium to their families during times of social change.

Women in *A Suitable Boy* :

A Suitable Boy is Seth's most extensive novel, depicting the lives of four interconnected families in post-independence India. The novel includes numerous female characters whose experiences reflect the complexities of gender roles in Indian society.

Lata Mehra :

The novel centres around Lata Mehra as its main character. Her relationship with Kabir Durrani becomes a social challenge because they belong to different religious faiths. Lata chooses to marry Haresh Khanna because she wants to maintain family peace instead of following her personal desires (Seth, 1993).

Lata's decision shows how her love for somebody conflicts with her responsibilities. She loves Kabir but understands the social and family problems that their relationship will create.

Rupa Mehra :

Rupa Mehra represents maternal devotion and resilience. After her husband's death she dedicates her life to raising her children while securing their future safety. The character demonstrates both sacrifice and tolerance as she meets the expectations of Indian society for mothers.

Saeeda Bai :

Saeeda Bai, a courtesan, presents an opposing view of womanhood to modern society. The mother shows intense love for her daughter Tasneem despite facing social discrimination. Her dedication to her daughter's education and improved future demonstrates the timeless nature of maternal sacrifice.

Women in *An Equal Music* :

The novel An Equal Music shows how classical musicians live their lives in European countries. The story centres on the romantic relationship between Michael Holme and Julia McNicholl.

Sophie is Seth's emotionally complex female persona. She continues to love Michael while deciding to stay with her husband and son.

Her decision reflects the theme of sacrifice, as she prioritizes family stability over personal desire (Seth, 1999).

Julia's struggle with hearing loss further demonstrates her resilience and determination.

Feminist Interpretation :

Seth's depiction of women in his work shows both traditional feminine attributes and contemporary feminist characteristics according to feminist analysis. The female characters in his work show traditional feminine traits yet they also display independent behaviour and emotional understanding. Seth presents women as active decision makers who face tough ethical dilemmas instead of showing them as helpless victims.

- **Conclusion :**

Vikram Seth's novels show how people form human connections through their depiction of female characters who demonstrate love and sacrifice and tolerance. The three major works of Seth which include A Suitable Boy and The Golden Gate and An Equal Music present female characters who display emotional strength and strong moral values while they drive the development of family ties and social connections. The women in this story serve as more than background characters because they become the main emotional and moral elements which drive the plot. Lata Mehra, Rupa Mehra, Saeeda Bai, Liz Dorati, and Julia McNicholl represent various aspects of feminine strength and endurance. Through their experiences, Seth highlights how women often negotiate complex personal desires alongside societal expectations. Lata Mehra's decision about marriage shows her internal battle between her romantic feelings and her obligation to her family, but Rupa Mehra shows her commitment to her children through traditional maternal dedication. The love that Saeeda Bai shows her daughter demonstrates that people can protect their love through selfless acts which defy social

limitations that exist even in disadvantaged situations. The novels of Seth portray Western environments where female characters demonstrate different forms of these virtues through their actions. Liz Dorati in The Golden Gate shows compassion through her ability to adapt as she takes on the responsibilities of being both a partner and a stepmother, while Julia McNicholl in An Equal Music represents the emotional struggle between past passion and present responsibility. Julia's final decision to put her family first shows how essential moral principles and emotional development are to her character development.

Seth shows through his characters that love and sacrifice and tolerance serve as powerful strengths for people. The female characters in his novels create family unity while offering emotional support during crises and guiding other characters toward their ethical paths. The characters demonstrate their capacity to handle difficulties without losing their kindness which proves their vital function in maintaining social and familial connections. The female characters in Seth's work show traditional cultural values but also demonstrate modern gender identity understanding. The female characters in his work display traditional feminine virtues yet they also show their unique personalities and intellectual abilities and control over their feelings. Seth uses two different ways of presenting information to show how women are treated in both Eastern and Western cultures. The works of Vikram Seth demonstrate through their complete body of work that women function as the emotional core elements which hold society together. Their capacity to show compassion while demonstrating patience and giving up personal needs for others leads to their essential role in creating stable relationships and community bonds. Through his depiction of women as powerful empathetic beings who possess moral strength Seth acknowledges their continuous impact on family life while he honours their wider contribution to human development.

References :

- Abrams, M. H., & Harpham, G. G. (2015). *A glossary of literary terms* (11th ed.). Cengage Learning.
- Albertazzi, S. (2005). *An equal music, an alien world: Postcolonial literature and the representation of European culture*. Cambridge University Press.
- Barry, P. (2017). *Beginning theory: An introduction to literary and cultural theory* (4th ed.). Manchester University Press.
- Belsey, C. (2002). *Critical practice* (2nd ed.). Routledge.
- Bertens, H. (2014). *Literary theory: The basics* (3rd ed.). Routledge.
- Bharathi, T. (2013). Feminine sensibility in the novels of Vikram Seth. *The Criterion: An*

International Journal in English, 4(6), 1–7.

- Butler, Judith. (1990). *Gender trouble: Feminism and the subversion of identity*. Routledge.
- Culler, J. (1997). *Literary theory: A very short introduction*. Oxford University Press.
- Dobie, A. B. (2012). *Theory into practice: An introduction to literary criticism*. Wadsworth.
- Eagleton, T. (2008). *Literary theory: An introduction* (2nd ed.). University of Minnesota Press.
- Giddens, A. (2006). *Sociology* (5th ed.). Polity Press.
- Gupta, R. K. (2005). Human relationships in the fiction of Vikram Seth. Atlantic Publishers.
- Habib, M. A. R. (2007). *A history of literary criticism and theory*. Blackwell Publishing.
- Hand, F. (2005). Translating India into English: Narrative technique in *A Suitable Boy*. In M. Prasad (Ed.), *Vikram Seth's A Suitable Boy: An anthology of recent criticism* (pp. 75–89). Pencraft International.
- Krishnaswamy, N. (2003). *Contemporary Indian writing in English*. Oxford University Press.
- Loomba, A. (2005). *Colonialism/Postcolonialism* (2nd ed.). Routledge.
- Majumdar, M. (2004). *Social status of women in India*. Dominant Publishers.
- Mohanty, S. (2007). *A critical analysis of Vikram Seth's poetry and fiction*. Atlantic Publishers.
- Mokashi-Punekar, R. (2008). *Vikram Seth*. Cambridge University Press.
- Myers, D. (2005). Passion and prejudice: Deconstructing thematic unity in *A Suitable Boy*. In M. Prasad (Ed.), *Vikram Seth's A Suitable Boy: An anthology of recent criticism*. Pencraft International.
- Nayar, P. K. (2010). *Contemporary literary and cultural theory*. Pearson.
- Pandurang, M. (2000). Feminist perspectives in the fiction of Vikram Seth. *Indian Journal of English Studies*, 40, 85–96.
- Pandurang, M. (2005). A feminist reading of *A Suitable Boy*. In M. Prasad (Ed.), *Vikram Seth's A Suitable Boy: An anthology of recent criticism*. Pencraft International.
- Prasad, M. (Ed.). (2005). *Vikram Seth's A Suitable Boy: An anthology of recent criticism*. Pencraft International.
- Rollason, C. (2005). Linguistic strategies in *A Suitable Boy*. In M. Prasad (Ed.), *Vikram Seth's A Suitable Boy: An anthology of recent criticism*. Pencraft International.
- Said, Edward. (1978). *Orientalism*. Pantheon Books.
- Seth, Vikram. (1983). *From Heaven Lake: Travels through Sinkiang and Tibet*. Penguin.
- Seth, Vikram. (1986). *The Golden Gate*. Random House.
- Seth, Vikram. (1993). *A Suitable Boy*. HarperCollins.

- Seth, Vikram. (1999). *An Equal Music*. Phoenix House.
- Seth, Vikram. (2005). *Two Lives*. Little, Brown.
- Selden, R., Widdowson, P., & Brooker, P. (2005). *A reader's guide to contemporary literary theory* (5th ed.). Pearson Education.
- Sharma, K. (2016). Gender representation in Indian English fiction. *Journal of Commonwealth Literature*, 51(3), 405–418.
- Showalter, Elaine. (1977). *A literature of their own: British women novelists from Brontë to Lessing*. Princeton University Press.
- Singh, A. P., & Tyagi, T. (2022). Women as idols of love, sacrifice, and tolerance in the novels of Vikram Seth. *International Journal of Health Sciences*, 6(S4), 1–8.
- Sinha, P. (2007). *Vikram Seth: The suitable writer – A critical response*. Creative Books.
- Spivak, Gayatri Chakravorty. (1988). Can the subaltern speak? In C. Nelson & L. Grossberg (Eds.), *Marxism and the interpretation of culture*. University of Illinois Press.
- Srivastava, N. (2005). Rendering Indian experience in English fiction. In M. Prasad (Ed.), *Vikram Seth's A Suitable Boy: An anthology of recent criticism*. Pencraft International.
- Tong, Rosemarie. (2009). *Feminist thought: A more comprehensive introduction* (3rd ed.). Westview Press.
- Tyson, L. (2015). *Critical theory today: A user-friendly guide* (3rd ed.). Routledge.
- Velamani, N. (2013). Ethnicity in the novels of Vikram Seth. *The Criterion: An International Journal in English*, 4(6), 1–10.
- Walby, S. (1990). *Theorizing patriarchy*. Basil Blackwell.
- Waugh, P. (2006). *Literary theory and criticism: An Oxford guide*. Oxford University Press.
- Young, R. J. C. (2003). *Postcolonialism: A very short introduction*. Oxford University Press.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 211-217

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

जल, जंगल और जमीन : उत्तराखंड में वन नीतियों के विरूद्ध जन–आंदोलनों का ऐतिहासिक विश्लेषण

किशोर कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग, डी0एस0बी0 परिसर
कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल।

शोध सारांश :

भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में अंग्रेजों के अपने व्यापारिक हितों हेतु पर्वतीय क्षेत्र के जंगलों का शोषण आरम्भ करने से पूर्व यहां के ग्रामीणों के वन संसाधनों पर निर्भरता और वनों के महत्व के कारण यहां पारम्परिक रूप से वनों के उपयोग एवं संरक्षण की प्राकृतिक प्रक्रिया थी। सन् 1865 ई0 में ब्रिटानिया हुकूमत द्वारा प्रथम वन अधिनियम लाया गया तथा उसके बाद इस क्षेत्र की रियाया पर एक के बाद एक शोषणकारी वन अधिनियम थोपे गए जिसने यहां की ग्रामीण जनता को वनों पर पारम्परिक अधिकारों से वंचित कर दिया।

इन शोषणकारी वन अधिनियमों के विरोध में उत्तराखण्ड़ की जनता द्वारा 19 वीं शताब्दी के दूसरे दशक से विरोध के स्वर उठने लगे थे। सन् 1916 में कुमाऊं परिषद के गठन के बाद जंगलात नीतियों के प्रति संगठित तरीके से विरोध होने लगा था। कुमाऊं परिषद की बैठकों और अधिवेषनों का प्रमुख मुद्दा जंगल और बेगार आन्दोलन ही हुआ करते थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1952 में भारत सरकार ने नई जंगलात नीति का निर्माण किया लेकिन ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्मित नियम ज्यादा परिवर्तित नहीं हुए और न ही जनता के जंगल संबधी समस्याओं का समाधान ही हुआ जिसके चलते पर्वतीय क्षेत्र के लिए वन व्यवस्था में सुधारों की मांग समय–समय पर उठती रही। 1970 के दशक में उत्तराखण्ड के पहाड़ों की वन उपज स्थानीय सहकारी समितियों को न देकर बाहर के निजी ठेकेदारों को दी जाने लगी जो कम धनराशि में वन उपज का ठेका प्राप्त करके तुरंत ऊंचे दामों में पुनः बेच देते थे। प्रदेश सरकार की ऐसे ही कई पक्षपातपूर्ण और गलत वन नीतियों के खिलाफ जनता द्वारा जगह–जगह विरोध शुरू हो गए और इनकी शुरूआत हुई मार्च 1974 में चमोली के रैणी गांव से प्रारम्भ हुए चिपको आन्दोलन से। प्रस्तुत शोध "उत्तराखण्ड़ में वन प्रतिरोधों की परम्परा" में इस क्षेत्र में सरकारी वन नीति व उससे इस क्षेत्र के ग्रामीणों व यहां की पारम्परिक कृषि–पशुपालन पर पड़े प्रभावों तथा यहां के ग्रामीणों द्वारा इन नीतियों के प्रतिरोध के स्वरूप को समझने की कोशिश की गई है।

प्रस्तावना –

प्रारम्भ से ही उत्तराखण्ड़ के पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों की आजीविका का मुख्य साधन कृषि व पशुपालन ही

रहा है। ग्रामीणों के पशुओं के लिए चारे, कृषि उपकरणों, खाद, ईंधन हेतु लकड़ी इत्यादि की पूर्ति जंगल ही करते रहे हैं। सामान्य किसान तथा पशुचारक अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में जिन संसाधनों पर निर्भर थे या हैं, उनकी सुरक्षा तथा स्वामित्व का सवाल उनके अस्तित्व से जुड़ा था और है। इसलिए जंगल के अधिकारों की लड़ाई स्थानीय समाज की अपने को अपनी जगह कायम रखने की लड़ाई थी। ग्रामीणों का यह अपनी मिट्टी को बचाने का जतन था। प्रत्यक्ष रूप से यह अपनी खेती, पशुपालन, कुटीर उद्योग, जड़ी–बूटी, कन्दमूल और सांस्कृतिक स्थलों–उत्सवों तथा गीतों को बचाने की लड़ाई भी थी। दूरस्थ दुर्गम इलाकों में रहने वाले चुप समाज अन्याय के प्रतिकार का नया मुहावरा कैसे गढ़ते हैं, यह उत्तराखण्ड में हुए जंगलात सम्बन्धी प्रतिरोधों से बखूबी समझा जा सकता है।[1] आज भी उत्तराखण्ड़ सहित देश के अनेक भागों में विकास के नाम पर वनों के दोहन तथा अपने जल, जंगल और जमीन की लड़ाई ग्रामीण / वनवासी लड़ रहे हैं। आज के जलवायु परिवर्तन, बढ़ते ग्रीन हाउस गैसों के चलते पर्यावरण असंतुलन तथा वनों के विनाश के कारण प्राकृतिक आपदाओं दौर में अपने अस्तित्व के रक्षक जंगलों व अपनी माटी को वन माफियाओं / ठेकेदारों व सरकार की दोषपूर्ण नीतियों से बचाने के लिए किए गए इन प्रतिरोधों व इनका इतिहासबोध और भी अधिक प्रासांगिक हो जाता है।

वन प्रतिरोधों की पृष्ठभूमि :

19वीं शताब्दी से अंग्रजों के अपने व्यापारिक हितों हेतु पर्वतीय क्षेत्र के जंगलों के शोषण आरम्भ करने से पूर्व वनों पर ग्रामीणों का सामुहिक अधिकार था। वे अपनी आवश्यकतानुसार वन संसाधनों का प्रयोग करते थे साथ ही जंगलों का संरक्षण भी करते थे। मध्यकाल में कत्यूरी व बाद में चन्द व पंवार शासन में 'वापी, कूप, तड़ग, देवालय व वृक्ष' लोक सम्पत्तियां समझी जातीं थी और इन पर सबका साझा अधिकार था। गोरखाओं ने सिर्फ 'कत्थे व कांठबास' पर कर लगाया। शेष वनों पर ग्रामीणों का साझा अधिकार बना रहा।[2] ग्रामीणों की जंगलों पर निर्भरता और वनों के महत्व के कारण यहां पारम्परिक रूप से वनों के उपयोग एवं संरक्षण की प्राकृतिक प्रक्रिया थी। यहां अनेक जंगल क्षेत्र स्वतः विकास के परिणाम स्वरूप नहीं, अपितु वहां वृक्षारोपण और संरक्षण के चिन्ह मिलते हैं।[3] क्योंकि पहाड़ों के शिखरों पर लोक देवी–देवताओं के मंदिरों के निकट स्थानीय निवासियों द्वारा देवदार, बांज, आदि के पेड़ लगा दिए जाते थे। जिनका समय के साथ विस्तार होता रहता था। साथ ही अनेक वन स्थानीय देवताओं को समर्पित कर दिए जाते थे जिनका ग्रामीणों द्वारा सामुहिक रूप से संरक्षण किया जाता था।

भारतीय वन विभाग के इतिहास में रेलवे निर्माण का महत्वपूर्ण योगदान रहा। रेल विभाग की जरूरतों के कारण ही भारत में वन विभाग की स्थापना हुई। रेलवे निर्माण के प्रारम्भिक दिनों में वनों के भारी विनाश के दबाव ने 1864 में जर्मन विशेषज्ञों की सहायता से वन विभाग की स्थापना की गई। नए विभाग का प्रमुख कार्य रेलवे स्लीपर बनाने के लिए मजबूत और टिकाऊ लकड़ी जैसे – साल, टीक, तथा देवदार के क्षेत्रों का पता लगाना था।[4] इस प्रकार 1865 में पहला वन अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम के माध्यम से सरकार को किसी भी वन भूमि को राज्य की भूमि घोषित करने, उसके प्रबन्धन तथा उक्त वन संबंधित नियम बनाने और उन नियमों की अवहेलना करने पर अपराधियों को दण्डित करने का अधिकार प्रदान किया किया गया।

अंग्रेजों द्वारा वानिकी प्रबन्धन के नाम पर इस अधिनियम द्वारा ग्रामीणों को उनके जंगलों पर बिना किसी रोक–टोक के पारम्परिक अधिकारों से उन्हें बेदखल करने का प्रयास था।[5] 1865 के इस अधिनियम को और

कठोर बनाने हेतु 1869 ई0 में डेट्रिच ब्रांडिस ने एक प्रारूप प्रसिडेन्सियों के अधिकारियों को भेजा और 1874 ई0 में विभिन्न प्रसिडेन्सियों के वन अधिकारियों का एक सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें 1865 ई0 के वन अधिनियम के दोषों और नए प्रारूप पर विचार विमर्श किया गया। इस प्रकार डेट्रिच ब्रांडिस और बेडेन पावेन ने जो प्रारूप बनाया था वही 1878 के वन अधिनियम के रूप में सामने आया।[6]

इस अधिनियम के तहत वनों को 3 भागों में विभाजित किया गया –

- आरक्षित वन
- सुरक्षित वन
- ग्रामीण वन

इस अधिनियम के अन्तर्गत 1878 ई0 में आरक्षित वन क्षेत्र 14000 वर्ग मील से बढ़कर 1900 ई0 तक 81400 वर्ग मील तथा सुरक्षित वन क्षेत्र 33000 वर्ग मील तक हो गया।[7]

औपनिवेशिक उत्तराखण्ड़ में वन प्रबन्धन की प्रक्रिया :

1814 से 1878 – की समयावधि में सरकार द्वारा भाभर में साल के वनों का दोहन किया गया व पहाड़ी क्षेत्र के वनों को सुरक्षित रखा गया। 1850 के आस पास नैनीताल और 1873 व 1875 में रानीखेत व अल्मोड़ा के वनो का सीमांकन किया गया।

1878 से 1893 – इस दौरान अल्मोड़ा व गढ़वाल के अनेक वन क्षेत्रों जिनको 1878 के वन अधिनियम के अन्तर्गत सीमांकित किया गया था उन वनों को आरक्षित वन क्षेत्र घोषित किया गया।

1893 से 1911 – 1893 के अधिनियम के अनुसार नाप भूमि के अतिरिक्त समस्त भूमि को राज्य की संपत्ति घोषित किया गया तथा यह भी घोषित किया गया कि जनता का उस पर कोई अधिकार नहीं होगा एवं समस्त बेनाप भूमि को जिला संरक्षित वन क्षेत्र घोषित कर दिया गया। 26 अक्टूबर 1894 को देवदार, साल, चीड़, शीशम, खैर व तुन के वृक्षों को राजकीय वृक्ष घोषित किया व ग्रामीणों की नाप भूमि पर भी इन पेड़ो को काटे जाने को प्रतिबंधित कर दिया गया।[8] 05 अप्रैल 1903 को कुमाऊँ के जिला संरक्षित वनों को 2 भागों में विभाजित किया गया।

- **बंद सिविल वन** – जिन्हें सरकार द्वारा पुनर्जनन और संरक्षण के लिए आवश्यक समझा गया।
- **खुले सिविल वन** – जिनमें 1893 के अधिनियम के अधीन ग्रामीण अपने अधिकारों का उपयोग कर सकता था।

प्रतिरोधों की शुरूआत :

1911–1917 के बीच वाणिज्यिक वानिकी के फलस्वरूप ग्रामीणों के चराने योग्य मवेशियों की संख्या व ईंधन हेतु लकड़ी की मात्रा निश्चित कर दी गई। मकान तथा कृषि उपकरणों हेतु लकड़ी के लिए भी वनाधिकारी से स्वीकृति लेनी आवश्यक कर दी गई जिसमें अनेक सरकारी प्रक्रियाओं के गुजरना पड़ता था। इन सबके चलते पारंपरिक कृषि पद्धतियां व ग्रामीणों का जीवन काफी प्रभावित हुआ। इन वन अधिनियमों के विरोध में ग्रामीणों द्वारा वन विभाग के साथ असहयोग की नीति अपनायी उन्होंने वन विभाग द्वारा बनाए गए नियमों की अवहेलना की और विरोध प्रर्दशन किया। इस दौरान वन कानूनों को तोड़ने व वनाग्नि के अनेक मामले सामने आए जिनमें से अधिकांश जंगलों में जानबूझकर आग लगाई गई थी। मई 1916 में नैनीताल वन प्रभाग की गौला राजि में लाग

लगा दी गई। यह 5 साल बाद होने वाले व्यापक जनान्दोलन की पूर्व सूचक घटना थी।[9] उत्तरी गढ़वाल में 44 अंग्निकाण्ड हुए। गढ़वाल के तिंदारपुर पट्टी के लोगों ने इन नए वन नियमों और प्रतिबंधों को सहने के बजाय किसी दूसरे जिले और जलवायु में स्थानान्तरित होने की इच्छा व्यक्त की। ग्रामीणों ने वनों पर अपने पारंपरिक अधिकारों पर बढ़ते प्रतिबंधों के विरोध में व्यापक प्रदर्शन और हड़तालों का आयोजन किया।[10] सन् 1916 में कुमाऊं परिषद के गठन के बाद जंगलात नीतियों के प्रति संगठित तरीके से विरोध होने लगा था। कुमाऊं परिषद की बैठकों और अधिवेशनों का प्रमुख मुद्दा जंगल और बेगार आन्दोलन ही हुआ करते थे। 1916–1921 के दौरान कुमाऊँ में वन नियमों के उल्लंघन के कुल 10245 मामले दर्ज किए गए और इन मामलों में कुल 5619 व्यक्यिों को दण्डित किया गया।[11]

1926–1921 के वर्षों में ग्रामीणों का जंगलों पर सरकारी नियंत्रण का विरोध इस क्षेत्र में चल रहे कुली बेगार आन्दोलन से जुड़ा था। 1921 में कुली बेगार आन्दोलन में बागेश्वर में बेगार के रिकार्डों व कागजातों को सरयू में प्रवाहित करते समय कुली बेगार के नेताओं द्वारा स्पष्ट रूप से घोषणा की गई कि कुली बेगार आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात् वे वनों के लिए संघर्ष करेंगें। बद्री दत्त पाण्ड़ेय ने जनता को सम्बोधित करते हुए अपने भाषण में कहा : "पहले जंगलों में आग लगती थी तो उससे घास अधिक मात्रा में उपलब्ध होती थी जिससे गाय, भैंस ज्यादा मात्रा में दूध देती थी, लोगों के पास घी होता था। अब आग के संरक्षण में घास दुर्लभ हो गयी है। जानवर कमजोर पड़ते जा रहे हैं। पहले जंगलों के बदौलत घी मिलता था। अब टिनों के हिसाब से लीसा मिल रहा है। फलस्वरूप जनता को अब जंगलात के साथ असहयोग की नीति अपनानी चाहिए।"[12]

इस आन्दोलन में महिलाओं ने भी प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से महती भागीदारी निभाई। उन्होंने वन कानून तोड़े और गिरफ्तारियां दी। 1921 में सोमेश्वर की दुर्गादेवी नामक महिला को थकलोड़ी के जंगल में जानबूझकर आग लगाने के जुर्म 1 माह के कारावास की सजा सुनाई गई। दुर्गादेवी स्थानीय व राष्ट्रीय आन्दोलन में गिरफ्तार होने वाली पहली महिला थी।[13]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान भी वन नियमों का उल्लंघन किया गया। वन नियमों को तोड़ने के क्रम में पशुओं को सामूहिक रूप प्रतिबंधित वनों में चराना, जंगलों में आग लगना और आग लगने की सूचना वन अधिकारियों को न देना सम्मिलित थे। 1930–31 में जंगलों में आग लगाने की अनेक घटनाऐं हुई, जिन्हें प्रशासन ने आगजनी की संज्ञा दी। वहीं 30 मई, 1930 को टिहरी गढ़वाल राज्य की वन नीतियों (जो उत्तराखंड के बाकी हिस्सों में अंग्रेजों द्वारा शुरू की गई नीतियों के समान थी) के खिलाफ तिलाड़ी में एक विशाल सत्याग्रह आयोजित किया गया था। टिहरी के महाराजा यूरोप में थे और उनके प्रधान मंत्री चक्रधर जुयाल ने तिलाड़ी विरोध को कुचल दिया। पहाड़ के इस तिलाड़ी मैदान में जलियाँवाला बाग जैसी घटना का दोहराव हो रहा था। कुछ प्रदर्शनकारी लहूलुहान होकर जमीन पर गिर गए और बाकी लोग अपनी जान बचाने को इधर–उधर भाग रहे थे। कुछ लोग पेड़ों पर चढ़े तो उन्हें नीचे से गोली मार दी गई, कुछ इस अफरा–तफरी में यमुना में कूदने के चलते मारे गए। कुल 400 राउंड फायर किए गए जिसमें अनेक लोग शहीद हो गए। कई अन्य लोगों को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया जिनमें से 16 लोगों की जेल में मौत हुई। उनके शवों को क्रूर शासन ने बोरों में भरकर भिलंगना नदी में फेंक दिया।[14] वन आन्दोलन की अगली लहर 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान प्रकट हुई। चनौदा (अल्मोड़ा) का लीसा डिपो जला दिया गया, पश्चिम में हरिद्वार से लेकर पूर्व में रामनगर तक लकड़ी

के समस्त गेदामों को जलाने का कार्यक्रम बनाया गया पर वह सफल न हो सका। लेकिन गंगेली का जंगलात विश्राम गृह और रामनगर का डाक बंगले में आग लगा दी गयी। गढ़वाल में सियासेण का डाक बंगला तथा चमोली का पोस्ट ऑफिस भी आन्दोलनकारियों द्वारा आग के हवाले का दिया गया।[15]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1952 में भारत सरकार ने नई जंगलात नीति का निर्माण किया। लेकिन ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्मित नियम ज्यादा परिवर्तित नहीं हुए और न ही जनता के जंगल संबधी समस्याओं का समाधान ही हुआ। जिसके चलते पर्वतीय क्षेत्र के लिए वन व्यवस्था में सुधारों की मांग समय–समय पर उठती रही।

1970 के दशक में उत्तराखण्ड के पहाड़ों की वन उपज स्थानीय सहकारी समितियों को न देकर बाहरी निजी ठेकेदारों को दी जाने लगी जो कम धनराशि में वन उपज का ठेका प्राप्त करके तुरंत ऊंचे दामों में पुनः बेच देते थे। सरकार की ऐसे ही कई पक्षपातपूर्ण और गलत वन नीतियों के खिलाफ जनता द्वारा जगह–जगह विरोध शुरू हो गए थ। 4 नवम्बर 1970 के जंगलात विभाग की शोषणकारी नीति के विरूद्ध गोपेश्वर में ग्रामीणों द्वारा प्रदर्शन किया गया। 1 साल बाद 22 अक्टूबर 1971 को गोपेश्वर में ही एक और बड़ा विरोध प्रदर्शन हुआ जिसमें ग्रामीणों द्वारा स्पष्ट कहा गया 'जंगलों से प्राप्त कच्चे माल पर अपनी रोजी के लिए पहला हक हमारा है' तथा 'मनमानी लूट को अब हम सहन नहीं करेंगें।'[16] लेकिन संगठित तौर पर इन शुरूआत हुई मार्च 1974 में चमोली के रैणी गांव से प्रारम्भ हुए चिपको आन्दोलन से। चिपको आन्दोलन की शुरूआत मण्डल फाटा आन्दोलन के समय से ही शुरू हो गयी थी परन्तु अधिकांश विद्वान इसकी शुरूआत रैणीं से हुए वन आन्दोलन से मानते हैं। 26 मार्च 1974 को वन विभाग ने रैंणी गांव के जंगल से 2451 पेड़ों को काटने का ठेका 'भल्ला एण्ड कम्पनी' को दे दिया और इल पेड़ो को काटने के लिए प्रशासन द्वारा 26 मार्च का दिन निश्चित किया गया तथा इसी दिन पूरी नीति घाटी के पुरुषों को प्रशासन द्वारा मलारी भूमि का मुआयना करने हेतु 70 किलोमीटर दूर चमोली बुला लिया गया ताकि, पेड़ो को काटने का काई विरोध न हो। लेकिन अपने जंगलों को बचाने का मोर्चा गांव की महिलाओं ने अपने दम पर संभाल लिया और 26 मार्च को जब कम्पनी के मजदूरों के कुल्हाड़ी लेकर वन की ओर प्रस्थान करने की सूचना मिली रैंणी गांव की 27 महिलाऐं जंगल की ओर चल पड़ीं।[17] जंगल में पहुंचने पर उन्होंने मजदूरों को प्रेम से समझाया कि ये जंगल हम सबका है और इसको काटने के भू कटान होगा और हमारे खेत बह जाऐंगे। जो 60 मजदूर व कम्पनी के कर्मचारी जंगल में पेड़ो को काटने हेतु आए थे उन्हें इन महिलाओं ने चुनौती दी और कहा– "ये पेड़ हमारे ऋषि हैं, यह जंगल हमारा मायका है इसे हम कटने नहीं देगीं। यदि जंगल कटेगा तो हमारी रही सही खेती, मकान तो नष्ट होगें ही तुम्हारा हरिद्वार का बगड़ (मैदान) भी सफाचट हो जाएगा।"[18] इस प्रकार ठेकेदार को बिना कोई पेड़ काटे वापस लौटना पड़ा। रैंणी में सफल प्रतिरोध के बाद राज्य के अन्य स्थानों में भी वनों की नीलामी के विरोध में सभाऐं व प्रदर्शन होने लगे। जिनमें सुन्दर लाल बहुगुणा, चण्ड़ी प्रसाद भट्ट, धूम सिंह नेगी, घनश्याम सैलानी आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा। 28, 30, व 31 मार्च 1974 को क्रमशः उत्तरकाशी, बड़कोट व पुरौला में सभाऐं हुई। जून 1974 में वयाली के वन को काटने के विरोध में किशनपुर और मानपुर की महिलाओं व विद्यार्थियों ने प्रदर्शन किया और 23 सितम्बर 1974 को नैनीताल के जंगलों की नीलामी के विरोध में शैले हॉल नैनीताल में विरोध प्रदर्शन किया गया।[19] इस प्रकार चिपको का लगातार विस्तार होता जा रहा था।

1976 में अद्वानी वन (हेंवल घाटी) को नीलाम कर दिया गया। जिसके विरोध में हेंवल घाटी की महिलाओं ने पेड़ों पर राखी बांधकर वन को बचाने का संकल्प लिया। बघनी देवी ने पेड़ों को संबोधित करते हुए कहा – 'तुमने हमारी खूब सेवा की है, अब हम तुम्हारी रक्षा हेतु तुम्हें यह स्नेह का सूत्र बांधते हैं।' इस दौरान उन्होंने "क्या हैं जंगल के उपकार? मिट्टी पानी और बयार" का नारा लगाते हुए प्रदर्शन किया।[20] दिसम्बर 1977 में द्वाराहाट के चांचरीधार में महिलाओं ने एक विशाल जुलूस निकाला और घोषणा की कि वे किसी भी कीमत पर अपने जंगलों को नहीं कटने देंगीं। उन्होंने ठेकेदारों के मजदूरों के कुल्हाड़े छीन लिए।[21] चिपको के परिणामस्वरूप ही राष्ट्रीय स्तर पर वन और पर्यावरण के प्रति बनी और वन संरक्षण अधिनियम, 1980 अस्तित्व में आया। लेकिन 1980 के बाद धीरे–धीरे चिपको आन्दोलन धीमा पड़ते रहा। नये वन अधिनियम, 1980 के अनुसार "किसी भी वन क्षेत्र को गैर वन उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था। कहीं यदि ऐसा किया जाना है तो केन्द्र सरकार की अनुमति अनिवार्य थी। पर इस एक्ट द्वारा विकसित केन्द्रीयता स्थानीय समुदायों के लिए कुछ सन्दर्भों में संकट पैदा करेगी, तब यह नहीं सोचा गया था। दूसरा निर्णय उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा लिया गया था पर उत्तराखण्ड के आर्थिक, सामाजिक और पारिस्थितिक इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। इसके अनुसार 20 साल से अत्यन्त कम दामों में कच्चा माल प्राप्त कर रहे कारखाने को अब यह मिलना बन्द कर दिया गया। यह लम्बे समय से चली आ रही मांग तथा जन–आन्दोलन का आंशिक सम्मान था। तीसरा निर्णय के तहत 1,000 मीटर से ऊपर हरे पेड़ों के कटान पर रोक लगा दी गई।"[22] यह चिपको आन्दोलन की महत्वपूर्ण जीत थी।

निष्कर्ष :

वनों को बचाने व उन पर अपने पारम्परिक अधिकारों हेतु प्रतिरोध की यह परम्परा 20वीं शताब्दी की दूसरे दशक से शुरू हुई और यदा–कदा आज भी जारी है। इन प्रतिराधों में जिसने भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व का ध्यान अपनी ओर खींचा वह था लगभग एक दशक तक चलने वाला चिपको आन्दोलन। ये प्रतिरोध वनों की उपयोगिता, पारिस्थितिकी, व पर्यावरण तथा वन व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी जैसे सन्दर्भों को सार्वजनिक पटल पर लाए और सबसे महत्वपूर्ण इनसे वन को जन से जोड़ने की भावना विकसित हुई। प्रत्येक क्षेत्र का भौगोलिक एवं पर्यावरणीय परिवेश उस क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक स्वरूप के साथ–साथ उस क्षेत्र के लोक जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित व निर्धारित करता है।

आज धीरे–धीरे जल, जंगल और जमीन के प्रति जुड़ाव खत्म होता जा रहा है। विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन हो रहा है, जिससे भूस्खलन, पानी का संकट व भू–धंसाव जैसी बड़ी आपदाएं सामने आ रही हैं जोशीमठ में लगातार भू–धंसाव जारी है, नैनीताल, मसूरी व कुछ अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में भी दरारें आने की खबरें आ रहीं हैं और 16–17 जून 2013 को अतिवृष्टि के कारण आयी केदारनाथ आपदा व 7 फरवरी 2021 को ग्लेशियर टूटने के कारण ऋषिगंगा में आयी बाढ़ के जख्म अभी भरे नहीं है। इन आपदाओं व संकटों से पहाड़ों को बचाने के लिए वन नीतियों की पुनः समीक्षा करने की आवश्यकता है तथा सरकार द्वारा पहाड़ो के विकास के नाम पर जो बड़ी–बड़ी परियोजनाऐं, बांध, सड़कों के चौड़ीकरण हेतु बड़ी मात्रा में पेड़ों के कटान और इस प्रकार की तमाम योजनाओं की बजाय अन्य विकल्पों पर विचार करने की जरूरत है।

संदर्भ :

1. पाठक, शेखर, हरी भरी उम्मीद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 76।
2. साह, रीतेश, कुमाऊँ क्षेत्र में जल प्रबन्धन का इतिहास 19वीं एवं 20वीं सदी, अप्रकाशित शोध प्रबंध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, 2004, पृष्ठ 158।
3. पंत, गोविन्द बल्लभ, द फोरेस्ट प्रॉबलम ऑफ कुमाऊँ, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल, 1922, पृष्ठ 30–31।
4. गुहा, रामचन्द्र, ब्रिटिश कुमाऊँ में वन व्यवस्था और वन आन्दोलनपहाड़–2 परिक्रमा तल्ला डांडा तल्लीताल नैनीताल, 1986, पृष्ठ 116 ।
5. गाडगिल, माधव व गुहा, रामचंद्र, दिस फिसर्ड लैण्ड – अन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1992।
6. वही, पृष्ठ 134।
7. वही, पृष्ठ 133।
8. गुहा, रामचन्द्र, द अनक्वाइड वुडस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1989, पृष्ठ 44–45।
9. गुहा, रामचन्द्र, ब्रिटिश कुमाऊँ में वन व्यवस्था और वन आन्दोलन, पहाड़–2 परिक्रमा तल्ला डांडा तल्लीताल नैनीताल 1986, पृष्ठ 119।
10. गुहा, रामचन्द्र, द अनक्वाइड वुडस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1989, पृष्ठ 39।
11. गुहा, रामचन्द्र, ब्रिटिश कुमाऊँ में वन व्यवस्था और वन आन्दोलन, पृष्ठ 120 पहाड़–2 परिक्रमा तल्ला डांडा तल्लीताल नैनीताल 1986
12. गुहा, रामचन्द्र, द अनक्वाइड वुडस, वही, पृष्ठ 122
13. पाठक, शेखर, वही, पृष्ठ 76।
14. साह, रीतेश, पूर्वोक्त।
15. कैड़ा, सावित्री, कुमाऊँ की महिलाओं का राष्ट्रीय संग्राम तथा स्थानीय जन–आन्दोलनों में योगदान, अप्रकाशित शोध प्रबंध, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, 1989, पृष्ठ 403।
16. मित्रा, अमित, चिपको अन अनफिनिस्ड मिशन, डाउन टू अर्थ, 30 अप्रैल 1993।
17. गुहा, रामचन्द्र, ब्रिटिश कुमाऊँ में वन व्यवस्था और वन आन्दोलन, पहाड़–2 परिक्रमा तल्ला डांडा तल्लीताल नैनीताल 1986, पृष्ठ 126।
18. भट्ट, चण्डी प्रसाद, गौरा देवी– चिपको एक, पहाड़–5/6 परिक्रमा तल्ला डांडा तल्लीताल नैनीताल, 1992, पृष्ठ 245।
19. पाठक, शेखर, वही, पृष्ठ 179।
20. भट्ट, चण्डी प्रसाद, वही, पृष्ठ 245।
21. पाठक, शेखर, वही, पृष्ठ 465।
22. कैड़ा, सावित्री पूर्वोक्त, पृष्ठ 391।

ईमेल : kishorj238@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 218-222

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

दलित काव्य : वेदना और विद्रोह का स्वर

संतोष कुमार
ग्राम–बरौना, पोस्ट–किछौछा, जिला–अंबेडकर नगर, पिन कोड–224155

शोध–सार :–

भारतीय परिवेश में हाशियाकृत समुदाय अपनी जीवकोपार्जन के लिए श्रम एवं संघर्ष करके दैनिक जीवन की सुविधाओं को निर्मित करता रहा है। इस समुदाय का प्रकृति के साथ घनिष्ठ संबंध है। इन्हीं लोगों के त्याग और मेहनत के बदौलत भारत अपने वर्तमान स्वरुप तक पहुँच पाया है। यह समाज सृजनकर्ता के रूप में देखा जाना चाहिए। इस संबंध में प्रोफेसर चौथीराम यादव जी लिखते हैं कि– "सृजन वहीं होता है जहाँ श्रम होता है। श्रमजीवी वर्ग कर्म से जुड़े हुए लोग जहाँ होते हैं कला सर्जन भी वही होता है। कलाओं का विकास भी वही होता है।"[1] आदिकाल से लेकर वर्तमान तक कृषि, पशुपालन, पहिए का निर्माण, औजारों का निर्माण, औषधियों की खोज, लोहे की खोज, कोयले की खोज इत्यादि की पहचान और उपयोग इन्हीं के हाथों ही संभव हो पाया है, जिस पर भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व की काया को वर्तमान स्वरूप एवं आधार मिला है।

शब्द संकेत :– हाशियाकृत समुदाय, वेदना, विद्रोह, सृजन।

प्रस्तावना :–

इस वर्ग के अंतर्गत बहुत बड़ा जन समुदाय आता है। जिसने देश को वर्तमान स्थिति तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है लेकिन क्या कारण है कि उपलब्ध इतिहास ग्रंथों एवं धर्म ग्रंथों में हाशियाकरण समझी जाने वाली दलित जातियों का नामोनिशान तक नहीं दिखाई देता है? या क्या उनके योगदान को आवाज देने वाला कोई नहीं था? या फिर षड्यंत्र के तहत उनके इतिहास, संस्कृति और भाषा को नष्ट कर देना ही शिष्ट समाज अपना दायित्व समझता है। तथाकथित धर्म और इतिहास के सृजनकर्ता ही शासक और शोषक के रूप में पेश किए जाते रहे हैं, जिससे वास्तविकता पर पर्दा पड़ा रहे एवं देश के सभी संसाधनों पर एकतरफा कब्जा कायम रहे। भारतीय मूलनिवासी हाशिए पर जीवन यापन करता रहे। इस संदर्भ की ओर इशारा करते हुए कँवल भारती 'दलित विमर्श की भूमिका' में लिखते हैं कि– "भारत के इतिहास को पढ़ते वक्त यही चित्र आपके सामने उभरता है कि भारत में एक संस्कृति रही है। राजे–महाराजे, राजनीति तथा वंशागत बैर के आधार पर आपस में लड़ते रहे हैं। इस इतिहास में सिर्फ शासक जातियों के उत्थान–पतन, उनके धर्म, संस्कार और उनके जीवन के सिवा अन्य जातियों, वर्गों और समुदाय का जीवन दिखाई नहीं देता।[2]" अतः देश के वास्तविक स्वामी को धर्म एवं इतिहास के पन्नों में जगह नहीं दिया गया है। उन्हें नकार दिया गया है। इस नकार की संस्कृति ने

ही एक ऐसा जन समुदाय तैयार किया जो अपने सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक अधिकारों को पुनः पाने के लिए संघर्षरत है।

'संविधान पढ़िए सदा, गढ़िए नव इतिहास।
लड़िए निज अधिकार हित, जब तक तन में श्वास।।
छिन्ह–भिन्न वैभव किया, लील लिया इतिहास।
स्वामी थे जो विगत में, बना लिए निज दास।।[3]'

वह अस्तित्व एवं स्वाभिमान को कायम रखने की लड़ाई लड़ रहा है। उसने कालांतर में ऐसा साहित्य सृजन किया जो यथार्थ का रक्षक और मिथक एवं कल्पना का विरोधी है। दलित साहित्य कोई सिनेमा, नाटक या रंगमंच नहीं, जो अभिजात्य वर्ग के लिये लिपिबद्ध किया जा रहा हैं बल्कि दलितों की दयनीय स्थिति की करूण कथा है। इसके साथ ही यह भारतीय सामाजिक परिवेश में छिपी अमानवीय क्रूरता, ब्रह्मणवादी मानसिकता को दर्शाता है।

आज भी समाज का एक खास विपुल जन–समुदाय गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने के लिए विवश है। आज भी गांव की जीवन शैली उसी पुरानी हो चुकी परंपराओं एवं धार्मिक मान्यताओं पर रेंग रही है। जबकि शहर में गरीब जनता नालों के किनारे, फ्लाईओवर के नीचे मलिन बस्ती में जीवन की तलाश करते देखी जा सकती है। तमाम मलिन बस्तियों में शुद्ध पेयजल, चिकित्सा, शिक्षा एवं रोजगार के नाम पर झोलाछाप डॉक्टर, लकड़ी–मिट्टी के घर और रोजगार के नाम पर कूड़ा बटोरने का काम, घर में झाडू पोछा का काम, ऑफिस में कार सफाई का काम इत्यादि इन लोगों के हिस्से आ रही है।

'नाक पर रख रूमाल जहां से आप गुजरते हैं,
हम वहां से जिंदगी की शुरूआत करते हैं,
विषैली गैस और उतरना शिवरों में,
हमारे साथ होता वही जो जल्लाद करते हैं।[4]'

सरकारी धन खर्च किया जा रहा है। विभिन्न योजनाएं बनाई जा रही हैं। योजनाओं के आकर्षक नामकरण किए जा रहे हैं। लेकिन विकास का ब्यौरा केवल फाईलो पर ही दिखाई देता है। वर्तमान झूठे वादे और मौजूदा व्यवस्था पर अदम गोंडवी साहब की पंक्तियां सटीक बैठती है :–

'तुम्हारी फाइलों में गांव का मौसम गुलाबी है
मगर ये आंकड़े झूठे हैं ये दावा किताबी है
उधर जम्हूरियत की ढोल पीटे जा रहे हैं वो
इधर पर्दे के पीछे बर्बरीयत है नकाबी है।[5]'

राजनेता सत्ता हथियाने के लिए बड़े–बड़े वादे किए जा रहे हैं। पैसे के बल पर वोट खरीदने जा रहे हैं। आम जनता को सपने दिखाकर उनका मानसिक हनन किया जा रहा है। 'सबका साथ, सबका विकास'– जैसे नारे लगाए जा रहे हैं लेकिन विकास किसका हो रहा है? यह एक सोचनीय प्रश्न है। सत्ता का लालच और

स्वार्थ की सिद्धि राजनेताओं का सर्वोपरि धर्म बनता जा रहा है। दलालों–बिचौलियों का झुंड सरकारी योजनाओं को रिश्वत के तराजू में तोल रहे हैं। उच्च अधिकारी से लेकर निम्न स्तर के कर्मचारी तक सभी घूसखोरी के षड़यंत्र में लिप्त है। ऐसी स्थिति में समाज का विकास कैसे हो सकता है? ऐसी स्थिति में निश्चित ही देश का बड़ा जनसमुदाय हाशिए पर बना ही रहेगा। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो–तीन दशकों में साहित्य के क्षेत्र में कई विमर्शों ने अपना स्थान बनाया है, जिसके माध्यम से हाशिए पर जीवन यापन करने वाले समुदायों को केंद्र में लाने का प्रयास किया जा रहा है। दलित विमर्श ने जहां दलित उत्थान की आवाज बुलंद कर देश के हर क्षेत्र में सक्रिय भागीदारी की मांग की है, वही आदिवासी विमर्श भी साहित्य के केंद्र आ खड़ा हुआ है। इसी के साथ ही किन्नर विमर्श, वृद्धा विमर्श, स्त्री विमर्श एवं समलैंगिकों ने भी अपनी भागीदारी एवं जरूरतों के लिए अपनी मांग को देशवासियों के सम्मुख रखा है। साहित्य के केंद्र में इन विमर्शों के आ जाने से इनकी भी हिस्सेदारी को समझा जा रहा है।

दलित वर्ग ने अपने ऊपर हुए शोषण, उत्पीड़न, छुआछूत, अपमान, शोषण, अत्याचार इत्यादि तुच्छ सामाजिक मानसिकता को समाज के सामने रखकर और साहित्य में लिखकर यह सिद्ध कर दिया है कि हम भी इंसान हैं, न कि जानवर है। हमारा भी देश के प्राकृतिक संसाधनों, सामाजिक अधिकारों एवं संस्कृति में उतना ही योगदान है जितना कि अन्य वर्ग का रहा है।

दलित समाज ऐसे समाज के निर्माण में लगा हुआ है जहां न जाति प्रथा हो, न धर्म का भेदभाव, न छुआछूत। वह केवल समतामूलक समाज के निर्माण में लगा हुआ है। जहां सभी मनुष्य, मनुष्य हो। सभी को सारे अधिकार प्राप्त हो। सभी मनुष्य संगठित होकर रहे।

इनकी भाषा में इनकी संस्कृति को मुखरित करती है। इस समाज की अपने अलग संस्कार, पहनावा, रीति–रिवाज, कर्म क्षेत्र हैं। यह लोग भी कई प्रकार के त्योहारों को मनाते हैं। जैसे– 14 अप्रैल का दिन डॉ अंबेडकर के जन्म दिवस के रुप में मनाते दिन है। इस दिन प्रभात फेरिया निकाली जाती है। लोकगीत गाए जाते है। एक लोकगीत का उदाहरण देखिए –

'दीन दयाल कृपाल तुम्ही, तुम ही शोषित जन के रखवारे,
थाम लिए गिरते–गिरते, तुम ही हो गरीब नवाज हमारे,
दलितों के लखी तुम दीन दशा, करूणा करि अपने कष्ट नवारे,
को नहीं जानत है जग में, अंबेडकर बोधिसत्व हमारे।'[6]

इस दिन सभी दलित समाज द्वारा मिठाईयां बांटी जाती हैं, महिलाएं मिलकर नृत्य करती हैं। बच्चे डॉ अंबेडकर के जीवन पर आधारित नुक्कड़ नाटक खेलते हैं। इस प्रकार इस समाज के नृत्य, लोक गीत भी समाज में प्रमुख स्थान रखते हैं। जैसे– धोबी अऊअ नाच, चमर अऊअ नाच, कहरवा नाच इत्यादि जिसका वर्णन डॉ तुलसीराम अपनी आत्मकथा मुर्दहिया में करते हैं। इसी कृति से एक लोक–गीत प्रस्तुत है :–

'हरिजन जाति सहै दुःख भारी हो।
हरिजन जाती सही, दुःख भारी।।

जेकर खेतवा दिन भर जोतली।।

हरिजन जाती सहेई, दुःख भारी।।[7]'

इनके लोकगीत में श्रम की महत्ता, दुख–दर्द, बेवसी, तंगी के दर्शन होते हैं। जैसे– रघुनाथ प्यासा का लोकगीत 'मत आइए रे मनिहार' में दलित स्त्री की मानसिक व्यथा को मुखरित किया गया है।

'इत मत आइए रे मनिहार,
चूड़ी कैसे पहनूं रे।
मेरा बालम बेरोजगार, चूड़ी कैसे पहनूं रे।
महंगी चूड़ी पहनी एक बार, बड़ी मुसीबत आई,
मुखियानी ने मुखिया जी से तभी शिकायत लगाई।
म्हारे सामने महंगी चूड़ी पहने नीच गंवार।
चूड़ी कैसे पहनू रे,
तन पे मेरे फटे चीथड़े, तू कहे पहनूं चूड़ी।
बिना पैसा के एक सुहागन, हो गई रांड और रूड़ी।
जिस पे पैसा उसकी इज्जत, बाकी सब बेकार।
चूड़ी कैसे पहनू रे।
रोटी की उलझन में उलझे,
कैसे सुगन बिचारे।
हाथ हथोड़ा लेके पत्थर तोड़े सड़क किनारे।
माटी ही सिंदूर हमारा, माटी ही सिंगार।
चूड़ी कैसे पहनू रे।[8]'

निष्कर्ष :–

अतः कर सकते हैं कि बुद्ध ने समाज को सम्यक दृष्टि, सम्यक ज्ञान और सम्यक मार्ग का रास्ता दिखाया और डॉक्टर अंबेडकर ने मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष करना सिखाया। उनके अंदर आत्मसम्मान की इच्छा जगाई। तब जाकर काफी समय और अथक प्रयासों के बाद दलित, वंचित, श्रमिक और स्त्रियां अपने अधिकार के प्रति सचेत हुए। स्वतंत्रता, समता, आत्मसम्मान और अधिकार की चिंगारी ने रोजगार, व्यापार, राजनीति में अपनी हिस्सेदारी के लिए संघर्ष शुरू किया। और निरंतर सफलता प्राप्त कर रहा है। वर्तमान समय में दलित वर्ग सम्मान के साथ समाज में अपने अस्तित्व को कायम रखने सफल हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. समसामयिक सर्जन पत्रिका, संपादक महेंद्र प्रजापति, धर्मवीर गगन द्वारा लिया गया साक्षात्कार से, पृष्ठ संख्या–154, अंक– जनवरी जून 2014

2. दलित साहित्य की भूमिका, कवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण– 2002, पृष्ठ संख्या–105
3. दलित विमर्श और हिंदी दलित काव्य, प्रोफेसर कालीचरण स्नेही, न्यू रॉयल बुक कंपनी लखनऊ, संस्करण –2008, पृष्ठ संख्या –219
4. कछुआ सा सिमटा दलित, संपादक–संतोष कुमार, प्रकाशन– बुद्ध अंबेडकर कल्याण एसोसिएशन लखनऊ, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ संख्या–50, प्रथम संस्करण–2017
5. सात से मुठभेड़, आदम गोंडवी, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण–2016
6. मुर्दहिया डॉ तुलसीराम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण–2012, पृष्ठ संख्या –106
7. रघुनाथ प्यासा का लोकगीत, बताइए रे मनिहर से...

मोबाइल नंबर–8737946909

ईमेल– kapoorsantosh10@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
March 2026 Page No. : 223-229

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

Electoral Bonds and Political Transparency in India

Dr. Dimpal
Assistant Professor of Political Science
Adarsh Mahila Mahavidyalaya, Bhiwani.

Abstract :

Political funding is an essential part of democratic governance because political parties require financial resources to contest elections, conduct campaigns, and communicate with citizens. In India, the issue of political funding has remained controversial for many years due to concerns regarding corruption, black money, and lack of transparency in donations made to political parties. To address these concerns, the Electoral Bond Scheme was introduced in 2018 as a new mechanism for political donations through the banking system. The scheme aimed to reduce cash-based funding and encourage legal and accountable financial transactions. However, the scheme also generated public debate because donor identities were not made available to the general public.

This research paper examines the Electoral Bond Scheme and its relationship with political transparency in India. The study adopts a neutral and analytical perspective to understand both the advantages and limitations of the scheme. The paper is based on secondary data collected from academic journals, government reports, newspaper articles, policy discussions, and judicial observations. The research explores the broader issue of political accountability and democratic transparency in relation to election finance reforms.

The study finds that electoral bonds helped formalize political donations through regulated banking channels and reduced dependence on cash transactions. At the same time, concerns related to anonymity and public disclosure remained important in discussions regarding democratic accountability. The paper concludes that future electoral reforms in India should attempt to maintain a balance between transparency, donor privacy, fairness, and public trust in democratic institutions.

Introduction :

Democracy is based on the principles of representation, accountability, and public participation. Elections are considered the foundation of democratic systems because they provide citizens with

the opportunity to choose their representatives. However, elections also require significant financial resources. Political parties spend money on election campaigns, advertisements, public rallies, organizational activities, and communication with voters. Because of this, political funding has become an important issue in almost every democracy.

In India, political financing has often been associated with concerns regarding corruption and lack of transparency. For several decades, political donations were criticized for involving large amounts of cash and unaccounted money. Many experts argued that hidden financial contributions could influence political decisions and reduce public trust in democratic institutions. As a result, demands for electoral reforms gradually increased.

The Electoral Bond Scheme was introduced by the Government of India in 2018 as an attempt to reform political funding. The scheme allowed individuals and organizations to purchase electoral bonds from authorized banks and donate them to eligible political parties. The primary objective was to promote banking transactions and reduce the use of black money in elections.

Although the scheme was introduced with reform-oriented objectives, it also generated debates regarding transparency and accountability. Supporters argued that donor anonymity protected individuals and companies from political pressure. Critics argued that secrecy in political funding could weaken democratic accountability because citizens would not know who financed political parties.

The issue of transparency is highly important in democratic systems because citizens expect openness in governance and political decision-making. Public trust increases when political institutions function transparently and fairly. Therefore, political funding reforms must carefully balance the need for transparency with concerns related to privacy and freedom of political participation.

This paper examines the Electoral Bond Scheme from the perspective of political transparency in India. The study does not aim to support or criticize any political party. Instead, it focuses on understanding the broader democratic issues connected with political finance reforms.

Objectives of the Study :

1. To understand the structure and functioning of the Electoral Bond Scheme.
2. To examine the relationship between electoral bonds and political transparency.
3. To analyze the advantages and criticisms associated with the scheme.
4. To study the impact of electoral funding reforms on democratic accountability.
5. To suggest measures for improving transparency in political finance in India.

Theoretical Framework :

This study is based on the theory of democratic accountability and transparency. Democratic

theory emphasizes that governments and political institutions should remain accountable to citizens. Transparency is considered an important feature of democracy because it allows citizens to access information about governance and political processes.

According to democratic accountability theory, citizens should be able to examine how political parties receive financial support and whether policy decisions are influenced by private interests. Transparency in political funding is therefore seen as a mechanism to reduce corruption and improve public trust.

At the same time, liberal democratic thought also recognizes the importance of privacy and freedom of political participation. Some scholars argue that political donors should have the right to confidentiality because public disclosure may expose them to political pressure or social criticism. The debate surrounding electoral bonds reflects this tension between transparency and privacy. The theoretical framework of this study focuses on examining whether the Electoral Bond Scheme successfully balances these two democratic principles.

Research Methodology :

The present study is descriptive and analytical in nature. It is based entirely on secondary data collected from books, research articles, newspaper reports, policy papers, parliamentary debates, government notifications, and judicial observations related to electoral bonds and political funding in India.

The qualitative method has been used for interpretation and analysis of the issue. Instead of statistical analysis, the study focuses on understanding the broader political and democratic implications of electoral bonds. A neutral and non-partisan approach has been maintained throughout the paper.

Literature Review :

Political funding has long been discussed as an important issue in democratic governance. Scholars across the world have argued that transparency in election finance is necessary for strengthening democratic accountability. Research studies suggest that hidden political donations can create opportunities for corruption and unequal influence in policy-making.

Several Indian scholars have highlighted the problem of black money in elections. Before the introduction of electoral bonds, many political donations reportedly took place through cash transactions, making it difficult to identify the origin of funds. Because of this, many experts supported reforms that would encourage donations through legal banking systems.

Some researchers viewed the Electoral Bond Scheme as an important institutional reform because it attempted to formalize political funding. According to these studies, banking transactions

create financial records and may discourage illegal cash-based donations.

However, many scholars also raised concerns regarding donor anonymity. They argued that citizens in a democracy should have access to information regarding political donations. According to these critics, secrecy in political funding may weaken public trust and reduce accountability.

The Election Commission of India and various civil society organizations also expressed concerns related to transparency and disclosure. Some studies pointed out that unequal financial influence can affect democratic competition and electoral fairness.

Overall, the literature suggests that electoral finance reforms involve balancing different democratic values such as transparency, accountability, privacy, and political freedom.

Understanding the Electoral Bond Scheme :

The Electoral Bond Scheme was introduced in January 2018. Electoral bonds are financial instruments that can be purchased from designated branches of the State Bank of India. Indian citizens and organizations registered in India are eligible to purchase these bonds either individually or jointly. Political parties registered under the Representation of the People Act and securing at least one percent of votes in elections are eligible to receive donations through electoral bonds. The bonds are available in different denominations and remain valid for a limited time period.

The scheme was introduced with the objective of reducing the role of unaccounted cash in elections. Since bonds can only be purchased through banking channels, the system encourages legal and traceable financial transactions. Buyers are required to complete Know Your Customer procedures, which creates formal records within the banking system.

One of the most debated aspects of the scheme is donor anonymity. While transaction details remain available within the banking system, the names of donors are not disclosed publicly. Supporters consider this necessary for protecting donor privacy, whereas critics believe that public disclosure is essential for democratic transparency.

The scheme therefore became an important topic in discussions regarding election finance reforms and democratic accountability in India.

Electoral Bonds and Political Transparency :

Transparency is an important principle of democratic governance because it allows citizens to examine the functioning of political institutions. In the context of political funding, transparency helps voters understand whether political decisions are influenced by financial interests.

The Electoral Bond Scheme presents a complex relationship with transparency. On one side, the scheme formalized political funding by encouraging donations through banks instead of cash transactions. This reduced informal funding practices and promoted legal financial transactions.

On the other side, donor identities were not made available to the public. This created concerns regarding secrecy and accountability. Critics argued that citizens should have the right to know who financially supports political parties, especially in a democracy where informed voting is important. Another important issue is public trust. Transparency increases confidence in democratic institutions because citizens feel that governance processes are open and accountable. Lack of public disclosure may create suspicion regarding political influence even when donations are legal.

However, complete disclosure may also discourage political participation by donors who fear political pressure or economic consequences. Therefore, electoral reforms must balance public accountability with individual privacy rights.

The Indian experience with electoral bonds demonstrates that political finance reforms involve complex democratic questions rather than simple administrative changes.

Advantages of the Electoral Bond Scheme :

1. Reduction in Cash-Based Funding :

One major advantage of the scheme is that it encouraged political donations through banking channels rather than cash transactions. This helped reduce the role of unaccounted money in elections.

2. Promotion of Formal Financial Transactions :

The scheme strengthened the use of legal and regulated financial systems in political funding. Banking transactions create records and encourage compliance with financial regulations.

3. Institutional Reform in Political Funding :

The Electoral Bond Scheme introduced a structured framework for political donations. It represented an effort to modernize electoral finance systems in India.

4. Protection of Donor Privacy :

Supporters of the scheme argued that anonymity protected donors from political pressure, harassment, or discrimination based on their political preferences.

5. Encouragement of Legitimate Donations :

Since the purchase process involved banking procedures and identification requirements, the scheme encouraged donations through lawful channels.

Criticisms and Challenges

1. Limited Public Transparency :

The strongest criticism of the scheme was related to the absence of public disclosure regarding donor identities. Citizens could not determine who financially supported political parties.

2. Concerns Regarding Accountability :

Without public information regarding donors, it becomes difficult for researchers, journalists,

and citizens to examine possible links between financial contributions and political decisions.

3. Unequal Political Influence :

Some critics argued that wealthy corporations or individuals might gain greater influence in politics through large donations.

4. Democratic Fairness :

Transparency is closely related to democratic equality. Lack of disclosure may create perceptions of unequal political influence and reduce public confidence in electoral systems.

5. Institutional Concerns :

Several institutions and experts raised concerns regarding the long-term impact of anonymous political funding on democratic governance and electoral fairness.

Findings and Analysis :

The study finds that the Electoral Bond Scheme brought important changes to political funding in India by encouraging formal banking transactions. The scheme reduced visible dependence on cash-based political donations and introduced a more institutionalized framework for electoral finance.

At the same time, transparency remained a major concern because donor identities were not publicly disclosed. The study suggests that financial formalization alone may not fully satisfy democratic expectations regarding accountability and openness.

The analysis also shows that electoral reforms require a careful balance between privacy and transparency. Excessive secrecy may weaken public trust, while complete disclosure may discourage some donors from participating freely in political funding.

Another important finding is that strong institutions are necessary for ensuring accountability in political finance systems. Electoral reforms become more effective when supported by independent oversight and clear legal mechanisms.

Overall, the Electoral Bond Scheme reflects both the opportunities and challenges involved in modernizing political funding systems within democratic societies.

Suggestions and Recommendations :

1. Electoral reforms should aim to balance transparency with protection of legitimate donor privacy.
2. Independent oversight institutions should be strengthened to improve public confidence in political funding systems.
3. Political parties may voluntarily disclose broader financial information to increase accountability.
4. Public awareness regarding electoral finance and democratic accountability should be promoted

through civic education.

5. Future reforms should focus on fairness, transparency, and institutional trust in democratic governance.

Conclusion :

The Electoral Bond Scheme represents one of the most significant political funding reforms in contemporary India. It was introduced with the objective of reducing black money and encouraging donations through formal banking systems. In this regard, the scheme contributed to the institutionalization of political finance and promoted legal financial transactions.

However, the debate regarding transparency and accountability continues to remain important. The issue of donor anonymity created discussions regarding citizens' right to information and democratic openness. While the scheme improved financial formalization, concerns related to public disclosure and political accountability remained significant.

The study concludes that transparency in political funding is essential for maintaining public trust and democratic accountability. At the same time, electoral reforms should also consider legitimate concerns related to donor privacy and freedom of political participation.

Therefore, future political finance reforms in India should attempt to create a balanced system that supports transparency, fairness, accountability, and democratic confidence.

References :

1. Government of India. Electoral Bond Scheme Notification, 2018.
2. Election Commission of India Reports on Political Funding.
3. Kumar, R. Democracy and Political Finance in India. Sage Publications.
4. Jain, P. Electoral Reforms and Governance. Oxford Publications.
5. Bhushan, A. Political Transparency and Electoral Bonds in India. Indian Journal of Political Studies.
6. Reports related to election finance reforms in India.
7. Academic studies on democratic accountability and transparency.
8. Parliamentary debates on political funding reforms.
9. Policy papers on governance and electoral finance.
10. Research articles on political transparency in democratic systems.

Email : dimple04.aggarwal@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

सानिया प्रकाशन एवं गिना प्रकाशन द्वारा
संयुक्त रूप से नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2394-6458
Impact Factor : 6.521

RESEARCH JOURNAL OF MEEMANSA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Editor-in-Chief : Dr. Lata S. Patil
Managing Editor : Dr. Jaivir Langyan M. 9728790909

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाउसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अमजद पाशा मुहम्मद

हिंदी प्राध्यापक,

एस.एल. एन.एस. डिग्री कॉलेज, भुवनगीर।

for the paper titled

समकालीन कथा साहित्य में मुस्लिम समाज का यथार्थ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 10-13

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

राजेन्द्र

हिन्दी विभाग, पंजाब विष्वविद्यालय
कांस्टीचुयेंट कॉलेज, सिंखवाला, श्री मुक्तसर साहिब, पंजाब, भारत।

for the paper titled

भक्तिकाल की परिस्थितियों का विवरण : आधुनिककाल के संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 14-18

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

खिलेन्द्र कुमार, शोधार्थी–वाणिज्य,
भिलाई महिला महाविद्यालय, सेक्टर–9, भिलाई, जिला–दुर्ग (छ.ग.)
डॉ. सुनीता क्षत्रिय, शोध निर्देशक,
सहायक प्राध्यापक–वाणिज्य, सेंट थॉमस महाविद्यालय, भिलाई, जिला–दुर्ग (छ.ग.)

for the paper titled

एनएमडीसी द्वारा दक्षिण बस्तर में कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) गतिविधियों का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 19-26

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अशोक कुमार गर्ग

पिता – रावता राम

परास्नातक – राजनीति विज्ञान, नेट जून 2025

for the paper titled

भारतीय संघवाद में केंद्र-राज्य संबंधों की बदलती प्रकृति

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 27-30

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

जयप्रकाश रौशन, शोधार्थी,

डॉ. विनोद कुमार शर्मा, शोध निर्देशक एवं प्राध्यापक,

हिन्दी विभाग, डॉ. सी. वी. रमण विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।

for the paper titled

दिनकर के साहित्य में देशभक्ति : जनमानस को जाग्रत करने वाली प्रेरक शक्ति का विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 31-38

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Laxman Singh
Assistant Professor
Kumaun University, Nainital.

for the paper titled

Teachers Attitude towards Online Teaching after COVID-19

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 39-42

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

शशि नाथ प्रसाद (पीएच०डी, शोधार्थी)
पंजीयन संख्या – JPU/2021-2024/Ph.D/00275
हिन्दी–विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय (छपरा), बिहार।

for the paper titled

मिल मालिक और मजदूर यूनियन का संघर्ष : प्रभा खेतान रचित उपन्यास 'तालाबंदी' के संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 43-46

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. वन्दना द्विवेदी

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
नेहरु ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज।

for the paper titled

बौद्ध धर्म और लोककल्याण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 47-49

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सोनी कुमारी शर्मा

सहायक प्राध्यापक (अतिथि)

रमा देवी महिला विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर।

for the paper titled

मैला आँचल : स्वतंत्र भारत का यथार्थ दस्तावेज

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 50-53

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सुषमा, शोधार्थी,

निर्देशक– **डॉक्टर संजय कुमार** (सह–आचार्य)

ओम स्टर्लिंग ग्लोबल यूनिवर्सिटी हिसार।

for the paper titled

भगवान दास मोरवाल के साहित्य में धर्म और स्त्री अस्मिता : स्त्री विमर्श के परिप्रेक्ष्य में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 54-59

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Siddhant Mishra,

Research Scholar,

Lovely Professional University.

for the paper titled

From Urban Craft Traditions to Colonial Modernity : Transformations in Indian Artistic Production

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 60-65

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

राजा डावर

समाज विज्ञान अध्ययन शाला देवी अहिल्या विश्वविघ्यालय, इन्दौर

डॉ. बी.एल. पाटीदार

प्राध्यापक भूगोल विभाग, शा. महाविलय उमरबन, धार।

for the paper titled

परम्परागत फसलों के ह्रास का भौगोलिक विश्लेषण 2010–2022 : महू तहसील के संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 66-73

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

भव्या राय, शोधार्थी

डॉ. शक्ति जायसवाल, असिस्टेंट प्रोफेसर, शोध निर्देशक,
राजनीति विज्ञान विभाग, बुद्ध विद्यापीठ पीजी कॉलेज
(सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर)

for the paper titled

मधेशी क्षेत्र का भू-राजनीतिक महत्व : भारत नेपाल संबंधों के लिए रणनीतिक निहितार्थ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 74-80

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Sakshi

Assistant Prof.,
B.K. College of Education, Bawani Khera.

for the paper titled

EPISTEMOLOGY OF SANKHYA PHILOSOPHY

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 81-89

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

गायत्री निगम

शोध छात्रा,

गोविन्द गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा, राजस्थान।

for the paper titled

आदिवासी समाज का सांस्कृतिक अध्ययन : बांसवाड़ा क्षेत्र के संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 90-94

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

जितेन्द्र, शोधार्थी,

डॉ. अंजन कुमार, शोध–निर्देशक (सहायक प्राध्यापक),

हिन्दी विभाग, कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाई नगर (छ.ग.)

for the paper titled

मनोज रूपड़ा के उपन्यास 'काले अध्याय' में भूमंडलीकरण और आदिवासी चिन्तन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 95-101

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Shama Parveen

Head & Assistant Professor, Department of Home Science
M. R. M. College, L. N. Mithila University, Darbhanga, Bihar.

for the paper titled

Digital Screen Engagement and Child Behavioral Adjustment : Examining the Moderating Role of Parenting Style

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 102-114

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

संतोष कुमार

सहायक प्रोफेसर (समाजशास्त्र)

वीर बहादुर सिंह राजकीय महाविद्यालय, कैम्पियरगंज,

गोरखपुर–273158 (उत्तर प्रदेश)

for the paper titled

दोहरी परिधीयता (Double Marginality) : थारू जनजातीय महिलाओं का सामाजिक समावेशन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 115-125

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Krishna Kishor Srivastava
Assistant Professor, Department of Sociology
Patna University, Patna, Bihar.

for the paper titled

Indigenous Knowledge Systems in Tribal Development : Sustainability, Livelihood Security, and Cultural Preservation

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 126-143

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रिंस गुप्ता

पी.एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

for the paper titled

अनुभव की प्रामाणिकता और प्रतिरोध की भाषा : 'शिकंजे का दर्द' में दलित स्त्री चेतना

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 144-150

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

पूजा उईके, शोधार्थी,

डॉ राजीव शर्मा, प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष,

हिन्दी, प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर, मध्यप्रदेश।

for the paper titled

गोंड जनजाति की पारम्परिक लोक संस्कृति में झलकता जीवन दर्शन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 151-154

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Puja Panda

Research Scholar. Department-PhD. Economics,
Sonadevi University Ghatsila East Singhbum, Jharkhand.

for the paper titled

परिकल्पना (Hypothesis)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 155-161

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Prof. (Dr.) Chandrashekhar Singh
Department of Social Work
Mahatma Ghandhi Kashi Vidhyapith, Varanashi.

for the paper titled

A Study of Capacity Building and Corporate Social Responsibility in NGOs through E-Learning and Digital Tools : A Perspective of Varanasi

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 162-171

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रशांत चौरसे, शोधार्थी, हिन्दी,
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्यप्रदेश
डॉ. विजयलक्ष्मी पोद्दार, प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी),
एम.के.एच.एस. गुजराती गर्ल्स कॉलेज, इंदौर, मध्यप्रदेश।

for the paper titled

डॉ कुँअर बेचैन की ग़ज़लों में अलौकिक प्रेम : संवेदना एवं अभिव्यक्ति

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 172-176

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

ज्योति अम्बष्ट, शोध छात्रा, थियोलॉजी

डॉ. निशीथ गौड़, असिस्टेंट प्रोफेसर,

संस्कृत विभाग, कला संकाय, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, आगरा–282005

for the paper titled

औपनिषदिक नाद चेतना

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 177-180

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रोहित साव

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

वर्द्धमान विश्वविद्यालय, गुलाबबाग, पश्चिम बंगाल, (713104)

for the paper titled

गीतांजलि श्री की कहानियों में स्त्री चिंतन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 181-192

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. मोहम्मद आसिफ आलम

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग,
संस्थापक, संयोजक, निर्देशक, स्वांग ड्रामा क्लब,
विद्यासागर कॉलेज फॉर वीमेन, कोलकाता।

for the paper titled

कोलकाता में हिन्दी रंगमंच का वर्तमान परिदृश्य

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 193-197

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अर्चना कुमारी

सहायक प्रोफेसर संस्कृत,

राजकीय महाविद्यालय, बौंद कलां (चरखी दादरी)

for the paper titled

मानवीय मूल्य और संस्कारों के विकास के लिए हितोपदेश की महता/उपयोगिता

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 198-201

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Om Prakash Sarvaiya,
Assistant Professor,
Govt. Girls College Seoni (M.P.)

for the paper titled

WOMEN AS IDOLS OF LOVE, SACRIFICE, AND TOLERANCE IN THE WORKS OF VIKRAM SETH

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 202-210

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

किशोर कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग, डी0एस0बी0 परिसर
कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल।

for the paper titled

जल, जंगल और जमीन : उत्तराखंड में वन नीतियों के विरूद्ध जन–आंदोलनों का ऐतिहासिक विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 211-217

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

संतोष कुमार

ग्राम–बरौना, पोस्ट–किछौछा,
जिला–अंबेडकर नगर, पिन कोड–224155

for the paper titled

दलित काव्य : वेदना और विद्रोह का स्वर

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 218-222

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Dimpal
Assistant Professor of Political Science
Adarsh Mahila Mahavidyalaya, Bhiwani.

for the paper titled

Electoral Bonds and Political Transparency in India

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

March 2026, Vol. 23, Issue -3, Part-3, Page No. 223-229

https://doi.org/10.5281/zenodo.18964167

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152